ISSN-2278-0912
वर्षम् - १४, अङ्कः - १७४
ओ३म्
ज्योतिष्कृणोति सूनरी
ज्येष्ठ-आषाढ़मासौ-२०८०
जूनमासः-२०२३

आर्ष-ज्योतिः

(केन्द्र सरकार एवं उत्तराखण्ड सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त)
तमसो मा ज्योतिर्गमय
श्रीमद्दयानन्दवेदार्षमहाविद्यालयन्यासस्य द्विभाषीयमासिकमुखपत्रम्
महर्षिदयानन्दविशेषाङ्कः

अन्ताराष्ट्रियमूल्याङ्कितशोधपत्रिका

International Peer Reviewed Journal

200 वीं
सदैव सत्य
महर्षि दयानन्द सरस्वती जयन्ती
1824 - 2024

प्रसारणकार्यालयः
श्रीमद्दयानन्दार्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुलम्
पौन्धा, देहरादूनम् (उत्तराखण्डः)-248007
09411106104, 08810005096
arsh.jyoti@yahoo.in gurukulpondha
www.smdnyas.org YouTube gurukulpondhadehradun

ISSN : 2278-0912

ज्योतिष्कृणोति सूनरी

❖ ओ३म् ❖

वर्षम्-१४, अङ्कः-१७४
ज्येष्ठ-आषाढौ-२०८०, जूनमासः-२०२३
सृष्टिसंवत्-१,९६,०८,५३,१२४

आर्ष-ज्योतिः

अन्ताराष्ट्रियमूल्याङ्कितशोधपत्रिका

श्रीमद्दयानन्दवेदार्षमहाविद्यालय-न्यासस्य द्विभाषीयमुखपत्रम्

❖संरक्षका:❖
स्वामी प्रणवानन्दः सरस्वती
कै. रुद्रसेन आर्यः
प्रो.दिनेशचन्द्रशास्त्रिवर्याः
श्रीगिरीश-अवस्थीवर्याः

❖परामर्शदातृमण्डलम्❖
प्रो. महावीर-अग्रवालवर्याः
डॉ. रघुवीरवेदालङ्कारवर्याः
आचार्ययज्ञवीरवर्याः
श्रीचन्द्रभूषणशास्त्रिवर्याः

❖मुख्यसम्पादकौ❖
डॉ. धनञ्जय आर्यः
डॉ. रवीन्द्रकुमारः

❖कार्यकारी सम्पादक:❖
श्रीशिवदेव आर्यः

❖लेखपर्यवेक्षका:❖
प्रो. धर्मेन्द्रकुमारशास्त्रिवर्याः
प्रो. विनयविद्यालङ्कारवर्याः

❖कार्यालय:❖
श्रीमद्दयानन्द-आर्षज्योतिर्मठ-गुरुकुलम्
दूनवाटिका-२, पौन्धा,
देहरादूनम् (उत्तराखण्डः)-२४८००७
दूरवाणी-०९४१११०६१०४, ८८१०००५०९६
website: www.smdnyasn.com
E-mail : arsh.jyoti@yahoo.in
मूल्यम्-रु. ५/-प्रति, वार्षिकम्-रु. ५०/-
मूल्यम्-रु. ३०/-प्रति(शोधाङ्कः)
प्रकाशनतिथिः-३ जूनमासः २०२३
पत्रालयप्रेषणतिथिः-१० जूनमासः २०२३

विषयानुक्रमणिका

विषय	लेखक	पृ.सङ्ख्या
सम्पादकीय		
ऋषि दयानन्द का सत्सङ्ग	अमरहुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती	०५
देवहूति दयानन्द	स्वामी विवेकानन्द सरस्वती	०९
दयानन्द-द्विजन्मशताब्दी के सन्दर्भ में...	डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री	११
वेद व्याख्यान परम्परा को महर्षि दयानन्द...	डॉ. रघुवीर वेदालङ्कार	१८
महर्षि दयानन्द के द्वारा निर्दिष्ट...	आचार्य उदयन मीमांसक	२३
महर्षि दयानन्द सरस्वती की वेदार्थ पद्धति	आचार्या डॉ. सूर्यादेवी चतुर्वेदा	२९
वैदिक साहित्य में वर्णित स्त्री विमर्श...	डॉ. रवीन्द्र कुमार	३८
संस्कृतभाषा के पठन-पाठन में महर्षि दयानन्द...	डॉ. अभिमन्यु	४२
महर्षि दयानन्द की वेदार्थ पद्धति	आचार्य योगेन्द्र याज्ञिक	४८
स्वामिदयानन्दस्य वैदिकचिन्तनम्...	आचार्या डॉ. अन्नपूर्णा	५२
महर्षि दयानन्द सरस्वती (कविता)	ब्र. निशान्त कुमार	५५
महर्षि दयानन्द सरस्वती का शिक्षा दर्शन	डॉ. नवीन कुमार	५६
राष्ट्रनेता महर्षि दयानन्द का राजधर्म	डॉ. शिव कुमार	६२
महर्षि दयानन्द एवं उनके दार्शनिक चिन्तन	डॉ. सुभाष चन्द्र शास्त्री	६४
युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सदैव...	डॉ. कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री	६६
वैदिक वर्ण व्यवस्था का आधार...	डॉ. महावीर सिंह आर्य	७४
महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत समाजसुधार...	डॉ. वर्षा भाटी	७६
महर्षिदयानन्देन प्रतिपादिता शिक्षा...	शिवदेव आर्यः	७८
भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन में...	डॉ. राकेश कुमार आर्य	८२
तेजस्वी राष्ट्रवाद के समर्थक और समाज...	श्री लखन लाल आर्य	८७
समाजसुधारकः महर्षिदयानन्दः	डॉ. हेमलता रानी	९२
महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन...	सुभाष चन्द्र शर्मा	९४
महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित (मुद्रित) ग्रन्थों का विवरण		९६
विभिन्न महापुरुषों के वचनों में 'महर्षि दयानन्द सरस्वती'		९७
श्रीमद् दयानन्द वेदार्ष महाविद्यालय-न्यास द्वारा सञ्चालित शाखा संस्थाएं		९९

नीमीतीरे सततसुखदे सर्वतो दर्शनीयम्,
पौन्धाग्रामे नगरनिनदाद् दूरमीक्ष्यं मनुष्यैः।
हैमे तुङ्गे शिखरिशिखरे शोभनोपत्यकायाम्,
आर्षज्योतिर्मठगुरुकुलं राजते संसृतौ मे।।

– डॉ. रवीन्द्रकुमारः

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।
किसी भी वाद के लिए न्यायक्षेत्र देहरादून होगा।

सम्पादक की लेखनी से....

ओ३म्। प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः।
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी॥ (सामवेद)

भारतवर्ष ऋषि-मुनियों, त्यागी-तपस्वियों, सन्तों, महापुरुषों, विचारकों, चिन्तकों आदि की जन्मभूमि, तपोभूमि और कर्मभूमि रहा है। यह भारतवर्ष अपनी विशेषताओं, मूल्यों, आदर्शों, आध्यात्मिकता, महापुरुषों, सद्ग्रन्थों, नैतिकता तथा भारतीयविज्ञान सम्मत जीवनशैली के कारण ही विश्वगुरु के उच्चतम पद पर विद्यमान रहा है। यह भारतभूमि सदा से ही ऐसे महापुरुषों की जननी रही है, जिनका उदात्त व्यक्तित्व अपने समकालीन ही नहीं अपितु युग-युगान्तर तक अपनी विशेषताओं के अनुपम वैशिष्ट्य को स्थापित रखता है। ऐसे महापुरुषों का व्यक्तित्व एवं उनके विचार सम्पूर्ण विश्व की मानव जाति का पथ-प्रदर्शन करते हैं। विक्रम संवत् की उन्नसवीं शताब्दी में हुए भारत के धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण के पुरोधा महर्षि दयानन्द सरस्वती की गणना भी ऐसे ही युगद्रष्टा महापुरुषों में होती है, जिनके कर्त्तृत्व एवं व्यक्तित्व से भारत का जनमानस ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व की मानव जाति प्रभावित हुई है।

महापुरुषों की परम्परा में ऋषिवर दयानन्द सरस्वती का नाम अत्यन्त सम्मान, श्रद्धा एवं पूज्यभाव से लिया जाता है। जैसे समस्त पर्वतों में हिमालय का शिखर सर्वोन्नत है, वैसे ही महर्षि दयानन्द सरस्वती समस्त महापुरुषों में अपने व्यक्तित्व, कर्त्तृत्व एवं वैशिष्ट्य से सर्वोन्नत हैं। वे अपने युग के महान् समाजसुधारक, वेदभाष्यकार, तत्त्ववेत्ता, दूरद्रष्टा, दार्शनिक एवं नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे हैं। सम्प्रति भारतवर्ष महर्षि दयानन्द सरस्वती की द्विजन्मशताब्दी मना रहा है। समस्त जनमानस के समक्ष महर्षि के व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व की महत्ता एवं उपादेयता को उपस्थापित करने के लिए गुरुकुल पौन्धा, देहरादून ने अपने वार्षिक महोत्सव के इस पावन अवसर पर अन्ताराष्ट्रिय मूल्याङ्कित मासिक शोधपत्रिका '**आर्ष-ज्योतिः**' के प्रस्तुत शोधाङ्क का विषय माननीय मेधाविमनीषियों की सत्प्रेरणा से '**महर्षिदयानन्दसरस्वती-विशेषाङ्क**' प्रकाशित करने का सुनिश्चय किया गया है।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म गुजरात में हुआ, यह सर्वविदित है किन्तु गुजरात के प्रान्त व स्थान को लेकर कतिपय जनमानस संदेहात्मक रहा तथा माता-पिता एवं परिवार के विषय में जानकारियाँ कुछ काल तक अव्यक्त रहीं। इसका मुख्य कारण उनका संन्यासी होना है। महर्षि के विषय में उनके द्वारा लिखित जन्मचरित्र से ही महर्षिविषयक इतिवृत्त का संक्षिप्त ज्ञान प्रारम्भ हुआ। महर्षि स्वयं लिखते हैं कि-'**प्रथम दिन से ही जो मैंने लोगों को अपने पिता का नाम और अपने कुल का स्थान बताना अस्वीकार किया, इसका यही कारण है कि मेरा कर्त्तव्य मुझ से इस बात की आज्ञा नहीं देता। यदि मेरा कोई संबंधी मेरे इस वृत्तांत से परिचय पा लेता, तो वह अवश्य मुझे ढूँढने का प्रयत्न करता। इस प्रकार उनसे दो-चार होने पर मेरा उनके साथ घर जाना आवश्यक हो जाता? इस तरह एक बार पुनः**

मुझे धन हाथ में लेना पड़ता अर्थात् गृहस्थ हो जाता। उनकी सेवा शुश्रूषा भी मुझे योग्य होती और इस प्रकार उनके मोह में पड़कर सर्वसुधार का वह उत्तम काम जिसके लिए मैंने अपना जीवन अर्पण किया है जो मेरा यथार्थ उद्देश्य है, जिसके अर्थ जीवन बलिदान करने की किंचित् सोच नहीं की और अपनी आयु को बिना मूल्य जाना और जिसके अर्थ मैंने अपना सब कुछ स्वाहा करना अपना मंतव्य समझा, अर्थात् देश का सुधार और धर्म का प्रचार, वह देश पूर्ववत् अंधकार में पड़ जाता।' (ऋषि दयानन्द सरस्वती स्वरचित लिखित वा कथित जन्मचरित्र, सम्पादक पं. भगवद्दत्त, विक्रम संवत् २००८, पृ.सं.९-१०)

मूल रूप से महर्षि द्वारा लिखित तथा कथित 'जन्मचरित्र' तथा 'थियोसोफिस्ट' पत्र से ही महर्षि के जीवनसम्बन्धी इतिवृत्तों का सुस्पष्ट उदय हुआ है। महर्षि का जन्म संवत् १८८१ में दक्षिण गुजरात प्रान्त काठियावाड़ का मजोकठा देश, मोर्वी का राज्य, औदीच्य ब्राह्मण कुल में हुआ है। महर्षि का बाल्यकाल का नाम मूलशंकर था।

महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण जीवन समाज के लिए समर्पित था। दयानन्द सरस्वती ने जब सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया, तब देश में विदेशी शासन था। अंग्रेजी सत्ता ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति की आलोचना करके भारतीयों के मन में स्वसंस्कृति व सभ्यता के प्रति हीन भावना पैदा कर दी थी। वैसे भी क्योंकि वे सत्ता में थे और हम परतन्त्र थे, इसीलिए हममें आत्मविश्वास प्रबल न्यूनता आ गई थी। महर्षि दयानन्द का सबसे बड़ा योगदान हम यह मानते हैं कि उन्होंने उस समय भारतीय समाज आत्मविश्वास को जागृत किया और समाज की सुषुप्त शक्ति को पुनर्जागृत किया। महर्षि ने **'वेदों की ओर लौटो'** का नारा देकर यह बताया कि भारत की प्राचीन संस्कृति और चिन्तन विश्व की सर्वश्रेष्ठ संस्कृति और चिन्तन में अग्रगण्य है। समाज के प्रति महर्षि दयानन्द ने उपदेश-पद्धति के द्वारा सुधार का विकल्प खोजा। समाज में व्याप्त कुरीतियों को वे बताते तथा शास्त्रीय वाद-विवाद व तर्क-वितर्क के द्वारा लोगों को कुरीतियों के मार्ग से हटाने तथा सत्य के मार्ग की ओर चलने को अग्रसर किया करते थे। ऐसे कार्य करने में स्वामी दयानन्द ने अपनी अद्भुत शक्ति लगा दी। उन्होंने लोगों को केवल आस्थावान् नहीं बनाया, अपितु सप्रमाण बात कहकर ज्ञानवान् एवं राष्ट्रभक्त बनाया। लोग प्रश्न पूछते थे और वे उनका सप्रमाण उत्तर देते थे। क्योंकि उनके उत्तर तर्क पर आधरित होते थे, इसीलिए लोगों पर उनका प्रबल प्रभाव पड़ता था।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने उस समय समाज की कुरीतियों, अंधविश्वासों और जड़ताओं को समूल समाप्त करने का जो कार्य किया, उसका भी मूल आधार तर्क ही था। स्वाभाविक है कि इसलिए उन्होंने शिक्षा पर बहुत अधिक बल दिया। वे शिक्षा को व्यक्ति और राष्ट्र की उन्नति का आधर मानते थे। 'सत्यार्थ प्रकाश' के तृतीय समुल्लास में हमें शिक्षा के बारे में उनके विचार जानने को मिलते हैं। उन्होंने तृतीय समुल्लास के आरम्भ में ही लिखा है-**'सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है।'** उन्होंने यहाँ तक लिखा है कि -**'राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पाँचवे अथवा आठवें वर्ष के आगे अपने लड़कों ओर लड़कियों को घर में न रख सकें। पाठशाला में अवश्य भेज देवें। जो न भेजे वह दण्डनीय हो।'**

महर्षि दयानन्द ने सदैव समाजसुधार के कार्यों को प्रमुखता दी है। महर्षि के लिए प्रथम राष्ट्रोन्नति का लक्ष्य था। मूर्तिपूजा, अवतारवाद, गुरुवाद, जन्मनाजातिवाद, अस्पृश्यता, बालविवाह, बहुविवाह, सती प्रथा, मृतक श्राद्ध, पशु बलि, देवदासी प्रथा, पर्दा प्रथा आदि अनेक कुप्रथाओं का घोर विरोधकर शुद्ध सर्वहितकारी वैकिद व्यवस्थाओं का प्रतिपादन किया।

महर्षि दयानन्द ने 'वेदों की ओर लौटो' का नारा देकर वेद के सत्य स्वरूप को स्थापित करते हुए पाश्चात्य विद्वानों के अशास्त्रीय वचनों का शास्त्रीय तर्कपूर्वक खण्डन कर यजुर्वेद और ऋग्वेद के सातवें मण्डल के इकसठवें सूक्त के दूसरे मन्त्र तक का भाष्य प्रतिपादित किया। वेदभाष्य की परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका, आर्याभिविनय, संस्कारविधि, सत्यार्थप्रकाश आदि अनेक ग्रन्थों का प्रणयन कर वेदार्थ मार्ग प्रशस्त किया। महर्षि ने सत्यासत्य के विवेचन के लिए अनेक ग्रन्थों का सार सत्यार्थप्रकाश में निहित किया है। महर्षि का सङ्कल्प '**कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**' रहा है, जिसके माध्यम से संसार के समस्त मनुष्यों को श्रेष्ठ बनाने के लिए प्रेरित किया गया है।

प्रस्तुत '**महर्षिदयानन्दसरस्वती-विशेषाङ्क**' में विविध विज्ञजनों के लेखों को समावेश किया गया है। समस्त लेखकों का 'आर्ष-ज्योतिः' परिवार कोटिशः आभार व्यक्त करता है। शीघ्रतावश कतिपय सम्मान्य विद्वानों से सम्पर्क भी न कर सके और कुछ विद्वान् ऐसे भी रह गए जो हमें समयाभाव या कार्यव्यस्तता के कारण लेख नहीं भेज सके हैं, उन सबके प्रति भी मैं नतमस्तक हूँ। भविष्य में भी विद्वत्समूह इसी प्रकार स्नेहाशीर्वाद से अभिषिञ्चित करेगा, ऐसा मेरा अतिशय विश्वास है।

अनेक लेखकों ने महर्षिदयानन्दविषयक जन्मतिथि आदि संयशपूर्ण तथ्यों को अपने-अपने प्रमाणों को केन्द्रित करके आलेख प्रस्तुत किये हैं, जिनसे हमारा सहमत/असहमत होना दुष्कर है, पुनरपि उन लेखों का प्रकाशन सुधिजनों के सत्यासत्यार्थ किया जा रहा है।

अन्त में मैं यही कहूँगा कि संसार में वैसा कुछ भी नहीं जो सर्वाङ्ग सुन्दर हो, ''**नास्त्येवं जगति सर्वं मनोहरं यत्।**'' अतः जो कुछ अल्पज्ञतावश मानवीय न्यूनता रह गई हों उसकी पूर्ति के लिए ''**पण्डितानां दासोऽहं क्षन्तव्यमेतत् स्खलनम्**'' कहकर यही विनम्र निवेदन करता हूँ कि आप हमारी त्रुटियों और अपने अमूल्य विचारों से हमें अवश्य अवगत करायें, जिससे भविष्य में त्रुटियों को सुधार कर प्रगतिशील विचारों का अनुसरण कर सकें।

आशा है कि 'आर्ष-ज्योतिः' का यह विशेषाङ्क 'महर्षिदयानन्दसरस्वती' के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को समझने के लिये सभी पाठकों का मार्ग प्रशस्त करेगा।

विद्वच्चरणचञ्चरीक

(शिवदेव आर्य)
गुरुकुल पौन्धा, देहरादून
मो.-८८१०००५०९६
अणुसङ्केत - shivdevaryagurukul@gmail.com

ऋषि दयानन्द का सत्सङ्ग

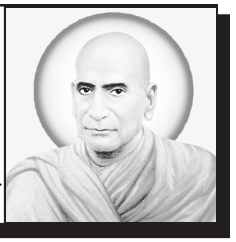

❑ अमरहुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती...✍

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन

१४ श्रावण संवत् १९३६ के दिन स्वामी दयानन्द बांसबरेली पधारे। ३ भाद्रपद को चले गए। स्वामी जी महाराज के पहुंचते ही कोतवाल साहब को हुकुम मिला कि पण्डित दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों के अन्दर फिसाद को रोकने का बन्दोबस्त कर दें। पिताजी स्वयं सभा में गये और स्वामी जी महाराज के व्याख्यानों से ऐसे प्रभावित हुए कि उनके सत्संग से मुझ नास्तिक की संशय निवृत्ति का उन्हें विश्वास हो गया। रात को घर आते ही मुझे कहा-'बेटा मुंशीराम! एक दण्डी संन्यासी आए हैं, बड़े विद्वान् ओर योगीराज हैं। उनके वक्तृत्व सुनकर तुम्हारे संशय दूर हो जायेंगे। कल मेरे साथ चलना।' उत्तर में कहा दिया कि चलूंगा परन्तु मन में वही भाव रहा कि केवल संस्कृत जानने वाला साधु बुद्धि की बात क्या करेगा? दूसरे दिन बेगम बाग की कोठी में पिताजी के साथ पहुँचा जहाँ व्याख्यान हो रहा था। उस दिव्य आदित्य मूर्ति को देख कुछ श्रद्धा उत्पन्न हुई, परन्तु जब पादरी टी. जे. स्काट और दो तीन अन्य युरोपियनों को उत्सुकता से बैठे देखा तो श्रद्धा और भी बढ़ी। अभी दस मिनट वक्तृत्व नहीं सुनी था कि मन में विचार किया- 'यह विचित्र व्यक्ति है कि केवल संस्कृतज्ञ होते युक्तियुक्त बातें करता है कि विद्वान् दंग हो जायें।' व्याख्यान परमात्मा के निज नाम ओ३म् पर था। वह पहले दिन का आत्मिक आह्वान कभी भूल नहीं सकता। नास्तिक रहते हुए भी आत्मिक आह्लाद में निमग्न कर देना ऋषि आत्मा का ही काम था।

उसी दिन दण्डी स्वामी से निवेदन किया गया कि टाउनहाल मिल गया है इसलिए कल से व्याख्यान वहाँ शुरु होंगे। स्वामी जी ने उच्च स्वर से कह दिया कि सवारी समय पर पहुँच जाया करेंगी तो वह तैयार मिलेंगे।

टाउनहाल में जब तक 'नमस्ते', 'पोप', 'पुराणी, जैनी, किरानी, कुरानी' इत्यादि परिभाषाओं का अर्थ बतलाते रहे तबतक तो पिताजी श्रद्धा से सुनते रहे, परन्तु जब मूर्ति पूजा और ईश्वरावतार का खण्डन होने लगा तो जहाँ एक ओर मेरी श्रद्धा बढ़ने लगी, वहाँ पिताजी ने तो आना बन्द कर दिया और एक अपने मातहत थानेदार की ड्यूटी लगा दी। २४ अगस्त की शाम तक मेरा समय विभाग यह रहा कि दिन का भोजन करके दोपहर को ही बेगम बाग की कोठी पहुंचे ड्योढी पर बैठ जाता। २ और ४ बजे के बीच में जब ऋषि का दरबार लगता तो आज्ञा से जो पहला मनुष्य आचार्य ऋषि को प्रणाम करता वह मैं था। प्रश्नोत्तर होते रहते और मैं उनका आनन्द लेता रहता। व्याख्यान के बाद २० मिनट तक सब दरबारी विदा हो जाते और आचार्य चलने की तैयारी कर लेते। मैं अपनी बेगनट पर सीधा टाउनहाल पहुँचता। व्याख्यान का आनन्द उठाकर उस समय तक घर न लौटता जब तक आचार्य्य दयानन्द की बग्घी उनके डेरे की ओर न चल देती। २५, २६, २७ अगस्त को ऋषि दयानन्द के पादरी स्काट के साथ तीन शास्त्रार्थ हुए। विषय प्रथम दिवस पुनर्जन्म, द्वितीय दिन ईश्वरावतार और तीसरे दिन यह था कि मनुष्य के पाप बिना फल भुगते क्षमा किये जाते हैं या नहीं। पहले दो दिन लेखकों में मैं भी था। परन्तु दूसरी रात को मुझे सन्निपातज्वर हो गया और फिर आचार्य दयानन्द के दर्शन मैं न कर सका। ३० श्रावण से ९ भाद्रपद (१५ से २५ अगस्त) तक ऋषि जीवन सम्बन्धी अनेक घटनाएं मैंने देखी जिनमें से उन्हीं कुछ एक-दो यहाँ

लिखूंगा जिनका प्रभाव मुझ पर ऐसा पड़ा कि अब तक मेरी आंखों के सामने घूम रही है।

मुझे आचार्य दयानन्द के सेवकों से मालूम हुआ कि वह नित्य प्रातः शौच से निवृत्त होकर, केवल कौपीन पहिने लठ्ठ हाथ में लिये, ३ बजे बाहर निकल जाते हैं और ६ बजे लौटकर आते हैं। मैंने निश्चय किया कि उनका पीछा करके देखना चाहिए कि बाहर क्या करते हैं। दबदब-ए केसरी अखबार के एडिटर भी मेरे साथ हो लिये। ठीक ३ बजे बाहर निकलकर आचार्य चल दिये हम पीछे हो लिये। पाव मोल धीरे-धीरे चलकर वह इस तेजी से चले कि मुझ-सा शीघ्रगामी जवान भी उन्हें निगाह में रख न सका। आगे तीन मार्ग फटते थे। हमें कुछ पता न लगा कि किधर गये। दूसरे प्रातःकाल हम अढ़ाई बजे से हो घात में उस जगह छिपकर जा बैठे जहाँ से तीन मार्ग फटते थे। उस विशाल रुद्र मूर्ति को आते देखकर हम भागने को तैयार हो गए। वह तेज चलते थे और मैं पीछे भाग रहा था। मेरे पीछे बनिये एडिटर भी लुढ़कते-पुढ़कते आ रहे थे। बीच में एक-आधा मील की दौड़ भी रुद्र स्वामी ने लगाई। परन्तु वहाँ मैदान था मैंने भी उनको आँख से ओझल न होने दिया, अन्त में पाव मील धीरे-धीरे चलकर एक पीपल के वृक्ष तले बैठ गये। घड़ी से मिलाया तो पूरे डेढ़ घण्टे आसन जमाये समाधि में स्थित रहे। प्राणायाम करते नहीं प्रतीत हुए, आसन जमाते ही समाधि लगा गयी। उठकर दो अंगड़ाइयां लीं और टहलते हुए अपने तत्कालीन आश्रम की ओर चल दिए।

एक शनिचर के व्याख्यान के पीछे श्रोतागण को बतलाया गया कि दूसरे दिन (आदित्यवार को) नियत समय से एक घण्टा पहले व्याख्यान शुरु होगा। आचार्य ने उसी समय कह दिया कि सवारी एक घण्टा पहले पहुंचेगी तो मैं उसी समय चलने को तैयार रहूंगा आदित्यवार को लोग पिछले समय से डेढ़ घंटे पहले ही जमा होने लगे। हॉल (व्याख्यानं भवन) खचाखच भर गया परन्तु आचार्य न पहुंचे। पाव घण्टा, आध घण्टा भी बीत गया परन्तु बग्घी की घड़घड़ाहट न सुनायी दी। पौन घण्टा पीछे ऋषि दयानन्द की विशाल मूर्ति उन्हीं वस्त्रों से अलंकृत जो उनके चित्र में दिखाए जाते है, ऊपर चढ़ती दिखायी दी। मध्य की डाट के नीचे वाली एक ओर की दीवार में सोटा टेक कर, ईश्वर प्रार्थना के लिए बैठने से पूर्व उन्होंने कहा- "मैं समय पर तैयार था। परन्तु सवारी न आई। बहुत प्रतीक्षा के पीछे पैदल चल दिया। मार्ग में पिछले नियत समय पर ही सवारी मिली। इसलिए देरी हो गई। सभ्य पुरुषों! मेरा कुछ दोष नहीं है। दोष बच्चों के बच्चों का है, जो प्रतीज्ञा करके पालन करन नहीं जानते।' यह संकेत खजांजी लक्ष्मीनारायण की ओर था जिनके अतिथि होकर उनकी बेगम बागवाली कोठी में स्वामी दयानन्द रहते थे। लक्ष्मीनारायण सरकारी पांच खजानों के खजांची और बरेली में उस समय करोड़पति समझे जाते है।

एक व्याख्यान में वह पौराणिक असभ्यता तथा आचार भ्रष्ट कहानियों का खण्डन कर रहे थे। उस समय पादरी स्काट, मिस्टर एडवडंस कमिश्नर, मिस्टर रीड कलेक्टर, १५ वा २० अंग्रेजों सहित उपस्थित थे। आचार्य ने अन्य कहानियों में पंचकुंवारियों की कल्पना पर कटाक्ष किया और एक से अधिक पति रखने वाली द्रौपदी, तारा, मन्दोदरी आदिक के किस्से सुनाकर श्रोतागण के धार्मिक भावों की अपील की। स्वामी जी के कथन में हास्यरस अधिक होता था, इसलिए श्रोतागण थकते न थे। साहब लोग हंसते और आनन्द लूटते रहे। फिर आचार्य बोले- 'पुरानियों की तो यह लीला है, अब किरानियों की लीला सुनो! यह ऐसे भ्रष्ट है कि कुमारी के पुत्र उत्पन्न होना बतलाते, फिर दोष सर्वथा शुद्ध स्वरुप परमात्मा पर लगाते और ऐसा पाप करते हुए तनिक भी लज्जित नहीं होते।' इतना सुनते ही कमिश्नर और कलेक्टर के मुंह क्रोध के मारे लाल हो गये परन्तु आचार्य का भाषण उसी बल से चलता रहा और अन्त तक ईसाई मत का ही खण्डन होता रहा।

दुसरे दिन प्रातःकाल लक्ष्मीनारायण को

कमिश्नर सहाब के यहाँ बुलावा ही खजांजी आया। साहब ने कहा अपने पण्डित स्वामी को समझ आपके साहनी से काम न लिया करें। हम ईसाई तो सभ्य है, वाद-विवाद की सख्ती से नहीं घबराते परन्तु तो यदि जाहिल हिन्दू-मुसलमान भड़क उठे तो तुम्हारे पंण्डित स्वामी के व्याख्यान बन्द हो जायेंगे।

खजांची जी ने यह संदेश आचार्य तक पहुंचाने की प्रतिज्ञा करके लौटे। खजांची जी चाहते थे कि बात छेड़ने वाला कोई अन्य मिल जाए, जिससे वह आचार्य की झाड़ से कुछ-कुछ बच जायें। जब कोई खड़ा न हुआ तो मुझ नास्तिक को आगे किया गया। परन्तु मैंने यह कहकर अपना पीछा छुड़ावा कि खजांची साहब कुछ कहना चाहते हैं, क्योंकि कमिश्नर साहब ने उनको बुलाया था। अब सारी मुसीबत खजांची पर टूट पड़ी। खजांची साहब कहीं सिर खुजाते हैं, कही गला साफ करते है। पांच मिनट तक आश्चर्ययुक्त रहकर आचार्य बोले-'भाई, तुम्हारा तो कोई काम करने का समय ही नियत नहीं, तुम समय के मूल्य को नहीं समझते। मेरे लिये समय अमूल्य है। जो कुछ कहना हो कह दो।' इस पर खजांची जी बोले- 'महाराज! अगर सख्ती न की जाय तो क्या हर्ज है? असर भी अच्छा पड़ता है। अंग्रेजों को नाराज करना भी अच्छा नहीं इत्यादि-इत्यादि।' बड़ी कठिनाई से अटक-अटक कर ये वचन गरीब के मुह से निकले। महाराज हंसे और कहा-अरे! बात क्या थी जिसके लिए गिड़गिड़ाता है। मेरा इतना समय भी नष्ट किया। साहब ने कहा होगा तुम्हारा पण्डित कड़ा बोलता है व्याख्यान बन्द हो जायेंगे, यह होगा वह होगा। अरे भाई! मैं होवा तो नहीं कि तुझे खालूंगा। उसने तुझसे कहा, तू सीधा मुझसे कह देता। व्यर्थ इतना समय क्यों गंवाया?' एक विश्वासी पौराणिक हिन्दू बैठा था, बोला- 'देखो! यह तो कोई अवतार हैं, मन की बात जान लेते हैं।'

उस शाम के व्याख्यान को कौन सुनने वाला भूल सकता है? मैंने बड़े बड़े वाग्विशारदों के व्याख्यान सुने हैं परन्तु जो तेज आचार्य के उस दिन के सीधे-साधे शब्दों से निकल कर सारी सभा को उत्तेजित कर गया उसके साथ किसकी उपमा दूं। उस दिन आत्मा के स्वरुप पर व्याख्यान था। पूर्व दिवस के सब अंग्रेज पादरी स्काट के अतिरिक्त उपस्थित थे। व्याख्यान में सत्य के बल का विषय आया। सत्य की व्याख्या करते हुए आचार्य ने कहा - लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो कलक्टर क्रोधित होगा, अप्रसन्न होगा' गर्वनर पीड़ा देगा। अरे! चक्रवर्ती राजा भी क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे। 'इसके पीछे एक श्लोक पढ़कर आत्मा की स्तुति की। न शास्त्र उसे काट सके, न आग उसे जला सके, न पानी उसे गला सके और न हवा उसे सुखा सके। वह नित्य अमर है। फिर गरजते शब्दों में बोले-यह शरीर तो अनित्य है, इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है। इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नाश कर दे।' चारों ओर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर सिंहनाद करते हुए कहा - किन्तु वह शूरवीर पुरुष मुझे दिखाओं जो मेरी आत्मा का नाश करने का दवा करे। जब तक ऐसा वीर इस संसार में दिखाई नहीं देता तब तक मैं यह सोचने के लिए तैय्यार नहीं कि मैं सत्य को दवाऊंगा वा नहीं। सारे हाल में सन्नाटा छा गया। रुमाल का गिरना भी सुनायी देता था।

व्याख्यान में कुछ देर हो गयी थी। उठते ही ऋषि दयानन्द ने पूछा-भक्त स्काट आज दिखायी नहीं दिये। पादरी साहब किसी व्याख्यान से भी अनुपस्थित न होते थे, और अलग भी प्रेम वार्तालाप किया करते थे, इसलिए ऋषि को उनसे बड़ा प्रेम हो गया था। किसी ने कहा, पास के गिरजे चेपल में आज उनका व्याख्यान था। सीढ़ियों के नीचे उतरते ही ऋषि ने कहा- 'चलो, भक्त स्काट का गिरजा देख आवें।' अभी तीन चार सौ आदमी खड़े थे। वह सारी भीड़ लेकर गिरजा पहुंचे। वहाँ व्याख्यान समाप्त हो चुका था श्रोता सौ के लगभग थे। पादरी साहब नीचे उतर आये, स्वामी जी को वेदी पुलपिट पर ले गये और कहा कि कुछ उपदेश दीजिए। आचार्य ने खड़े-खड़े ही बीस मिनट तक मनुष्य-पूजा का खण्डन किया।

एक आचार्य को पता लगा कि खजांची जी का सम्बन्ध किसी वेश्या से है। उनके आने पर पूछा-'तुम्हारा वर्ण क्या है?' उन्होंने कहा क्या कहूं? आप तो गुण कर्मानुसार व्यवस्था मानते है। आचार्य बोले-'यों तो सब वर्णसंकर है परन्तु तुम जन्म से क्या हो? उत्तर मिला कि खत्री। महाराज बोले- "यदि खत्री के वीर्य से वेश्या में पुत्र उत्पन्न हो तो उसे क्या कहोगे?' खजांची ने सिर नीचा कर लिया। इस पर महाराज ने कहा-सुनो भाई! हम किसी का मुलाहजा नहीं करते। हम तो सत्य ही कहेगे। खजांची ने उस वेश्या को कही अन्यत्र भिजवा दिया। एक अन्तिम घटना के साथ इस अपूर्व सत्संग की कथा समाप्त करता हूँ। यद्यपि आचार्य दयानन्द के उपदेशों ने मुझे माहित कर लिया था तथापि मैं मनमें सोचा करता था कि यदि ईश्वर और वेद के ढकोसले को पण्डित दयानन्द स्वामी तिलाजंलि दे दें तो फिर कोई भी विद्वान् उनकी अपूर्व युक्ति और तर्कणा शक्ति का सामना करने वाला न रहे। मुझे अपने नास्तिकपन का उन दिनों अभिमान था, एक दिन ईश्वर के अस्तित्व पर आक्षेप कर डाले। पांच मिनट के प्रश्नोत्तर में ऐसा घि गया कि जिह्वा पर मुहर लग गयी। मैंने कहा - 'महाराज! आपको तर्कना बड़ी तीक्ष्ण है। आपने मुझे चुप तो करा दिया, परन्तु यह विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर की कोई हस्ती (अस्तित्व) है।' दूसरी बार फिर तैयारी करके गया परन्तु मेरे तर्क को फिर पछाड़ मिली करके गया परन्तु मेरे तर्क को फिर पछाड़ मिली। मैंने फिर अन्तिम उत्तर वही दिया - 'महाराज! आपकी तर्कणाशक्ति बड़ी प्रबल है, आपने मुझे चुप तो करा दिया, परन्तु यह विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर की कोई हस्ती है।' महाराज पहले हंसे, फिर गम्भीर स्वर से कहा 'देखो, तुमने प्रश्न किए, मैंने उत्तर दिए-यह युक्ति की बात थी। मैंने कब प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा विश्वास परमेश्वर पर करा दूंगा। तुम्हारा परमेश्वर पर विश्वास उस समय होगा जब वह प्रभु स्वयं तुम्हें विश्वासी बना देंगे।' अब स्मरण आता है कि नीचे लिखा उपनिषद्वाक्य उन्होंने पढ़ा था -

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेध्या न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।। कठ. १/२/२२

ओ३म्

ऋषि दयानन्द के चरणों में सादर समर्पण।

ऋषिवर! तुम्हें भौतिक शरीर त्यागे ४१ वर्ष हो चुके, परन्तु तुम्हारी दिव्यमूर्ति मेरे हृदयपटल पर अब तक ज्यों की त्यों अंकित है। मेरे निर्बल हृदय के अतिरिक्त कौन मरणधर्मा मनुष्य जान सकता है कि कितनी बार गिरते-गिरते तुम्हारे स्मरण मात्र ने मेरी आत्मिक रक्षा की है। तुमने कितनी गिरी हुई आत्माओं की काया पलट दी, इसकी गणना कौन मनुष्य कर सकता है, परमात्मा के बिना, जिनकी पवित्र गोद में तुम इस समय विचर रहे हो, कौन कह सकता है कि तुम्हारे उपदेशों से निकली हुई अग्नि ने संसार में प्रचलित कितने पापों को दग्ध कर दिया है? परन्तु अपने विषय में मैं कह सकता हूँ कि तुम्हारे सहवास ने मुझे कैसी गिरी हुई अवस्था से उठा कर सच्चा लाभ करने के योग्य बनाया?

मैं क्या था इसे इस कहानी में मैंने छिपाया नहीं। मैं क्या बन गया और अब क्या हूँ। वह सब तुम्हारी कृपा का ही परिणाम है। इसलिए इससे बढ़कर मेरे पास तुम्हारी जन्मशताब्दि पर और कोई भेंट नहीं हो सकती कि तुम्हारा दिया आत्मिक जीवन तुम्हें ही अर्पण करुं। तुम वाणी द्वारा प्रचार करने वाले केवल तत्ववेत्ता ही न थे उनको क्रिया में लाकर सिद्ध कर देना भी तुम्हारा ही काम था। भगवान् कृष्ण की तरह तुम्हारे लिए भी तीनों लोकों में कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया था, परन्तु तुमने मानव-संसार को सीधा मार्ग दिखलाने के लिए कर्म की उपेक्षा नहीं की।

भगवन् मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, उस ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ। इसलिए जिस परमपिता की असीम गोद में तुम परमानन्द का अनुभव कर रहे हो, उसी से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे सच्चा शिष्य बनने की शक्ति प्रदान करें।

देवहूति दयानन्द

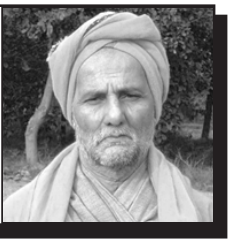

❑ स्वामी विवेकानन्द सरस्वती...✍

पृथक्प्रायन्प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा। न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः॥[१]

जिन्होंने दिव्य गुणों का अपने अन्दर आधान कर लिया है, वे सामान्य लोगों के मार्ग से पृथक् श्रेष्ठ मार्ग का अवलम्बन लेते हैं। जो सामान्य लोगों के लिए अति दुस्तर है अर्थात् सामान्य लोग उस मार्ग पर नहीं चल सकते हैं। वे ऐसे कार्य सम्पादित कर जाते हैं जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। और सामान्य लोग, जो यज्ञीय भावना से रहित होते हैं वे इस दुःखरूपी संसार सागर में गोता लगाते रहते हैं। ऋषि दयानन्द उन व्यक्तियों में से थे जिन्होंने अपने अन्दर दिव्य गुणों का आधान किया था। मोहनदास कर्मचन्द गाँधी जी जैसे बडबोले लोग जिसके समक्ष मौन हो गये थे अर्थात् उनकी बोलती बन्द हो गई थी ऐसे महाप्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जी ने कहा है कि- **महर्षि दयानन्द जी से बढकर भी मनुष्य होता है, इसका प्रमाण प्राप्त नहीं हो सकता।** महर्षि दयानन्द का वास्तविक मूल्यांकन निराला जी के इन वाक्यों से ध्वनित होता है।

महर्षि दयानन्द जिन परिस्थितियों में उत्पन्न हुए वह भारतवर्ष की राजनीतिक पराधीनता का काल था। ईसाईयत से प्रभावित होकर महामहोपाध्याय थत्ते शास्त्री जैसे लोग ईसाई धर्म को लोभवशात् स्वीकार कर रहे थे। चतुर्दिक् वैदिक संस्कृति पर आक्रमण हो रहा था। वेद गडरियों के गीत हैं ऐसा कहा जाता और पढाया जाता था। वेद के समर्थक लोग भी मन्त्रपाठ के अतिरिक्त वेद के गहन मन्त्रार्थ को समझने की शक्ति नहीं रखते थे। ऐसी विपरीत परिस्थिति में भी ऋषि दयानन्द के वेदप्रचार एवं विद्वत्ता के विषय में मुम्बई वाले प्रोफेसर श्री श्रीधर गणेश ने कहा है- **विलक्षण युक्ति से स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मुझे निरुत्तर किया। और मेरे पास उनके साथ अधिक शास्त्रार्थ करने के लिए कोई युक्ति अवशिष्ट नहीं रही थी। यद्यपि इस समय भी मेरा मत 'वेद पौरुषेय हैं' यही स्थिर है, तथापि स्वामी जी की युक्तियाँ और विद्वत्ता निःसंशय प्रशंसनीय थी, और इसी कारण मेरे अन्दर उनके विषय में दृढ श्रद्धा है।**

प्रसिद्ध काशी शास्त्रार्थ में काशी के विशुद्धानन्द आदि विद्वानों के पराजित होने पर भी जो अहंकारवश अपनी पराजय स्वीकार नहीं करते थे, उस वेदार्थज्ञानशून्य विद्वत् नगरी में सात बार जाकर जिन्होंने शुद्ध वेदार्थज्ञान को समझाने का प्रयास किया और **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**[२] का उद्घोष किया तथा आर्य शब्द का वास्तविक अर्थ जाति नहीं किन्तु गुण-कर्म-स्वभाव से श्रेष्ठ मनुष्य का वाचक है यह बतलाया। आर्य लोग बाहर से (विदेश से) नहीं आये हैं, अपितु भारत देश ही उनका मूल निवास था और यहीं से वे लोग सारे विश्व में वेदप्रचार करते हुए फैले। आज मैक्सिको, मास्को तथा अन्य विभिन्न देशों में उसकी सत्यता (प्राचीनता) के प्रमाण प्राप्त हो रहे हैं। उनका उद्घोष सत्य की कितनी दृढ चट्टान पर अवस्थित था यह अब विविध अनुसन्धानों से सिद्ध हो रहा है। सारे भूमण्डल पर आर्यों का चक्रवर्त्ती साम्राज्य था और वैदिक संस्कृति के लोग अनुगामी थे। उनका यह कथन देदीप्यमान सूर्य की भाँति उद्भासित हो रहा है। उनकी २००वीं जन्मशताब्दी समारोह पर हमें

उनके सिद्धान्तों को क्रियान्वित करके विश्व की मानवता की रक्षा करनी चाहिए। **'पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः[३], श्रृण्वन्तु विश्वेऽमृतस्य पुत्राः[४], अन्योऽन्यमभिहर्यत[५]'** आदि वैदिक उपदेशों के द्वारा हमें आगे बढना चाहिए तभी उनकी २००वीं जन्मशताब्दी मनाना सार्थक होगा।

सन्दर्भ :-

१. ऋग्. १०/४४/६
२. ऋग्. ९/६३/५
३. ऋग्. ९/७५/१४
४. ऋग्. १०/१३/१, श्वेता. २/५
५. अथर्व. ३/३०/१

- कुलाधिपति,
गुरुकुल प्रभात आश्रम,
टीकरी, भोला झाल, मेरठ

जन्मपत्र उचित अथवा अनुचित

वह जन्मपत्र नहीं किन्तु उसका नाम 'शोकपत्र' रखना चाहिये क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है तब सब को आनन्द होता है। परन्तु वह आनन्द तब तक होता है कि जब तक जन्मपत्र बनके ग्रहों का फल न सुने। जब पुरोहित जन्मपत्र बनाने को कहता है तब उस के माता, पिता पुरोहित से कहते हैं-'महाराज! आप बहुत अच्छा जन्मपत्र बनाइये' जो धनाढ्य हों तो बहुत सी लाल पीली रेखाओं से चित्र विचित्र और निर्धन हो तो साधारण रीति से जन्मपत्र बनाके सुनाने को आता है। तब उसके मां बाप ज्योतिषी जी के सामने बैठ के कहते हैं-'इस का जन्मपत्र अच्छा तो है? ' ज्योतिषी कहता है-'जो है सो सुना देता हूं। इसके जन्मग्रह बहुत अच्छे और मित्रग्रह भी बहुत अच्छे हैं जिन का फल धनाढ्य और प्रतिष्ठावान्, जिस सभा में जा बैठेगा तो सब के ऊपर इस का तेज पड़ेगा। शरीर से आरोग्य और राज्यमानी होगा।' इत्यादि बातें सुनके पिता आदि बोलते हैं-'वाह वाह ज्योतिषी जी! आप बहुत अच्छे हो।' ज्योतिषी जी समझते हैं इन बातों से कार्य्य सिद्ध नहीं होता। तब ज्योतिषी बोलता है-'ये ग्रह तो बहुत अच्छे हैं परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं अर्थात् फलाने-फलाने ग्रह के योग से ८ वर्ष में इस का मृत्युयोग है।' इस को सुन के माता पितादि पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़ के शोकसागर में डूब कर ज्योतिषी से कहते हैं कि 'महाराज जी! अब हम क्या करें?' तब ज्योतिषी जी कहते हैं-'उपाय करो'। गृहस्थ पूछे 'क्या उपाय करें।' ज्योतिषी जी प्रस्ताव करने लगते हैं कि 'ऐसा-ऐसा दान करो। ग्रह के मन्त्र का जप कराओ और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओगे तो अनुमान है कि नवग्रहों के विघ्न हट जायेंगे।' अनुमान शब्द इसलिये है कि जो मर जायेगा तो कहेंगे हम क्या करें परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है। हम ने तो बहुत सा यत्न किया और तुम ने कराया, उस के कर्म ऐसे ही थे। और जो बच जाय तो कहते है कि देखो-हमारे मन्त्र, देवता और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है? तुम्हारे लड़के को बचा दिया। यहां यह बात होनी चाहिये कि जो इनके जप पाठ से कुछ न हो तो दूने तिगुने रुपये उन धूर्तों से ले लेने चाहिये और बच जाय तो भी ले लेने चाहिये क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि 'इस के कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं ।' वैसे गृहस्थ भी कहें कि 'यह अपने कर्म और परमेश्वर के नियम से बचा है, तुम्हारे करने से नहीं' और तीसरे गुरु आदि भी पुण्य दान करा के आप ले लेते हैं तो उनको भी वही उत्तर देना, जो ज्योतिषियों को दिया था।

- महर्षि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, द्वितीय समुल्लास

दयानन्द-द्विजन्मशताब्दी के सन्दर्भ में उल्लेखनीय तथ्य

❑ डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री...✍

(क) ऋषि दयानन्द के जन्म का वर्ष १८२५ ई. है -

ऋषि दयानन्द ने स्वलिखित जन्मचरित्र में लिखा था-'संवत् १८८१ के वर्ष में मेरा जन्म दक्षिण गुजरात प्रान्त काठियावाड़ का मजोकठा देश, मोर्वी का राज्य, औदीच्य ब्राह्मण के घर में हुआ था।' [आत्मकथा, दयानन्द सरस्वती, वैदिक पुस्तकालय, अजमेर, पृष्ठ-७ तथा २१, १९८३ ई.] ऋषि दयानन्द लिखित 'आत्मकथा' की मूलप्रति देवेन्द्र बाबू को नहीं मिल सकी थी। उन्हें इसके अंग्रेजी-अनुवाद से सन्तोष करना पड़ा, जिसकी पहली किश्त १८७९ ई. के अक्टूबर मास में 'थियोसोफिस्ट' पत्र में छपी थी। इस पत्र की सम्पादिका मैडम एच.पी. ब्लैवेट्स्की थीं। अंग्रेजी अनुवाद का पाठ इस प्रकार था -

It was in a Brahmin family of the Audichya easte in a town belonging to the Rajah of Morwee, in the province of Kathiawar, that in the year of samvat, 1881, (1824 A.D.)

स्पष्ट है कि स्वामी जी ने अपने जन्म के वर्ष का उल्लेख संवत् (विक्रम) के रूप में किया था, ईस्वी सन् के रुप में नहीं। स्वामी जी की पुस्तकों तथा पत्रों में भी विक्रमी संवत् का ही उल्लेख है, ईस्वी सन् का नहीं, 'पत्र-विज्ञापन' के कुछेक अपवादों को छोड़कर। जाहिर है कि 'संवत् १८८१' का पाठ ऋषि का था। अंग्रेजी अनुवाद में अनुवादक ने '१८२४ ई' को अपनी ओर से जोड़ दिया। इस 'थियोसोफिस्ट' पत्र में प्रकाशित '१८२४ ई.' का ही प्रचार-प्रसार सर्वत्र हो गया। ईस्वी सन् का सर्वत्र प्रचलन होने से १८२४ ई. का ही प्रचार-प्रसार सर्वत्र होने लगा। जो लोग (यथा-आदित्यमुनि जी) यह कहते हैं कि 'ऋषि दयानन्द के प्रायः सभी जीवनी-लेखक उत्तर भारतीय थे, अतः देवेन्द्र बाबू और पं. लेखराम के कारण १८२४ ई. का प्रचार-प्रसार हो गया। ईस्वी सन् का सर्वत्र प्रचलन होने से १८२४ ई. का ही प्रचार-प्रसार सर्वत्र होने लगा। जो लोग (यथा-आदित्यमुनि जी) यह कहते हैं कि ऋषि दयानन्द के प्रायः सभी जीवनी-लेखक उत्तर भारतीय थे, अतः देवेन्द्रबाबू और पं. लेखराम के कारण १८२४ ई. का प्रचार-प्रसार हो गया और इन्हीं लोगों ने उत्तरभारतीय चैत्री विक्रम संवत् का भी प्रचार-प्रसार कर दिया।

यह कथन पूरी तरह असत्य है। क्योंकि देवेन्द्रबाबू को ऋषि की 'आत्मकथा' की मूलप्रति मिली ही नहीं, उन्हें 'थियोसोफिस्ट' में प्रकाशित अंग्रेजी-अनुवाद पर निर्भर रहना पड़ा। देवेन्द्रबाबू के शब्द हैं - 'आर्यभाषा में जो आत्मचरित मिलता है वह उसी का अंग्रेजी अनुवाद है।.... यह पता नहीं लग सकता कि आर्यभाषा के असली आत्मचरित का क्या हुआ और कहाँ गया? सुनते हैं वह परोपकारिणी सभा में सुरक्षित है, परन्तु कई बार यत्न करने पर भी उक्त सभा के किसी कर्मचारी या अधिकारी ने कुछ भी पता नहीं दिया।' [देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, ऋषि दयानन्द का जीवनचरित, भाग-२, पृ.-३६६, अजमेर, चतुर्थावृत्ति, २०१५ वि.सं.]

ऋषि दयानन्द की 'आत्मकथा' (आर्यभाषा में लिखित) की मूलप्रति पं. भगवद्दत्त जी को संवत् १९७४ वि. में गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव के अवसर पर प्रो. रामदेव जी (आचार्य, गुरुकुल कांगड़ी) से प्राप्त हो गई। प्रो. रामदेव जी ने इसकी प्रति स्वामी श्रद्धानन्द जी से प्राप्त की थी। [द्र. पं. भगवद्दत्त, ऋषि दयानन्द लिखित वा कथित जन्मचरित्र, पृ.-६,

रामलाल कपूर ट्रस्ट, दशम संस्करण, १९८६ ई.]

प्रो. भवानीलाल भारतीय को 'परोपकारिणी (सभा) के पुराने कागजों में वैदिक यन्त्रालय के स्वामीजी के समकालीन प्रबन्धकर्त्ता मुंशी समर्थदान के बस्तों में स्वामी जी के आत्मवृत्तान्त की मूल पाण्डुलिपि दो किस्तों में प्राप्त हुई।' [आत्मकथा, दयानन्द सरस्वती, सम्पादक-डॉ. भवानीलाल भारतीय, पृ.-४, प्रकाशक-वैदिक पुस्तकालय अजमेर, सन्-१९८३ ई.]

अत: ऋषि दयानन्द के जन्म का ईस्वी वर्ष १८२४ के प्रचार-प्रसार का मूल उत्स कर्नल अल्कॉट और मैडम ब्लैवेट्स्की की 'थियोसोफिस्ट' पत्रिका है। इसमें प्रकाशित '१८२४ ई.' का ही अनुकरण पं. लेखराम तथा पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने किया। जहाँ तक १८८१ विक्रम संवत् को उत्तर भारतीय चैत्री विक्रमसंवत् समझने का प्रश्न है, वह ठीक ही है। ऋषि के सभी जीवनीकारों ने ऐसा ही ठीक समझा है और यही उचित भी है।

स्वामी दयानन्द तथा उनके बाद भी पचासों वर्षों तक प्राय: भारतीय मनीषी विक्रम संवत् का ही प्रयोग करते रहे हैं। हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध समालोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में सर्वत्र विक्रम संवत् का प्रयोग किया है, ईस्वी सन् का प्रयोग नहीं किया। ऋषि दयानन्द के अनुयायी स्वामी श्रद्धानन्द तथा महात्मा नारायण स्वामी ने भी 'जन्मतिथि' के रूप में अपनी 'आत्मकथा' में तिथि-संवत् विक्रमी ही प्रयोग किया, अंग्रेजी तारीख (दिनांक) तथा ईस्वी सन् का बिल्कुल नहीं प्रयोग किया। [द्रष्टव्य - 'संवत् १९१३ विक्रमी, मास फाल्गुन, कृष्ण त्रयोदशी के दिन मेरा जन्म हुआ।' (कल्याणमार्ग का पथिक, स्वामी श्रद्धानन्द, पृ.-९, प्रका. श्री घूडमल प्रहलाद कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौन सिटी, राजस्थान, २०१५ ई.)] महात्मा नारायण स्वामी जी ने भी अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है -'माघ सुदी ५ (वसन्त) संवत् १९२२ वि. को मेरा जन्म हुआ था।' [महात्मा नारायण स्वामी जी की आत्मकथा, पृ.-२८, प्रकाशक-वही, २०२० ई.]

वस्तुस्थिति यह है कि प्रत्येक विक्रम संवत् का लगभग ०९-१० मास ईस्वी सन् के जिस वर्ष में रहता है, उसी ईस्वी सन् के वर्ष में उसका शेष लगभग दो-तीन मास नहीं रहता। उदाहरणार्थ २०७९ विक्रमी संवत् का प्रारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शनिवार को हुआ, उस दिन ०२ अप्रैल २०२२ ई. थी। १ जनवरी २०२२ ई. से लेकर १ अप्रैल २०२२ ई. तक के तीन मास के काल में विक्रम संवत् २०७८ था २०७९ नहीं। इसी प्रकार २०८० विक्रमी का प्रारम्भ २२ मार्च २०२३ ई. को हुआ है और २०८० विक्रमी संवत् की समाप्ति २०२४ ई. के ८ अप्रैल को होगी। अत: जो जातक १ जनवरी से ७ अप्रैल के मध्य उत्पन्न होगा, उसके जन्म का विक्रमी संवत् तो २०८० रहेगा लेकिन ईस्वी सन् २०२३ ई. न होकर २०२४ ई. हो जाएगा। यही स्थिति स्वामी दयानन्द सरस्वती के जन्म के विक्रमी संवत् तथा ईस्वी सन् के सम्बन्ध में समझनी चाहिए। स्वामी जी का जन्म १८८१ विक्रमी संवत् में हुआ था, किन्तु मास फाल्गुन कृष्णपक्ष तथा तिथि दशमी थी, जो ईस्वी सन् के अनुसार १२ फरवरी १८२५ ई. थी, दिन शनिवार था। जो लोग ऋषि की जन्मतिथि १२ फरवरी १८२४ ई. लिख रहे हैं, वे इन सब बारीकियों से अनजान हैं। क्योंकि १२ फरवरी १८२४ ई. को विक्रमी संवत् १८८० वि., तिथि माघ शुक्ल १२-१३ थी। किन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने जन्म का विक्रमी संवत् १८८१ लिखा है, १८८० वि.सं. नहीं।

स्वामी दयानन्द ने अपनी लिखित 'आत्मकथा' में केवल विक्रमी संवत् १८८१ का उल्लेख किया है, न तो मास और तिथि बताई और न कोई ईस्वी सन् का ही उल्लेख किया। अत: १८८१ विक्रम संवत् के मास और तिथि का निश्चय करने के लिए 'सार्वदेशिक धर्मार्य्य सभा' ने १९५६ ई. से लेकर १९६० ई. तक गम्भीरतापूर्वक विचार विमर्श करके जो तिथि निश्चित की, वह तिथि फाल्गुन कृष्णपक्ष दशमी, (दाक्षिणात्यों अथवा गुजराती के अनुसार माघ कृष्णपक्ष दशमी)

शनिवार १८८१ विक्रमी संवत् तदनुसार 12 फरवरी 1825 ई. थी। इस सम्बन्ध में हम यहाँ सार्वदेशिक धर्मार्य्य सभा के प्रधान मन्त्री आचार्य विश्वश्रवा: व्यास का वक्तव्य प्रस्तुत कर रहे हैं-'महर्षि की जन्मतिथि के सम्बन्ध में सार्वदेशिक धर्मार्य्य सभा में ता. २५-५-१९५६, ता. २७-१-५७, ता. ८-६-५८, ता. २३-७-६० इतने काल तक गम्भीरतापूर्वक विचार हुआ। उन दिनों श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती सार्वदेशिक धर्मार्य्य सभा के प्रधान थे, और मैं (अर्थात्-आचार्य विश्वश्रवा:) स्वयं प्रधान मन्त्री धर्मार्य सभा का था।.....महर्षि की 'आत्मकथा में वर्णित महर्षि की स्वलिखित जीवन घटनाओं को ज्योतिष के आधार पर विचार करने पर जो तिथि निश्चित हुई, वह ..... सार्वदेशिक सभा के अन्तरंग ता. २-४-१९६७ की बैठक में घोषित की गई, वह है-ऋषि की जन्मतिथि संवत् १८८१ फाल्गुन बदि दशमी (१२ फरवरी सन् १८२५ ई. शनिवार)-आचार्य विश्वश्रवा: व्यास।' ['आर्य्यमित्र' का महर्षि मोक्ष प्राप्ति विशेषांक, कार्त्तिक कृष्ण अमावस्या संवत् २०२९ वि. ५ नवम्बर १९७२ ई., पृ.- ७३]

अत: ऋषि लिखित 'आत्मकथा' में आर्यभाषा में लिखित 'संवत् १८८१' (विक्रमी) का अंग्रेजी भाषा में अनूदित करते समय १८२४-१८२५ ई. का उल्लेख इस 'थियोसोफिस्ट' पत्र की सम्पादिका मैडम ब्लैवेट्स्की को करना चाहिए था। उनकी इस अनवधानता के कारण मात्र १८२४ ई. के उल्लेख से अग्रिम जीवनी-लेखकों में भ्रम फैला और १९६० ई. तक लिखे सभी ऋषि-जीवनियों में १८८१ विक्रमी संवत् के साथ-साथ १८२४ ई. का प्रचार-प्रसार हो गया। सर्वप्रथम सार्वदेशिक धर्मार्य्य सभा और सार्वदेशिक (अन्तरंग) सभा द्वारा फाल्गुन वदि दशमी की तिथि निश्चित होने के कारण तदनुसार १२ फरवरी १८२५ ई. का लेखन/प्रयोग/प्रचलन हो सका।

यही गलती स्वामी श्रद्धानन्द जी तथा महात्मा नारायण स्वामी के जीवनी-लेखकों ने की है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपनी जन्मतिथि १९१३ विक्रम संवत् फाल्गुन मास, कृष्णपक्ष-१३ त्रयोदशी लिखी थी, जो ईस्वी सन् के अनुसार १८५७ ई. २२ फरवरी, रविवार होता है। किन्तु स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवनी-लेखकों ने या उन पर केन्द्रित वक्तव्यों में स्वामी श्रद्धानन्द का जन्म १८५६ ई. लिखा है। यथा-

१. 'महात्मा मुंशीराम का जन्म १८५६ ई. में जालन्धर जिले के तलवन नाम के कस्बे में हुआ।' [आर्य समाज का इतिहास, इन्द्र विद्यावाचस्पति, द्वितीय भाग, पृ.-६, प्रकाशक-सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली, १९५७ ई.]

२. 'सन् १८५६ फरवरी (फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी, संवत् १९१३) को तलवन ग्राम (जालन्धर) में श्री नानकचन्द जी क्षत्रिय के घर में जन्म।' [स्वामी श्रद्धानन्द, (पं. सत्यदेव विद्यालंकार), सम्पादक-विनोद चन्द्र विद्यालंकार, पृ.- ३७७, प्रकाशक-हितकारी प्रकाशन समिति, हिण्डौन सिटी (राजस्थान) सन् २०१८ ई.]

महात्मा नारायण स्वामी जी ने अपनी 'आत्मकथा' में अपनी जन्मतिथि-माघ सुदी ५ (वसन्त) संवत् १९२२ वि. लिखी थी। किन्तु उन पर लिखे गये पुस्तकों/विशेषांकों में उनका जन्म ईस्वी सन् के अनुसार १८६५ ई. लिखा गया है। ['स्वस्ति पन्था' का महात्मा नारायण स्वामी जन्मदिवस विशेषांक, पृ. ४ तथा १२, जनवरी-फरवरी २०२२ ई. संयुक्तांक, प्रकाशक-आर्य विरक्त (वानप्रस्थ+संन्यास) आश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार, उत्तराखण्ड]

जबकि १९२२ विक्रमसंवत् में माघ मास में वसन्तपंचमी को १८६६ ई. में २१ जनवरी, रविवार का दिवस था।

इस प्रकार की गलतियाँ इसलिए हो जाती हैं कि विक्रमसंवत् में ५७ वर्ष घटाकर ईस्वी सन् लेखक महानुभाव लिख देते हैं। होना यह चाहिए कि यदि विक्रम संवत् के प्राय: माघ वा फाल्गुन की कोई तिथि हो तो विक्रम संवत् से ५६ वर्ष घटाना चाहिए। अब तो विगत १००-२०० वर्षों का पंचांग उपलब्ध (प्रकाशित वा मुद्रित) है, जिससे सहजतया सन्-संवत् में समुचित परिवर्त्तन का ज्ञान हो जाता है। इसी भांति

अधिकांश लेखकों ने स्वामी दयानन्द के जन्म संवत् १८८१ विक्रमी में ५७ वर्ष घटकर ईस्वी सन् के अनुसार १८२४ ई. लिख दिया है। वस्तुत: होना यह चाहिए, चूंकि स्वामी दयानन्द का जन्म फाल्गुन मास में कृष्णपक्ष की दशमी तिथि (दयानन्द-दशमी) को हुआ था। अत: १८८१ वि.सं. में ५६ वर्ष ही घटा कर १८२५ ई. लिखा जाना चाहिए। अंग्रेजी तारीख के अनुसार उस दिन शनिवार १२ फरवरी १८२५ ई. थी।

(ख) क्या १२ फरवरी २०२३ ई. ऋषि दयानन्द की २०० वीं जयन्ती है?

इस वर्ष १२ फरवरी २०२३ ई. को सम्माननीय प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने ऋषि दयानन्द की जयन्ती (अंग्रेजी तारीख के अनुसार) के शुभ-अवसर पर महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं, उपकारों और उल्लेखनीय सेवाओं का मुक्तकण्ठ से बखान करते हुए ऐतिहासिक व्याख्यान दिया, जिसकी जितनी भी प्रशंसा की जाए कम ही है। विगत वर्ष २०२२ ई. के १५ अगस्त को स्वतन्त्रतादिवस पर अपने भाषण में ऋषि दयानन्द का उल्लेखमात्र भी न करने से आर्यजनता में फैली हुई उद्विग्नता दूर हो गई।

ऋषि दयानन्द की प्रथम जन्मशताब्दी मथुरा नगरी में सभी आर्यों के समर्थन से सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के नेतृत्व में फाल्गुन कृष्ण ७ सप्तमी से १३ त्रयोदशी १९८१ विं. संवत् तदनुसार १५ फरवरी से २१ फरवरी १९२५ ई. तक मनाई गई थी। उस समय सार्वदेशिक सभा के प्रधान स्वामी श्रद्धानन्द जी तथा कार्यकर्ता प्रधान महात्मा नारायण स्वामी जी थे। सार्वदेशिक सभा का मन्त्री पद श्री डॉक्टर केशवदेव शास्त्री एम.डी. के अधीन था। इस अवसर पर प्रकाशित 'श्रीमद्दयानन्द जन्मशताब्दी वृत्तान्त' में कुल २४४ पृष्ठ थे। 'परिशिष्ट' में 'क' से लेकर 'ज' तक ८ पृष्ठ और जोड़े गये थे। 'टाईटल' के आदिम और अन्तिम पन्नों के ४ पृष्ठ भी थे।

डॉ. केशवदेव शास्त्री, मन्त्री, सार्वदेशिक सभा द्वारा सम्पादित और संगृहीत इस 'विवरणिका' के पृष्ठ ३ पर लिखा है - 'भगवान् दयानन्द सरस्वती का जन्म काठियावाड़ अन्तर्गत मौरवी राज्य के टंकारा नामी ग्राम में १८२५ ईस्वी में हुआ था। शिवरात्रि १९२५ ई. में जन्म शताब्दी का दिवस निर्धारित किया गया। इसी दिवस को मनाने के लिए अनुमान दो वर्ष पूर्व से ही तैय्यारी होने लगी थी।'

इसी प्रकार १९७५ ई. में आर्य समाज की स्थापना शताब्दी मनाने से २ दो वर्ष पूर्व १९७३ तथा १९७४ ई. में ही स्थापनाशताब्दी समारोह का उपक्रम प्रारम्भ हो गया था। आर्य प्रतिनिधि सभा (उ.प्र.) के यशस्वी प्रधान श्री प्रकाशवीर शास्त्री के नेतृत्व में बहुत ही धूम-धाम से १९७३ ई. में मेरठ नगर में तथा १९७४ ई. में कानपुर नगर में शताब्दी समारोह मनाया गया, जिसमें पूरे देश के आर्यविद्वान्, आर्यजनता तथा सार्वदेशिक सभा के अधिकारी भी सोल्लास सम्मिलित हुए। अत: ऋषि दयानन्द के जन्म के २०० वर्ष २०२५ ई. में पूर्ण होने के उपलक्ष्य में २ दो वर्ष पूर्व से ही २०२३ ई. में द्विजन्मशताब्दीसमारोह का उपक्रम समुचित ही है। गलती यह हुई है कि इस अवसर पर प्रकाशित 'लोगो' (Logo) में आंग्ल (रोमन) अंकों में '1824-2024' लिखा है। 'लोगो' (Logo) की शेष संरचना सुरुचिपूर्ण है। २०० के शून्यों में मन्दिर, हरी पत्तियाँ तथा यज्ञकुण्ड है तथा पृष्ठभूमि में स्वामी दयानन्द सरस्वती का चित्र है। यज्ञकुण्ड की नीचे की पट्टिका में 'सदैव सत्य' लिखा है, जो श्री विनय आर्य (महामन्त्री, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा) की ऊहा प्रतीत होती है। किन्तु ईस्वीय जन्म वर्ष का गलत उल्लेख करने से सम्पूर्ण आर्यजगत् में भ्रम या भ्रान्ति का वातावरण बन गया है। ऋषिवर दयानन्द लिखते हैं 'क्योंकि थोड़ा-सा भी असत्य हो जाने से सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य बिगड़ जाता है।' [ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, (भाग-२) पृ. ६९५, तृतीय संस्करण, १९८१ ई., प्रकाशक-रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत-हरयाणा]

सार्वदेशिक सभा के निर्णय की अवहेलना-

इस प्रकार 1824-2024 ई. का उल्लेख ऋषि दयानन्द की द्विजन्मशताब्दी के सन्दर्भ में करना 'सभा' के वर्त्तमान अधिकारियों की अज्ञानता का सूचक है। २०२२ ई. के जून मास के प्रथम सप्ताह में पाणिनि कन्या महाविद्यालय वाराणसी का स्वर्णजयन्ती समारोह था, उस अवसर पर 'सार्वदेशिक सभा' के माननीय प्रधान श्री सुरेशचन्द्र जी आर्य (अहमदाबाद) आये थे। वहीं मैंने विस्तार से ऋषि दयानन्द की जन्मतिथि तथा सार्वदेशिक धर्मार्य सभा तथा सार्वदेशिक अन्तरंग सभा के निर्णय की जानकारी दे दी थी। तब उन्होंने यह कहा था कि २०२५ ई. में ऋषि के जन्म-दिवस को २०० वर्ष पूरे होंगें, किन्तु २०० वाँ जन्मदिन तो २०२४ ई. में ही हो जाएगा, अत: २०२४ ई. में ऋषि की २०० वीं जयन्ती मानने में कोई हर्ज नहीं है। किन्तु यहाँ उन्होंने और उनकी सभा ने १२ फरवरी २०२३ ई. को ही ऋषि दयानन्द की जयन्ती का उल्लेख '१८२४-२०२४' लिखकर प्रचारित-प्रसारित कर दिया।

मैंने २८ सितम्बर २०२२ ई. को प्रात:काल लगभग ०९:०० बजे से १०:०० तक १ एक घण्टे की लम्बी वार्त्ता में (दूरभाष पर) श्री विनय आर्य जी को ऋषि दयानन्द की जन्मतिथि के साथ-साथ स्वामी श्रद्धानन्द तथा महात्मा नारायण स्वामी के जन्म वर्षों की वास्तविकता से पूरी तरह अवगत करा दिया था पुनरपि जन्मवर्ष का गलत उल्लेख सकल आर्यजनों में भ्रमोत्पादक हो गया। इस घटना के पश्चात् पचासों फोन मेरे पास देश-विदेश से आये, मैं सबको स्पष्टीकरण देता रहा, किन्तु क्या मेरा स्पष्टीकरण वह भी दूरभाष पर, क्या प्रभावी हो सकता है? अत: आर्यजनता के समझ सही स्थिति स्पष्ट कर रहा हूँ।

इसके लिए 'पद्मश्री' से विभूषिता बहिन सुकामा जी आचार्या, पं. महेश विद्यालङ्कार से अभिप्रेरित आचार्य भद्रकाम वर्णी, श्री संजय सत्यार्थी (पटना), डॉ. वेदपाल, श्री चन्द्रकान्त, श्री राजेश सेठी (मेरठ) इत्यादि आर्य महानुभावों से प्रेरित होकर ऋषि दयानन्द के जीवन से सम्बन्धित अनेक तथ्यों का उद्घाटन करना चाहता हूँ, किसी भी व्यक्ति विशेष या 'सभा' की अवमानना करने का मेरा लेशमात्र भी प्रयोजन नहीं है। 'सदैव सत्य' तथा ऋषि दयानन्द का पूर्वोद्धृत वाक्य 'थोड़ा-सा भी असत्य हो जाने से सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य बिगड़ जाता है' ही मेरे दृष्टिपथ पर है, अन्य कुछ भी नहीं।

स्वामी आर्यवेश भी चूक गये -

श्री विनय आर्य महामन्त्री दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रचारित/प्रसारित 'लोगो' (Logo) की अनुकृति में स्वामी आर्यवेश जी के नेतृत्व तथा निर्देशन में सम्पादित 'वैदिक सार्वदेशिक' के अंकों में इसके सम्बन्ध में जो (Logo) 'लोगो' प्रकाशित वा प्रसारित हुआ है, उसमें सब कुछ वहीं है, जो श्री विनय आर्य ने प्रकाशित/प्रचारित/प्रसारित किया है। स्वामी आर्यवेश जी ने भी '२००' अंकों के शून्य में हरी पत्तियां, मन्दिर तथा यज्ञकुण्ड के चित्र दर्शाये हैं। 'महर्षि दयानन्द सरस्वती जयन्ती' शब्दों के अन्तर्गत 'जयन्ती' के नीचे '1824-2024' ही रोमन अंकों में लिखा है। भेद केवल इतना है कि पृष्ठभूमि में ऋषि दयानन्द का चित्र न होकर अंकों (२००) के वाम पार्श्व में 'ओ३म्' की ध्वजा हाथ में लिए ऋषि दयानन्द का पूर्ण (खड़े हुए) चित्र है। यज्ञकुण्ड की नीचे की पट्टिका में 'सदैव सत्य' के स्थान पर 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' अंकित है। इस प्रकार 1824-2024 का उल्लेख करके आर्यवेश जी ने भी वही गलती दुहराई है जो श्री विनय आर्य जी ने की थी।

सार्वदेशिक धर्मार्य्य सभा का समापन -

सन् १९४७ में 'महात्मा नारायण स्वामी जी' का देहान्त हुआ और १९६० ई. में 'पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति' का। ये दोनों आर्य-मनीषी 'सार्वदेशिक सभा' के प्रधान रहे थे। पं. इन्द्र जी के कार्यकाल में सार्वदेशिक सभा ने 'धर्मार्य सभा' गठित की थी। जो बहुत वर्षों तक कार्यरत रही। स्वामी आनन्द बोध सरस्वती (श्री रामगोपाल शालवाले) के कार्यकाल में

'धर्मार्य सभा' का व्यापक स्वरूप तो समाप्त हो गया किन्तु 'सभा' ने अपने को 'समिति' के रूप में जीवित रखा। 'सभा' की सदस्य संख्या २०-२१ थी, समिति में ५ लोग सीमित हो गये। 'सभा' में 'प्रधान' और 'मन्त्री' पद था। 'समिति' में मात्र १ एक संयोजक का पद रहा, जिस पर आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री, पं. रामानन्द शास्त्री, डॉ. शिवकुमार शास्त्री, डॉ. योगेन्द्र कुमार शास्त्री (जम्मू) तथा डॉ. भवानी लाल भारतीय जी क्रमशः विराजमान रहे। स्वामी आनन्द बोध जी के देहान्त के बाद 'समिति' भी विसर्जित हो गई। 'सार्वदेशिक सभा' या 'प्रान्तीय सभाओं' का प्रत्यक्ष रूप से कोई भी सम्बन्ध आर्यविद्वानों के साथ नहीं है। और न सभा के अधिकारी ही किन्हीं महत्त्वपूर्ण विषयों पर आर्यविद्वानों की सम्मति या 'धर्मार्य सभा' द्वारा निर्णीत तथ्यों के आलोक में कोई काम करते हैं। यदि 'धर्मार्य सभा' या 'धर्मार्य समिति' जीवित रहती तो इतनी बड़ी चूक 'सार्वदेशिक सभा' के अधिकारियों द्वारा नहीं होती। **'अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः'।**

ऋषि दयानन्द की जीवनी का प्रकाशन -

'ऋषिद्विजन्मशताब्दी' को अभिलक्ष्य करके ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र भारी संख्या में प्रकाशित करना चाहिए। भारत की सभी भाषाओं के साथ विदेशी भाषाओं (अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, रुसी, उर्दू, चीनी, अरबी आदि) में भी ऋषिवर की जीवनी प्रकाशित करना सार्वदेशिक, प्रान्तीय तथा विदेशों में कार्यरत आर्य समाजों की संस्थाओं का दायित्व है। जन-समुदाय में से थोड़े ही लोग होंगे जो अपनी-अपनी भाषाओं में प्रकाशित ऋषि की जीवनी क्रय करेंगे। अतः हमें ऋषिवर की जीवनी को लाखों की संख्या में सप्रेम भेंट/वितरण करना होगा। इस कार्य के लिए मैं दो वर्ष पूर्व से ही अनेक आर्य-सज्जनों तथा संस्थाओं को प्रेरित कर रहा हूँ। इसी कड़ी में दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के माननीय मन्त्री श्री विनय आर्य ने मेरे सुझाव के अनुसार स्वामी श्रद्धानन्द के सुपुत्र यशस्वी आर्यलेखक तथा सार्वदेशिक सभा के पूर्व प्रधान श्री पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित 'ऋषिजीवन-चरित्र' को प्रकाशित करने का निर्णय लिया। एतदर्थ मुझे सम्पादन का दायित्व भी सौंपा। परन्तु खेद है कि मेरे सम्पादित कार्य के अनुरुप पुस्तक नहीं छपी। मैंने रात-दिन परिश्रम करके पुस्तक का प्रूफ देखा था। छपने पर पुस्तक का अवलोकन करने पर विदित हुआ कि यद्यपि सम्पादक के रूप में मेरा नाम प्रकाशित किया गया है किन्तु मेरे द्वारा संशोधित तथ्यों के अनुरुप न छपकर त्रुटिपूर्ण पुस्तक प्रकाश में आई। यद्यपि इसके लिए प्रत्यक्षतः महामन्त्री श्री विनय आर्य जी उत्तरदायी नहीं हैं, लेकिन कार्यालयीय कर्मचारी वा मुद्रक अवश्यमेव जिम्मेदार हैं। पुस्तक 'महर्षि दयानन्द' छपने पर जिन हाथों में पुस्तक गई उनमें से अनेक ने मुझसे दूरभाष पर पूछा कि जिन मान्यताओं को मैं या सार्वदेशिक सभा मानती है तदनुरुप पुस्तक न छपने का कारण क्या है? मैं उन आर्य-मनीषियों को क्या उत्तर दूँ? अतः 'लेखमाला' की इस शृंखला में उन अशुद्धियों को शुद्ध करके प्रस्तुत कर रहा हूँ -

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९	४	---	तदनुसार १२ फरवरी १८२५ ई.
९	५	अम्बाशंकर	लाल जी कर्षन जी तिवारी
१०	१३	१४ वर्ष की आयु तक	१४ वें वर्ष के आरम्भ में ही
७४	१२	१० अप्रैल	७ सात अप्रैल

मैंने यहाँ विशेष अशुद्धियों को ही प्रदर्शित किया है। मैंने इस पुस्तक के 'सम्पादकीय' में जो लिखा था, उसकी कतिपय आवश्यक पंक्तियों को उद्धृत करके इस लेख को समाप्त कर रहा हूँ-

'.....महर्षि दयानन्द की २०० वीं जयन्ती १२ फरवरी (फाल्गुन कृष्ण पक्ष १० दशमी, २०८० विक्रम संवत् को ही ऋषि दयानन्द की २०० वीं जयन्ती मनानी चाहिए - ज्वलन्त शास्त्री) २०२४ ई. को मनाई जाएगी तथा उनके इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए २०० वर्ष फाल्गुन कृष्ण १०, विक्रम संवत् २०८१ को पूरे हो जायेंगे। महर्षि दयानन्द की प्रथम

जन्मशताब्दी फरवरी मास (१५ फरवरी से २१ फरवरी १९२५ ई. तक अर्थात् १९८१ विक्रम संवत् के फाल्गुन मास में कृष्णपक्ष की ७ सप्तमी से १३ त्रयोदशी तक) में १९२५ ई. में मथुरा में स्वामी श्रद्धानन्द तथा महात्मा नारायण स्वामी के नेतृत्व में मनाई गई थी।.....आर्य समाज के यशस्वी चिन्तक तथा मनीषी निर्देशक श्री पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित इस ऋषिजीवनी 'महर्षि दयानन्द' को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हर्ष और आत्मिक आनन्द का होना स्वाभाविक है। इन्द्र जी ने महर्षि दयानन्द की यह जीवनी १९२७ ई. में लिखी थी। भाषा-भाव में प्रांजलता तथा प्रभावोत्पादकता इन्द्र जी की लेखकीय कुशलता के प्राणतत्त्व थे। उस समय तक पं. देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय का विस्तृत अनुसन्धानपूर्ण ऋषि **दयानन्द चरित** प्रकाशित नहीं हो पाया था। अतः कुछ इतिहासगत संशोधन पं. इन्द्र जी की इस कृति में करने आवश्यक थे। मुद्रण की कुछ त्रुटियां भी थीं। 'सार्वदेशिक सभा' तथा सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के निर्णय भी कुछ विषयों पर १९४० ई., १९६० ई. तथा १९६७ ई. में हुए। इन्द्र जी स्वयं सार्वदेशिक सभा के 'प्रधान' थे। अतः इन निर्णयों को संयोजित करते हुए तथा मुद्रण-जन्य त्रुटियों को दूर करके शुद्ध तथा स्वच्छ रूप में इसे प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है, आर्य जनता तथा विशाल पाठक-समुदाय महर्षि दयानन्द की क्रान्तिकारी जीवनी को पढ़कर राष्ट्रीय और वैश्विक परिवेश में महर्षि दयानन्द से प्रेरणा प्राप्त करेगा।'

इतना सब कुछ 'सम्पादकीय' में स्पष्ट लिखने के बावजूद पुस्तक के मुखपृष्ठ पर महर्षि दयानन्द के चित्र के नीचे '२०० वीं जयन्ती १८२४-२०२४' लिखा गया, साथ ही प्रत्येक पृष्ठ पर 'महर्षि दयानन्द २०० वीं जयन्ती' प्रकाशित किया गया। अतः यह लेख लिखना मैंने आवश्यक समझा।

मैंने वस्तुस्थिति स्पष्ट कर दी है। 'अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु'।

श्री विनय आर्य (महामन्त्री, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा) द्वारा प्रचारित तथा प्रसारित 'लोगो' (Logo) -

श्री स्वामी आर्यवेश जी द्वारा प्रचारित तथा प्रसारित 'लोगो' (Logo) -

मेरे इस लेख में की गयी विवेचना से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि उपर्युक्त दोनों 'लोगो' (Logo) में त्रुटियां हैं, अतः इन त्रुटियों को दूर करके सर्वथा शुद्ध तथा समीचीन 'लोगो' (Logo) का स्वरूप इस प्रकार का होगा -

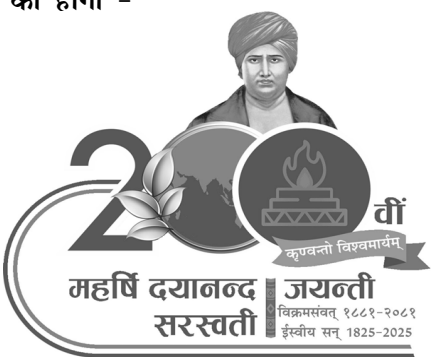

- अमेठी (उ.प्र.)
मो.-7303474301

वेद व्याख्यान परम्परा को महर्षि दयानन्द की देन

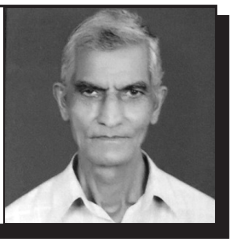

❑ डॉ. रघुवीर वेदालङ्कारः...✍

महर्षि दयानन्द से पूर्व वेदों के अनेक भाष्यकार हो चुके थे। इनमें भारतीय एवं पाश्चात्य, दोनों प्रकार के भाष्यकार सम्मिलित हैं। पुनरपि महर्षि को वेदों का भाष्य करने की आवश्यकता प्रतीत हुई, इसका कारण यह है कि महर्षि की दृष्टि एवं उनकी भाष्य पद्धति इन भाष्यकारों से सर्वथा भिन्न तथा प्राचीन ऋषि-मुनियों की भाष्य-पद्धति का अनुसरण करने वाली थी। महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के प्रारम्भ में ही इस तथ्य को भली-भांति स्पष्ट कर देते हैं।[1] सायण-महीधरादि के भाष्यों के कारण वेदों के सम्बन्ध में नाना आक्षेप होने लगे थे। कोई उनको 'धूर्तः प्रलपितम्' कह रहा था तो पाश्चात्य लोग असभ्य-जंगली मानव जाति की रचना वेदों को मानते हुए उनका उपहास उड़ा रहे थे। महर्षि ने भाष्यकारों के इन दोषों को समझा तथा उनका निराकरण करके वास्तविक वेदार्थ को प्रकट करने के लिए ही वेदभाष्य का प्रारम्भ किया।[2] ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के 'भाष्यकरण शंका-समाधानादि' विषय में महर्षि नाम लेकर सायण-उव्वट-महीधर तथा उनके अनुयायी पाश्चात्य एवम् अन्य भाष्यकारों के भाष्यों को अनर्थमूलक बतलाते हैं।[3] महर्षि दयानन्द की यही देन है कि उन्होंने अपने से पूर्ववर्ती वेद भाष्यों के दोषों का परिहार करके प्राचीन ऋषियों के अनुसार सत्य वेदार्थ का ज्ञान कराया।

महर्षि एवम् अन्य भाष्यकारों के भाष्यों में अन्तर दृष्टि एवं सिद्धान्त का है। महर्षि दयानन्द वेदों के सम्बन्ध में एक सिद्धान्त को अपनाकर चले हैं तथा उसके अनुरूप ही उन्होंने वेद भाष्य किया है। संक्षेप में वेदों के सम्बन्ध में महर्षि की दृष्टि इस प्रकार है-

(१) वेद ईश्वर प्रोक्त हैं। सृष्टि के आदि में पवित्रतम अग्नि आदि चार ऋषियों के हृदय में परमात्मा ने वेद-ज्ञान का प्रकाश किया।

(२) सृष्टि के आदि में तथा ईश्वर-प्रोक्त होने के कारण ही वेदों में लौकिक मनुष्यों ऋषियों आदि का अनित्य इतिहास नहीं हो सकता।

(३) वेदों में हिंसा अश्लीलता आदि ऐसे दोष नहीं हो सकते जो कि पूर्ववर्ती भाष्यकारों के द्वारा वेदों पर थोप दिये गये है।

(४) परमेश्वर-प्रोक्त होने के कारण ही वेदों में सभी सत्य विद्याएँ विद्यमान हैं।

(५) वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य ब्रह्म है अग्नि आदि शब्द उसी ब्रह्म के ही वाचक हैं, किन्तु प्रकरणानुसार इन शब्दों के भौतिक अर्थ भी हैं।

(६) वेदों में अनेक देवी-देवताओं का वर्णन नहीं है, अपितु सभी वेद केवल एक ब्रह्म के ही प्रतिपादक हैं इसे ही दूसरे शब्दों में एकेश्वरवाद भी कहा जा सकता है।

(७) वेदों में किसी भी प्रकार की जड़पूजा का विधान नहीं। एकमात्र ब्रह्म ही वेदों में उपास्य माना गया है।

(८) वेदों का क्षेत्र केवल यज्ञादि ही नहीं है, अपितु अध्यात्म, राजनीति, ज्ञान विज्ञान, शिल्प, गणित, नैतिकता, सामाजिकता आदि सभी कुछ वेदों में है।

(९) वेद नाम केवल ऋग्., यजु., साम. तथा अथर्व. के रूप में चार संहिताओं का ही है। ब्राह्मणादि अन्य कोई भी ग्रन्थ वेद पदवाच्य नहीं है।

(१०) वेद स्वतः प्रमाण हैं, जबकि अन्य ग्रन्थ

वेदानुकूल होने से ही प्रमाण हैं।

बस यही दृष्टि का अन्तर था, जिसने महर्षि को वेद भाष्य करने में प्रवृत्त किया। पाश्चात्यों की वेद-विषयक धारणाएं तो महर्षि की इन धारणाओं से सर्वथा विपरीत हैं ही, सायणाचार्य आदि के भाष्य भी इन धारणाओं के विरुद्ध ही जाते हैं। यद्यपि अपने भाष्य के प्रारम्भ में सायणाचार्य भी वेदों को परमेश्वर के निश्वास रूप में अपौरुषेय मानकर चले हैं[4], किन्तु अपना भाष्य करते समय वे अपनी इस प्रतिज्ञा को भूल जाते हैं। आगे चलकर उनकी धारणा बनती है कि 'सर्वे वेदाः कर्मकाण्डपराः, वेदा यज्ञार्थं प्रवृत्ताः।' स्पष्ट है कि यहाँ वेद के वास्तविक स्वरूप को तिरोहित कर दिया गया था। इतना ही नहीं, अपितु आगे चलकर तो सायणाचार्य वेदों में अनेक देवी-देवताओं, ऋषियों तथा राजाओं आदि के वर्णन मानकर एक प्रकार से वेदों के अपौरुषेय पक्ष को ही नकार देते हैं। महीधर तो मन्त्रों के अश्लील अर्थ करके वेदों को सर्वथा ही आक्षेप योग्य बना देते है। पाश्चात्यों ने तो इन भाष्यों के आधार पर ही अपने भाष्य किये अतः उनमें तो उक्त दोष आने स्वाभाविक ही थे।

महर्षि दयानन्द ने उक्त सभी दोषों का परिहार किया, इसका मुख्य कारण यह रहा है कि महर्षि ने वेदों के सम्बन्ध में जो दृष्टि या सिद्धान्त प्रारम्भ में अपनाये थे, वे अन्त तक उन पर स्थिर रहे। यदि सायणादि की भाँति महर्षि दयानन्द की दृष्टि में परिवर्तन हो गया होता तो उनके वेदभाष्य की दिशा भी बदल जाती।

महर्षि के वेद-भाष्य की विशेषताएँ-

(१) समग्र दृष्टि- महर्षि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य को समग्र दृष्टि प्रदान की वेदों को केवल कर्मकाण्ड तक ही सीमित नहीं रखा। चारों वर्ण, चारों आश्रम, गुरु-शिष्य, अध्यापक-उपदेशक, चिकित्सक, न्यायाधीश, शिल्पी, राजपुरुष आदि सभी के कर्त्तव्यों का उपदेश स्वामी जी के वेदभाष्य में पाया जाता है। वेद मन्त्रों में निहित शब्दों के विविध अर्थ करते हुए ही स्वामी जी ने ऐसा किया है। यथा - महर्षि 'आपः' का अर्थ केवल जल न करके प्रकरणानुसार विदुषी स्त्रियां, गुणवती कन्याएँ, आप्त प्रजा, प्राण तथा परमेश्वर अर्थ भी करते हैं। इसी प्रकार वेदों में बहुचर्चित इन्द्र पद भी जीवात्मा, परमात्मा, सूर्य, विद्युत्, सेनापति, राजा आदि का वाचक है। अश्विनौ देवताओं के वैद्य न होकर महर्षि के अनुसार द्यावापृथिवी, सूर्य-चन्द्रमा, अध्यापक-उपदेशक, यजमान-ऋत्विज, सभाध्यक्ष, सेनापति, सुशिक्षित स्त्री-पुरुष तथा प्राण-अपान आदि अनेक अर्थों के वाचक हैं। रुद्र कोई स्थान विशेष पर रहने वाला देवता नहीं है, अपितु परमेश्वर, राजा, सेनापति, जीवात्मा तथा प्राण भी रुद्र पदवाच्य हैं। इस प्रकार सर्वत्र ही अपने वेद भाष्य में स्वामी जी ने व्यावहारिक एवं सामाजिक अर्थ किये हैं। इसी प्रकार महर्षि ने अपने वेदभाष्य में अध्यात्म विद्या, अध्ययन-अध्यापन, पशु-पालन, कृषि, भूगोल- खगोल विद्या, राजनीति, शिल्प, आयुर्वेद, धनुर्वेद, वाणिज्य आदि सभी विद्याओं का प्रतिपादन किया है। इन अर्थों के साथ स्वामी जी ईश्वर को भी सभी मन्त्रों का प्रतिपाद्य बतलाते हुए कहते हैं कि जिस-जिस मन्त्र का पारमार्थिक सप्रमाण अर्थ सम्भव होगा उस उसके दो-दो अर्थ करेंगे, परन्तु ईश्वर का एक भी मन्त्र के अर्थ में अत्यन्त त्याग नहीं होता (ऋ०भा०भू०) महर्षि से पूर्ववर्ती भाष्यकारों की दृष्टि इतनी व्यापक न थी। यद्यपि आनन्दतीर्थ आदि मध्यकालीन भाष्यकारों ने भी आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक के रूप में वेदार्थ की त्रिविध दृष्टि अपनायी थी, तथापि सायणादि के भाष्यों में प्रमुखतया यज्ञदृष्टि ही अपनायी गयी है। फलतः उनको 'इषे त्वा ऊर्जे त्वा वायव स्थ' आदि मन्त्रों का अर्थ भी खींचतान कर यज्ञ परक ही करना पड़ा।

महर्षि दयानन्द का भाष्य इन दोषों से शून्य है, क्योंकि इसमें समग्र दृष्टि अपनायी गयी है। इसके परिणाम स्वरूप उनके वेदभाष्य में मन्त्रों में विवेचित

विषयों का क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है। उनके भाष्य मानवजीवन के लगभग सभी क्षेत्रों से सम्बद्ध हैं। उनके भाष्य में प्रत्येक प्रकार की लौकिक उन्नति एवं सुख के प्रतिपादन[5] के साथ-साथ पारलौकिक मोक्ष[6] सुख की प्राप्ति का भी वर्णन है। ऋषि तथा देवता नामों के निर्वचन आदि के आधार पर उनके वेदभाष्य में भौतिकी[7] तथा जैविकी[8] आदि के वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी किया गया है। इस समग्र दृष्टि को अपनाकर ही महर्षि ने वेदों में नरबलि[9], मांस भक्षण, अश्लीलता[10] तथा असम्भव कल्पनाओं का निराकरण किया, जो कि उनके पूर्ववर्ती भाष्यों में विद्यमान थीं।

(२) देवता विषयक धारणा- स्वामी जी से पूर्ववर्ती सायणाचार्य आदि की धारणा थी कि वेदों में वर्णित इन्द्र, रुद्र आदि सभी देव पृथक-पृथक अस्तित्व रखते है। इसी धारणा के आधार पर पाश्चात्य विद्वानों का कहना था कि वेद बहुदेवता-वाद का प्रतिपादन करते हैं। ये देव एक दूसरे से उत्कृष्ट भी होते हैं तथा एक दूसरे के अधीन भी। महर्षि दयानन्द ने इन धारणाओं का प्रतिवाद यह कहकर किया कि वेद केवल एक ब्रह्म के ही प्रतिपादक हैं। अन्य अग्नि, इन्द्र आदि सभी नाम उसी ब्रह्म के विशेषण हैं। उक्त विचार स्वामी जी का कल्पनाप्रसूत नहीं था अपितु इसकी पुष्टि में उन्होंने वेद के - 'एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं मातरिश्वानमाहुः।' को उद्धृत किया। ऐसा करने में स्वामी जी ने वैदिक शब्दों के यौगिक पक्ष को अपनाया। इसका फल यह हुआ कि इन्द्र वरुण आदि शब्दों के परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य भी अनेक अर्थ प्रसङ्गानुसार उन्होंने किये। यथा इन्द्र को परमेश्वर तथा सूर्य[11], वायु[12], विद्यादि परमैश्वर्ययुक्त विद्वान्[13], जीव[14], सभाध्यक्ष[15], योद्धा[16], विद्युत्[17], विद्यादि युक्त मनुष्य[18], ऐश्वर्यदायक व्यवहार[19], पति[20] आदि के रूप में उन्होंने व्याख्यात किया है। इसी प्रकार रुद्र, अग्नि, वरुण, सविता आदि सभी देववाचक शब्दों को महर्षि ने परमेश्वर एवम् अन्य विभिन्न भौतिक पदार्थों के वाचक माना है। इससे वेदों में बहुदेवतावाद की भ्रान्ति का परिहार हो गया।

(३) भूतादि की पूजा का निषेध- पाश्चात्य विद्वानों का यह भी आक्षेप था कि वेदों में अनेक देवों की तरह भूतादि की पूजा का विधान भी पाया जाता है। स्वामी जी ने प्रश्नोत्तर रूप में इसका प्रतिवाद निम्न प्रकार किया है- 'कितने ही आजकल के आर्य और यूरोप देशवासी अर्थात् अंग्रेज आदि लोग इसमें ऐसी शंका करते हैं कि वेदों में पृथिव्यादि भूतों की पूजा कही है। यह उनका कहना मिथ्या है, क्योंकि आर्य लोग-सृष्टि के आरम्भ से आज पर्यन्त इन्द्र, वरुण और अग्नि आदि नामों करके वेदोक्त प्रमाण से एक परमेश्वर की ही उपासना करते चले आये हैं।' (ऋ०भा०भू०,वेदविषय विचार)

(४) प्रकरणानुसार अर्थ- वैदिक शब्दों के विभिन्न अर्थ करते हुए महर्षि प्रकरण का विशेष ध्यान रखते हैं तथा तदनुसार ही शब्दों के अर्थों को बदल देते हैं। यथा- 'असुर' को एक स्थान पर हिंसक विद्युत् नामक अग्नि[21] माना है तो दूसरे स्थान पर समस्त भूगोल आदि पदार्थों का प्रक्षेपक कहा है।[22] स्वामी जी ने अन्तर्दृष्टि से विज्ञान सम्बन्धी मन्त्रों में प्राप्त साधारण शब्दों का भी वैज्ञानिक परिभाषा के समान व्याख्यान किया है। यथा- 'मूर्धानम्' का अर्थ आकर्षण से बांधने वाला किया है।[23] इसी प्रकार अनेक पदों का अर्थ दार्शनिक पृष्ठभूमि के आधार पर किया गया है। यथा- 'अप्रतिष्कृतम्' का अर्थ इधर-उधर से लोक लोकान्तर के चारों ओर से भ्रमण रहित किया है।[24] 'दशाङ्गुलम्' का अर्थ पाँच स्थूल तथा पाँच सूक्ष्म भूतों वाला जगत्[25]। 'त्रि सप्त' को सांख्य के प्रकृति आदि इक्कीस तत्त्व उन्होंने माना है।[26] 'हविषा' का ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास अर्थ महर्षि ने किया है।[27] इस प्रकार सर्वत्र ही स्वामी जी ने शब्दार्थ में धातु-प्रत्यय आदि के ध्यान के साथ-साथ अपने सूक्ष्मचिन्तन का भी परिचय दिया है। शब्दों के यौगिक पक्ष का अवलम्बन लेकर ही स्वामी जी ने

अनेक शब्दों को नये रूप में व्याख्यात किया है। यथा- इन्द्राग्नी=माता-पितरौ (यजु० १२।५४), भृगवः= परिपक्वज्ञानाः (यजु० ३३।६), शरत्=आधी रात, ग्रीष्म = मध्याह्न (यजु० ३१।१४), शक्वरी=शक्तिनिमित्ता गाः (यजु०२१।२७) हरिः= मनोहारी चन्द्रो बालो वा (यजु० ३३।५) इस प्रकार अनेक शब्दों के अर्थ अपने चिन्तन के आधार पर किये हैं।

(५) धातुओं के नये अर्थ- सामान्यतः स्वामी जी ने पाणिनीय धातुपाठ का ही अनुसरण किया है, किन्तु अनेक स्थानों पर धातुओं के नये अर्थ भी उन्होंने दिये हैं। यथा- 'इन्धीमहि' का अर्थ 'जीवेम' किया गया है।[28] यह धातु दीप्ति अर्थ में है। यहां पर दयानन्द की सूक्ष्मेक्षिका है। शतपथ के अनुसार प्राण अमृत है जो कि अग्नि रूप है।[29] ये प्राण दीप्त हैं जिनसे सब कुछ प्रकाशित होता है।[30] जीवन प्राणों पर ही निर्भर है। स्वामी जी ने इधीमहि का अर्थ जीवेम कर दिया। इसी प्रकार यजु० ३।३८ में 'यच्छस्व' का अर्थ 'विस्तारय विस्तारयति वा' लिखा है। यह 'दा' दाने या 'यमु' उपरमे का रूप है।

(६) स्वरों का वेदार्थ में उपयोग- किसी भी भाष्यकार ने अनुक्रमणी में स्वरों का निर्देश नहीं किया है। स्वामी दयानन्द स्वरों को वेदार्थ में उपयोगी मानते हुए कहते हैं- **'अथ वेदार्थोपयोगितायां संक्षेपतः स्वराणां व्यवस्था लिख्यते'।** महर्षि स्वर-ज्ञान से रहित व्यक्ति को वेदार्थ को अधिकारी नहीं मानते। एक स्थान पर वे कहते हैं- **'सायणाचार्यादीनां मोक्षमूलरादीनां वा यदि छन्दषड्जादिस्वरज्ञानमपि न स्यात् तर्हि भाष्यकरणयोग्यता तु कथं भवेत्।'**[31] स्वरों के समान ही छन्दों के सूक्ष्म भेदों का निर्देश भी स्वामी जी ने वेदार्थ की दृष्टि से ही किया है।

(७) मन्त्रों के ऋषि तथा देवता परिवर्तन- सर्वानुक्रमणी में निर्दिष्ट मन्त्रों के ऋषियों तथा देवताओं के आधार पर सायणाचार्यादि ने वेदों में अनेक आख्यानों की कल्पना की है जिससे वेद का नित्यत्व एवम् अपौरुषेयत्व तिरोहित हो जाता है। स्वामी दयानन्द ने ऐसे अनेक मन्त्रों का शुद्धार्थ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा अपने वेद भाष्य में दिखलाया है। अनेक स्थानों पर ऐसा करने में स्वामी जी ने मन्त्रों के ऋषियों एवं देवताओं में परिवर्तन भी कर दिया। यथा- ऋग्०-१/२५/३० के सर्वानुक्रमणी निर्दिष्ट ऋषि **'आजिगर्तिः शुनशेपः स कृत्रिमो विश्वामित्रो देवरातः'** को महर्षि दयानन्द ने **'आजिगर्ति शुनःशेपः'** कर दिया। इस परिवर्तन से सूक्त के विषय सीमित हो गये। सम्भवतः शुनःशेप आख्यान को इस सूक्त से असम्बद्ध करने के कारण ही ऐसा किया हो। ऐसा अनेक स्थानों पर है। इसी प्रकार देवताओं के विषय में भी पाया जाता है। यथा-ऋग्० १।१२६ में **'विद्वांसो देवता'** रखकर सूक्त से सम्बन्धित आख्यान की निवृत्ति कर दी गयी है। यह देवता परिवर्तन ऋग्वेद की अपेक्षा यजुर्वेद में अधिक किया गया है।

(८) वेदार्थ का व्याख्यान वेदों से- सम्भवतः महर्षि दयानन्द ऐसे प्रथम भाष्यकार हैं जो वेदों से ही वेदों का व्याख्यान मानते हैं। इस विषय में स्वामी जी लिखते हैं क्योंकि जो वेद सब सत्य विद्याओं से युक्त हैं और ईश्वर ने वेदों का व्याख्यान भी वेदों से ही कर रखा है, क्योंकि उनके शब्द धात्वर्थ के साथ योग रखते हैं। महर्षि दयानन्द की दृष्टि में सभी व्यक्ति वेद भाष्य करने के अधिकारी नहीं हैं। वेदाङ्ग, ब्राह्मण ग्रन्थ तथा दर्शनादि ग्रन्थों के साथ-साथ परमेश्वर के अनुग्रह, उत्तम विद्वानों की शिक्षा तथा आत्मा की शुद्धि को भी महर्षि वेदार्थ में अपरिहार्य मानते हैं।[32] निरुक्तकार भी ऐसा ही कहते हैं-न ह्येषु प्रत्यक्षमनृषेरतपसो वा। इस प्रकार महर्षि दयानन्द ने वेद-भाष्य को सर्वथा नयी दिशा, दृष्टि दी है। उनकी यह दृष्टि पूर्व ऋषियों के ही अनुसार है।

-:- सन्दर्भ सूची -:-

१. आर्याणां मुन्यृषीणां या व्याख्यारीतिः सनातनी।
तां समाश्रित्य मन्त्रार्था विधास्यन्ते तु नान्यथा।।

२. येनाधुनिकभाष्ये ये टीकाभिर्वेददूषकाः।
दोषाः सर्वे विनश्येयुरन्यथार्थविवर्णनाः।।(ऋ.भा.भू.)

३. यानि रावणोव्वटसायणमहीधरादिभिः वेदविरुद्धानि भाष्याणि कृतानि यानि च तदानुसारेण इंग्लैण्डशार्मण्य-देशोत्पन्नैः यूरोपखण्डदेशनिवासिभिः कृतानि सर्वाणि अनर्थगर्भाणि सन्ति।

४. यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम्।।

५. ऋग्० १/१/१-५

६. ऋग्० १/२४/१-२, ऋग्० १०/६२/१, यजु० ३२/१०

७. ऋग्० ८/१२/२८-३०

८. यजु० अ० २४

९. यजु० अ० ३०

१०. द्रष्टव्य- ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

११. यजु० अ० २३

१२. ऋग्० १/३/४

१३. ऋग्० १/३/६

१४. ऋग्० १/५/६

१५. ऋग्० १/२२/३,४

१६. ऋग्० १/५१/१

१७. ऋग्० १/३२/१४

१८. ऋग्० १/१७/५

१९. ऋग्० १/४/४

२०. ऋग्० १/२२/८

२१. ऋग्० १/५६/४

२२. यजु० ३३/२२

२३. ऋग्० ३/३/३४

२४. ऋग्० ३/२/१४

२५. ऋग्० ३/१/१८

२६. यजु० ३१/१

२७. यजु० ३१/१४

२८. यजु० ३/१८

२९. शत० १/१२/६/१८ प्राणोऽमृतं तदग्निरूपम्।

३०. वही, ७/५/२/१२ प्राणो वै रुक्। प्राणेन हि रोचते।

३१. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, स्वरव्यवस्थाप्रकरण।

३२. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदविषयविचारविषयः।

- सरस्वती विहार, दिल्ली

(प्रश्न) जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र?

(उत्तर) अपने कर्त्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है। 'स्वतन्त्रः कर्त्ता' यह पाणिनीय व्याकरण का सूत्र है। जो स्वतन्त्र अर्थात् स्वाधीन है वही कर्त्ता है।

(प्रश्न) स्वतन्त्र किस को कहते हैं ?

(उत्तर) जिस के आधीन शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्तःकरणादि हों। जो स्वतन्त्र न हो तो उस को पाप पुण्य का फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जैसे भृत्य, स्वामी और सेना, सेनाध्यक्ष की आज्ञा अथवा प्रेरणा से युद्ध में अनेक पुरुषों को मार के अपराधी नहीं होते, वैसे परमेश्वर की प्रेरणा और आधीनता से काम सिद्ध हों तो जीव को पाप वा पुण्य न लगे। उस फल का भागी प्रेरक परमेश्वर होवे। स्वर्ग-नरक, अर्थात् सुख-दुःख की प्राप्ति भी परमेश्वर को होवे। जैसे किसी मनुष्य ने शस्त्रविशेष से किसी को मार डाला तो वही मारने वाला पकड़ा जाता है और वही दण्ड पाता है, शस्त्र नहीं। वैसे ही पराधीन जीव पाप पुण्य का भागी नहीं हो सकता। इसलिये अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र परन्तु जब वह पाप कर चुकता है तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है। इसलिये कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और पाप के दुःख रूप फल भोगने में परतन्त्र होता है।

- महर्षि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, सप्तम समुल्लास

महर्षि दयानन्द के द्वारा निर्दिष्ट आर्षविद्या का स्वरूप और उसका परिरक्षण

❑ आचार्य उदयन मीमांसक...✍

आर्षशब्द का अर्थ है ऋषिसम्बन्धी।[१] ऋषिशब्द का मुख्यार्थ ईश्वर ही होता है।[२] जैसे कि महर्षि दयानन्द जी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेद-विषय में **यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायाम्...**(निरु० ७.१) की व्याख्या करते हुए लिखा है कि-ऋषिः सर्वत्र ईश्वरः। सर्वत्र, सब कुछ देखने, जानने वाला सर्वद्रष्टा (ऋषि) ईश्वर को छोड़कर अन्य कोई नहीं हो सकता है- 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा' (वृ० उप० ३.७.२३)। ईश्वर के लिए ऋषि शब्द का प्रयोग वेदमन्त्रों में भी हुआ है। तद्यथा-**य इमा विश्वा भुवनानि जुहृद् ऋषि होतान्यसीदत् पिता नः** (ऋ० १०.८११ यजुः १७१७ तै० स० ४.६.२१ ० स० २.१०.२ : काठ० सं० १८.१)। इस ऋषि से सम्बन्धित ज्ञान या वेद ही आर्ष शब्द का अर्थ है। ऋषि (ईश्वर) को जानने या प्राप्त करने के लिये तत्सम्बन्धी वेद (आर्य) को जानने (पढ़ने व पढ़ाने) को ही आर्य विद्या की परम्परा कहते हैं। अर्थात् आर्यविद्या का लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति है। ईश्वर (ऋषि) के साक्षात्कार (दर्शन) का कारण होने से वेद के लिए भी गौणार्थ में ऋषि शब्द का प्रयोग होता है।[२] यथा- **ऋषि चोदनः** (ऋ० ८.५१.३)-**ऋषीणा मन्त्राणां चोदनः प्रेरकः** (द्र०- शाबर भाय्य)। इस ऋषि (वेद) के सम्बन्धी अर्थात वेदार्थ को समझने व समझाने के लिए उपयोगी शाखा, ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषद्, छह वेदाङ्ग, छह दर्शन आदि साहित्य आर्ष (वैदिक) कहलाता है। इस प्रकार वेद एवं वेदार्थ के लिए विरचित सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में प्रतिपादित ज्ञान ही 'आर्षविद्या' कहाता है। इस सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय के अध्ययन-अध्यापन की परम्परा सृष्टि के आदिकाल से ऋषि-मुनियों के युग से आज तक जो चलती आ रही है, उसे ही आर्ष-परम्परा कहते हैं।

आर्षपाठविधि का विधान-उक्त सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय के पठन-पाठन का विधान ऋषि-मुनियों ने किया है और इस पठन-पाठन को परमधर्म (परम कर्तव्य) कहा है। तद्यथा-

१. **द्वे विद्ये वेदितव्ये** (ज्ञातव्ये, पठितव्ये) **इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्त छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते** (मुण्डकोप १.१.४, ५)। यहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सम्पूर्ण आर्ष वाङ्मय (अपरा विद्या) का अध्ययन करें और उसका लक्ष्य परा विद्या (क्रियात्मक व व्यावहारिक योगाभ्यास, अध्यात्मविद्या) को कहा है। परा विद्या का लक्ष्य ईश्वर (अक्षर) को कहा है।

२. **ब्राह्मणेन** (ब्रह्मजिज्ञासुना) **निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च**(महाभाष्य पस्पशाह्निक)।

३. **उपलब्धौ (ज्ञाने) यत्नः क्रियताम् (पठ्यताम्)। महान् हि शब्दस्य प्रयोगविषयः। सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा विभिन्ना एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेद एकविंशतिधा बाहृवृच्यं नवधाथर्वणो वेदो वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावान्-शब्दस्य प्रयोगविषयः** (म० भा०, पस्प०)।

४. **उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।**
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्य प्रचक्षते॥
-मानवधर्मसूत्र. २.१४०॥

५. .....**एवं चत्वारो वेदाः सशाखा व्याख्यानसहिताश्चत्वार उपवेदाः, षड् वेदाङ्गानि पद् च वेदोपाङ्गानि मिलित्वा षड् भवन्ति । एतैरेव चतुर्दशविद्या मनुष्यैग्राह्या भवन्तीति वेद्यम्** (क्र.मा.भू. ग्रन्थप्रामाण्या०)।

६. ये सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है (आर्यसमाज का तीसरा नियम)।

प्रथम एवं द्वितीय विधिवाक्य में शिक्षादि वेदाङ्गों का कथन अन्य ग्रन्थों का उपलक्षण समझना चाहिए। वैसे ही विधिवाक्य में भी वेदाङ्गादियों के साथ ही वेद के अध्ययन आदि का कथन अभिप्रेत है। इसप्रकार सम्मिलित विधान के अतिरिक्त एक-एक शास्त्र के अध्ययन का भी विधान प्राप्त होता है। जैसे कि-

1. यद्यपि पुत्र! बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्। स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृत् शकृत्।।

२. रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्(म०भा०,पम्प०)।

३. इदम् (निरुक्तशास्त्रम्) अन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यते....तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कात्स्न्र्यं स्वार्थसाधकं च (निरु. १.१५)।

४. यो ह वा विदितार्षेयच्छन्दोदैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण यजति याजयति वाध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्ने वा पात्यते प्रमीयते पापीयान् भवति तस्मादेतानि मन्त्रे मन्त्रे विद्यात् (आर्षेयब्राह्मण-१.१.६) इत्यादि।

आर्षपाठविधि की परम्परा- षडङगों के साथ वेद के अध्ययन करने की परम्परा ऋषि-मुनियों के काल से महाभारत के युद्ध तक पूर्णतया चलती रही है। तद्यथा-

१. **सर्वविद्याव्रतखातो यथावत् साङ्गवेदवित्**
(रामा० अयो० १.२०)।

२. **नाषडङ्गविदत्रासीत्...**(रामा०,बाल०६.१५,१४.२१)।

३. **षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम्।**
शुश्राव ब्रह्मघोषान् स विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम्
(रामा०, सुन्दर० १८.२)

४. **वेदं षडङ्गं वेदाहं...**(म०भा०,द्रोण० ७.१)

५. **योऽधीते चतुरो वेदान्** (म०भा०, वन०५८.७०)।

६. **स ऋचोऽधीते स यजूंष्यधीते स सामान्यधीते सोऽथर्वाणमधीते सोऽङ्गिरसमधीते स शाखामधीते स कल्पानधीते,** (बृहज्जाबालोपनिषद्० ८.५)।

षडङ्ग का कथन वेदार्थ के उपयोगी अन्य शास्त्रों का उपलक्षक है। अतः पूर्व में वर्णित शाखा, ब्राह्मणादि सभी शास्त्रों का अध्ययन करने से वेदार्थ को जानने में सुगमता होती है और प्राशस्त्य भी होता है।[४] इस विषय में निरुक्त के व्याख्याकार दुर्गाचार्य ने बहुत ही सुन्दर दृष्टान्त दिया है- त एते वक्तुरभिप्रायवशादन्यत्वमपि भजन्ते मन्त्राः। न ह्येतेषु अर्थस्येयत्तावधारणमस्ति, महार्था ह्येते दुष्परिज्ञानाश्च। यथाश्वारोहवैशिष्ट्यादश्वः साधुः साधुतर वहति, एवमेते वक्तृवैशिष्ट्यात् साधून् साधुतरांश्चार्थान् स्रवन्ति (दुर्ग, निरु० २.८)। वेद के मन्त्रों में आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, अधियज्ञ आदि महान् गूढ़ अर्थ निहित होते हैं। अतः मन्त्रों के अर्थ की इयत्ता नहीं कर सकते कि बस इन मन्त्रों का यही अर्थ है। जिसप्रकार अश्वारोही व्यक्ति की कुशलता से अश्व (घोड़े) कुशल और कुशलतर गति करते हैं, उसी प्रकार वक्ता (वेदार्थावबोधक विद्वान्) के वैशिष्ट्य (कुशलता, वेदाङ्गादि शास्त्रों में अप्रतिहतगति) से वेदार्थ में भी उतना ही वैशिष्ट्य (वेदार्थ की यथार्थता, तात्पर्य, स्पष्टता, गूढार्थ अवगति आदि) हृदयगत होता है। इस प्रकार बङ्ग आदि शास्त्रों के साथ वेदार्थ तक प्रखर प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्तियों को प्राचीनकाल में 'ऋषि' की उपाधि दी जाती थी-**चतुर्वेदाद् ऋषिः** [इत्यभिधीयते] (बौधायनगृह्यसूत्र-१.७.७)[५]। समाज में षडङ्गविद् वेदवेत्ताओं का बड़ा आदर सम्मान होता था, साथ में उनका कथन व व्यवहार प्रामाणिक हो जाता था। उनकी वाणी व लेख आर्षकोटि[६] में आ जाता था। महर्षि मनु ने भी कहा है-

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥

(मनु. १२.१००)

सब सेना और सेनापतियों के ऊपर राज्याधिकार, दण्ड देने की व्यवस्था के सब कार्यों का आधिपत्य और सब के ऊपर वर्तमान सर्वाधीश राज्याधिकार इन चारों अधिकारों में सम्पूर्ण वेदशास्त्रों में प्रवीण, पूर्ण विद्या वाले, धर्मात्मा जितेन्द्रिय, सुशीलजनों को स्थापित करना चाहिए अर्थात मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी, मुख्य न्यायाधीश और प्रधान राजा ये चार सब विद्याओं में पूर्ण विद्वान होने चाहिए(दया०सत्यार्थ० ७)।

त्रैविद्यो हैतुकस्तर्को नैरुक्तो धर्मपाठकः।
यश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत् स्याद् दशावराः॥

(मनु. १२.१११)

राज्य की धर्मपरिषद् में न्यूनातिन्यून ये दस विद्वान् होने चाहिए (१३) ऋग्वेदादि तीन वेदों के विद्वान, (४) कार्यकारण भाव को या कारणाकारण को जानने वाला विद्वान्, (५) न्यायशास्त्रविद, (६) निरुक्त [आदि वेदों का ज्ञाता, (७) धर्मशास्त्रवेत्ता और (८-१०) ब्रह्मचारी, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ तथा च-

वर्णानामयमिदं भविष्यतीति षडङ्गविदस्तत्तथाऽधीमहे (गो० वा० १.१.२७)। वर्णों में यह वर्ण इस रूप वाला प्रामाणिक होगा, ऐसा षडङ्गविद् विद्वान् कहते हैं, उसे हम प्रामाणिक मानकर वैसे ही पढ़ते हैं।

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः, युक्ता, आयुक्ताः, अलूक्षा, धर्मकामाः स्युः यथा ते तत्र वर्तेरन्, तथा तत्र वर्तेथाः (तै० उप शिक्षा. ११.४)। यदि कर्म या व्यवहार आदि विषयों में सन्देह व धर्मसंकट उत्पन्न हों, वहाँ षडङ्गादि शास्त्रों के परिज्ञाता वेदविद्वान् जैसा निर्णय या व्यवहार करते हैं, वहाँ तुम (सन्दिग्ध) लोग भी वैसे ही व्यवहार करना (परन्तु धर्मभ्रष्ट नहीं होना चाहिए)।

पंक्तिपावनः षडङ्गविद्ज्येष्ठसामिकस्त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णः पञ्चाग्निः स्नातको मन्त्रब्राह्मणविद् धर्मज्ञो ब्रह्मदेयानुसन्तान इति (गौतमधर्मसूत्र-२.६.२९, अपि च द्र.धर्म०२.८.२; वासिष्ठ धर्म० ३.१९)। षडङ्गविद् वेदज्ञ विद्वान् आदि पङ्क्ति भोजन में सम्पूर्ण पंक्ति को पवित्र करने वाले होते हैं।

उद्धृत इन उदाहरणों से स्पष्ट ज्ञान होता है कि पूर्वकाल में षडङ्गादि शास्त्रों सहित वेदों के अध्ययन करने वाले विद्वान का समाज में कितना आदर होता था और उनकी प्रामाणिकता प्रायः सर्वथा मान्य थी। परन्तु यह आदर और प्रामाणिकता आदि वेदादि शास्त्रों के अनुकूल आचारवान् विद्वानों की ही थी, न कि आचारहीनों की-

आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः॥
आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्य वेदाः षडङ्गास्त्वखिलाः सयज्ञाः।
कां प्रीतिमुत्पादयितुं समध अन्धस्य द्वारा इव दर्शनीयाः॥

(वासिष्ठधर्म० ६.३-४)

इस प्रकार सम्पूर्ण आर्षग्रन्थों की पठनपाठन परम्परा से यह आर्यावर्त पूर्ण वैभवोपेत था और विश्वगुरु था। यदि वह परम्परा आज भी विधिवत् प्रचलित हो तो यह देश पुनः विश्वगुरु बन सकता है, ऐसा महर्षि दयानन्द का दृढ़ विश्वास था, उनका एक दिव्य स्वप्न था। इसके लिए उन्होंने यथासम्भव पूर्ण प्रयास किया और यह प्रयास आगे चलता रहे, इसके लिए उन्होंने अपने प्रमुख ग्रन्थों में आर्षपाठविधि का पाठ्यक्रम भी प्रस्तुत कर उसे प्रचलित करने हेतु आर्यगुरुकुलों को चलाने का कार्य भावी आर्यों को सौंपा। उनके द्वारा लिखित पठनीय आर्यग्रन्थ इसप्रकार है-

शिक्षा - पाणिनीय शिक्षा (सूत्रात्मक)।

व्याकरण – अष्टाध्यायी, धातुपाठ, उणादिकोष, गणपाठ, लिङ्गानुशासन, महाभाष्य।

निरुक्त – निघण्टु निरुक्त, अव्ययार्थ (आप्तमुनिकृत)।

छन्दः शास्त्र– पिङ्गलछन्दः सूत्र (पिङ्गलभाष्यसहित)।

कल्पसूत्र – कल्पसूत्र, आश्वलायन श्रौतगृह्य मानवकल्पसूत्र आदि।

ज्योतिष – सूर्यसिद्धान्त आदि, अङ्क-बीज-रेखागणित, भूगोल, खगोल, भूगर्भविद्या (वसिष्ठ आदि कृत)।

साहित्य – मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण, महाभारत (विदुरनीति), काव्यालङ्कारसूत्र।

दर्शनशास्त्र– न्याय (वात्स्यायन भाष्य), वैशेषिक (गौतमप्रशस्तपाद भाष्य), सांख्य (भागुरि-भाष्य), योग (व्यासभाष्य),पूर्वमीमांसा (व्यास भाष्य), वेदान्त (बौधायन भाष्य)।

उपनिषद्-ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डुक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक।

वेद के पाठ– पदक्रम (चारों वेदों के), गान (साम)।

उपवेद – चरक, सुश्रुत, निघण्टु (धन्वन्तरिकृत) धनुर्वेद (अङ्गिरा आदि कृत), गान्धर्ववेद (नारदसंहिता आदि), अर्थवेद (चित्रकर्मा त्वष्टा देवज्ञ मयकृत चार संहिताएँ)।

ब्राह्मण,वेद– ऐतरेय-ऋग्वेद, शतपथ-यजुर्वेद, साम-सामवेद, गोपथ-अथर्ववेद।

इस पाठ्यक्रम के साथ विविध कलाओं का प्रशिक्षण हो, ऐसा भी स्वामी जी चाहते थे। आर्यावर्त के वैभव के पुनर्दर्शन के लिए, वेद की प्रतिष्ठा के लिए, सम्पूर्ण मानवजाति (विश्व) के सुख, समृद्धि, कल्याण के लिए स्वामी दयानन्द का एक दिव्य स्वप्न था, कि उक्त आर्षपाठ्यक्रम यथावत् प्रचलित हो। आज तक एक भी ऐसा आर्यविद्या का केन्द्र स्थापित नहीं हो पाया है, जहाँ स्वामी जी के द्वारा निर्दिष्ट सभी शास्त्रों का पठन-पाठन हो और सभी कलाओं का प्रशिक्षण होता हो। इस ओर सभी को संगठित होकर तीव्र प्रयत्न करने की महती आवश्यकता है। आज आर्षपाठविधि के स्थान पर प्रायः अर्थकरी विद्या का पाठ्यक्रम ही प्रचलित है। इसे ही गुरुकुलीय विद्या समझकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। मेरा अभिप्राय इस शिक्षाप्रणाली के विरोध में नहीं आज प्रत्येक क्षेत्र में आर्यसंस्कारों से संस्कारित विज्ञान आदि का होना अनिवार्य है। उसके लिए सर्वकारीय मान्यता प्राप्त गुरुकुलों को चलाना भी अनिवार्य है। परन्तु उससे कई गुणा अधिक विशुद्ध आर्य पाठ्यक्रम को चलाने वाले आर्यगुरुकुलों की भी महती आवश्यकता है। इस आवश्यकता की और उपेक्षा भाव रखना अक्षम्य अपराध है, घोर पाप है। क्योकि इस उपेक्षाभाव से वैदिक वाङ्मय की सुरक्षा, विद्वत्ता की परम्परा, ऋषि-मुनियों की परम्परा, स्वामी दयानन्द के दिव्य स्वप्न आदि सब के सब अन्धकारमय भविष्य के गर्भ में विलीन हो जायेंगे। साथ में यह भी विशेषतया ध्यातव्य है कि जिसप्रकार आधुनिक शिक्षाप्रणाली में प्राथमिक विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक के विद्यालयों के नाम से ही ज्ञात होता है कि उसमें क्या-क्या पढ़ाया जाता है और उसका स्तर क्या है? क्या उसी प्रकार गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली में उस प्रकार की व्यवस्था नहीं हो सकती है? आजकल गुरुकुल दो प्रकार से चल रहे हैं- १.सर्वकारीय-परीक्षा-पद्धति से २. बिना सर्वकारीयपरीक्षा के आर्षशैली से इनके अवान्तर विभाग भी हो सकते हैं। इनमें सबके लिए प्रायः आर्यगुरुकुल, वैदिक गुरुकुल, दयानन्द आर्यगुरुकुल आदि शब्दों का प्रयोग होता है, चाहे गुरुकुल का प्रकार व स्तर कुछ भी हो। क्या यह आप वैदिक आदि शब्दों का अवमूल्यन नहीं है, इनका दुरुपयोग नहीं है, क्या इसमें छलाचा नहीं झलकता, आजकल तो आवासीय सरकारी स्कूल भी गुरुकुल के रूप से व्यवहृत हो रहे हैं। इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है?

पूर्वकाल की अपेक्षा पढ़ने, पढ़ाने वालों में रुचि, जिज्ञासा, सामर्थ्य आदि का ह्रास होता जा रहा

है। इसमें आधुनिकता, आजीविका आदि अनेक कारण हो सकते हैं। परन्तु अर्थपरम्परा एवं वैदिक वाङ्मय की सुरक्षा का प्रश्न तो प्राथमिकतया और अनिवार्यतया विचारणीय बनता ही है। पठन-पाठन के अभाव में अनेकों शास्त्र अनेकों बार लुप्त हुए हैं। इसे सभी विद्वान् भलीभांति जानते हैं और वे अपने प्रवचनों में इसका उल्लेख भी करते हैं। वे ही विद्वान व्यवहार में आर्षपरम्परा के प्रति उपेक्षा भाव दिखाते हैं। मैं सभी विद्वानों से विनम्रतापूर्वक एवं आग्रहपूर्वक निवेदन करता हूँ कि वे अपने कर्तव्यों पर पुनः आत्ममन्थन करें। आज की विषम परिस्थितियों के बहाने क्या आर्षग्रन्थों को भविष्य के गर्भ में विलुप्त होने के लिए छोड़ दिया जाय? विषम परिस्थितियों या आलस्य, प्रमाद, स्वार्थ आदि के कारण ही शास्त्रों की परम्परा लुप्त हो जाती है। इसी ओर संकेत करते हुए महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि कहते है-**वेदमधीत्य त्वरिता वक्तारो भवन्ति**(म०भा०पस्प०)। गुरुकुलों में कुछ आंशिक विद्या का ग्रहण कर प्रवक्ता याज्ञिक, प्रचारक बन जाते हैं। समाज में ऐसे व्यक्तियों की भी आवश्यकता है। सबके अपने अपने कारण हो सकते हैं। परन्तु शास्त्र की सुरक्षा का प्रश्न तो गम्भीरतया विचारने के योग्य है। ऐसे संकट का समाधान भी ऋषियों के वचनों में ही खोजना चाहिए।[७] इस धर्मसंकट के समाधान को सुझाते हुए हमारे ऋषियों ने कहा है-

१. सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः (मनु०४.१७)। वेदाध्ययन और वैदिक परम्परा के विघ्नबाधाओं एवं धनाश्रयों की सभी दुराशाओं का परित्याग करना चाहिए।

२. ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च (म०भा०पस्प०)।

३. स्वाध्यायान्मा प्रमदः.....सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्...स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् (तै०उप०११.१)।

४. यावन्तं ह वा इमां पृथिवीं वित्तेन पूर्णां ददल्लोकं जयति, त्रिस्तावन्तं जयति, भूयांसञ्च अक्षयञ्च य एवं विद्वान् अहरहः स्वाध्यायमधीते। तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः (शत.ब्रा०११.५.६.१)।

धन-धान्य आदि से परिपूर्ण पृथिवी के दान से जो पुण्य की प्राप्ति होती है, उससे तीन गुणा या उससे भी अधिक अक्षय पुण्य को वह प्राप्त करता है, जो प्रतिदिन वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय करता है। इसलिए सब भौतिक आशाओं को त्यागकर स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।

५. **वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन्।**
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥
(मनु. १२.१०२)

६. **योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।**
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥
(मनु० २.१६८)

ये सभी वचन केवल परवचन के लिए नहीं हैं, अपितु प्रवचन (आचरण, व्यवहार) के लिए हैं। वैदिक (आप) ग्रन्थों के पठन-पाठन की परम्परा की रक्षा का विषय चर्चा में आते ही वित्तेषणा आदि तीन एषणायें विघ्न बाधाओं के रूप में सामने उपस्थित होती हैं। परिणामतः कामचलाऊ अध्ययन-अध्यापन किया कराया जाता है। ऐसी प्रवृत्ति वाले को उद्दिष्ट करके ही महाभारत में कहा गया है कि **बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति** (म०भा०१.१.२६७-२६८) अल्पाधीतविद्या से विभूषित व्यक्ति अपने को पण्डित, विद्वान् आदि मानते हुए वेद और वेद की परम्परा का विघातक होता है। इसीलिए अनेकों गणमान्य एवं वन्दनीय विद्वानों ने सभी प्रकार की एषणाओं को त्याग कर गुरुकुलों की स्थापना की, सञ्चालित किया और आर्षपरम्परा के लिए अपने आपको सर्वात्मना समर्पित किया। साथ में वे केवल पठन-पाठन, शोध पूर्ण लेखन आदि कार्यों में अपने आप को आहूत किया है। वे इन कार्यों को छोड़कर अन्य किसी कार्य व लोक में कभी जिये हो नहीं हैं। उनके त्याग, तप

एवं विद्वत्ता को नमन करने के साथ-साथ उनके पवित्र भावों दिव्य स्वप्नों को हमें जीवित रखना होगा। आर्यपरम्परा की सम्मृद्धि के लिए एवं सुरक्षा के लिए हमें और अधिक तीव्र पुरुषार्थ करना होगा, निरन्तर प्रयत्नशील रहना होगा। ईश्वर हम सबको सब प्रकार का सामर्थ्य तथा शक्ति प्रदान करें।

मनु के वचन से इस लेख को समाप्त करते हैं-

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः।

(मनु० ४.१४७)

आलस्य, प्रमाद, स्वार्थ आदियों से रहित होकर षडङ्गादि शास्त्रों के साथ निःस्वार्थ भावना से नित्य वेद का ही अभ्यास (पठन-पाठन) करें।

सन्दर्भसूची :-

१. कृषि अणु-आर्ष-'तस्येदम्' (अष्टा०४.३.१२०)।

२. इसके लिए लेखक का ऋषिमीमांसा (वेदवाणी, नवम्बर-२०१८ आर्षज्योति अप्रैल, मई-२०२०) शीर्षक का लेख विशेषतया प्रष्टव्य है।

३. व एतदक्षर (ब्रह्म) गार्गि विदित्वाऽस्माल्लोकात् प्रति स ब्राह्मण (उप-३.८.१०)। शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्यति.....विपापी विरजो विचिकित्सो ब्राह्मणो (ब्रह्मविद्) भवति (उ० ४.४.२३)।

४. न ह्येषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषस्तपसी वा पारीवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यो भवति (निरु० १३.१२) यथा यथा हि पुरुषः शास्त्र समधिगच्छति। तथा तथा विजानाति विज्ञानं वारय रोचते। (मनु० ४.२०)

५. ऋषि मन्त्रार्थद्रष्टा विद्वान विद्याप्रकाशकः (दयानन्दः० १.६६.२) अध्यापकोऽध्येता वा (दया०.ऋ०१.१०६.६)। रुपयः-वेदार्थविदो विद्वासः (दया० १.१६२.७)। ऋषिम् वेदपारगाध्यापकम् (दया० १.११७.३)। जो विद्वानों के समीप से उत्तम ज्ञान को पार्क ऋषि होते हैं, वे सब को विज्ञान देने से पुष्ट करते है (दया० यजु० २५.३०)। जो मनुष्य बहुत विद्वानों से अति उत्तम विद्वान् को स्वीकार कर, वेदादिशास्त्रों की विद्या को पढ़कर महर्षि होवें वे दूसरों को पढ़ा सकें (दया यजुः२१.६१)।

६. छन्दोवत् सूत्राणि भवन्तिः आपल्यात साधुः इत्यादि वाक्यों से उक्त कथन की पुष्टि होती है।

७. अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्वात्। ये तत्र ब्राह्मणा.....यथा ते तत्र वर्तेरन्, तथा तत्र वर्तेथाः (त उप०, शिक्षा. ११.४)।

- आचार्य,

साङ्गोपाङ्गवेदमहाविद्यालय,

निगमनीडम्-वेदगुरुकुलम्, हैदराबाद-तेलंगाना

(प्रश्न) ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं?

(उत्तर) नहीं। क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उस का न्याय नष्ट हो जाये और सब मनुष्य महापापी हो जायें। क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उन को पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाये। जैसे राजा अपराधियों के अपराध को क्षमा कर दे तो वे उत्साहपूर्वक अधिक-अधिक बड़े-बड़े पाप करें। क्योंकि राजा अपना अपराध क्षमा कर देगा और उन को भी भरोसा हो जाय कि राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डर कर पाप करने में प्रवृत्त हो जायेंगे। इसलिये सब कर्मों का फल यथावत् देना ही ईश्वर का काम है क्षमा करना नहीं।

- महर्षि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, सप्तम समुल्लास

महर्षि दयानन्द सरस्वती की वेदार्थ पद्धति

❑ आचार्या डॉ. सूर्यादेवी चतुर्वेदा...✍

वेद अपौरुषेय ज्ञान है, सर्वज्ञ परमेश्वर की देन है, जिसमें सब सत्य विद्याओं का भण्डार है।[१] वेद का ज्ञान पूर्ण व नित्य है। तीनों कालों में एकरसता रखने वाला ज्ञान है, यह अपरिवर्तनीय ज्ञान है। पूर्ण व नित्य वेदज्ञान अतीन्द्रिय[२] गूढ़ार्थ से ओतप्रोत है। वेदों के अतीन्द्रियार्थ को अधिगत करने के लिये ऋषियों ने अथक प्रयास किया है। **उपवेद, वेदाङ्ग, उपाङ्ग= दर्शनशास्त्र** आदि ग्रन्थ ऋषियों के अथक प्रयास के ही संद्योतक ग्रन्थ हैं।

वेदार्थ ज्ञापक शास्त्र -

वेदाङ्ग आदि ग्रन्थ वेदों के अर्थ के ज्ञापक हैं, यह सुस्पष्ट करते हुये **महर्षि दयानन्द सरस्वती** ने **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** के **पठनपाठनविषयः** प्रकरण में लिखा है। यथा–**तत्रादौ पठनस्यारम्भे शिक्षारीत्या स्थानप्रयत्नस्वरज्ञानायाक्षरोच्चारणोपदेशः कर्त्तव्यः। येन नैव स्वरवर्णोच्चारण- ज्ञानविरोधः स्यात्।**

– ऋ.भा.भू., पठन., पृ. ३४४

अर्थात् उस पठनपाठन के आदि के आरम्भ में शिक्षाविधि से **स्थान, प्रयत्न, स्वरज्ञान** के लिये, अक्षर उच्चारण का उपदेश करना चाहिये, जिससे स्वर, वर्णोच्चारण, ज्ञान का विरोध न होवे।

मनुष्यैर्वेदार्थविज्ञानाय व्याकरणाष्टाध्यायी-महाभाष्याध्ययनम्। ततो निघण्टुनिरुक्तछन्दोज्योतिषां वेदाङ्गानाम्। ततो मीमांसावैषेशिकन्याययोगसांख्य-वेदान्तानां वेदोपाङ्गानां षण्णां शास्त्राणाम्।

– ऋ.भा.भू., पठन., पृ. ३५०

अर्थात् मनुयों के द्वारा वेदार्थ के विशिष्ट ज्ञान के लिये **व्याकरण, अष्टाध्यायी, महाभाष्य** का अध्ययन किया जाना चाहिये। ततः **निघण्टु, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष** वेदांगों का अध्ययन किया जाना चाहिये। ततः **मीमांसा, वैषेशिक, न्याय, योग, सांख्य, वेदान्त** वेदों के **उपाङ्गभूत** ६ शास्त्रों का अध्ययन किया जाना चाहिये।

महर्षि दयानन्द के वचनों से स्पष्ट है **वेदाङ्ग वेद** के अर्थों को जनाने वाले शास्त्र हैं। अर्थों का उद्घाटन इन वेदांगों से होता है।

वेदाङ्गभूत निरुक्तशास्त्र वेदार्थ का परम साधक है, जिस **महर्षि यास्क** ने **निरुक्तशास्त्र** में स्पष्ट किया है। निरुक्तशास्त्र का प्रयोजन बताते हुये वे लिखते हैं– **अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यते अर्थमप्रतियतो नात्यन्तं स्वरसंस्कारोद्देशः॥**–निरु.१.५.१३

अर्थात् निरुक्तशास्त्र के बिना मन्त्रों में विद्यमान अर्थ का परिज्ञान असंभव है। अर्थ को न जानता हुआ कोई भी निश्चय रूप से भली प्रकार से मन्त्रों में निर्दिष्ट स्वरों एवं शब्दों के **संस्कार**¾निर्माण का निश्चय, कथन नहीं कर सकता।

मन्त्र अर्थवान् – वेदार्थ में निरुक्तशास्त्र की अहं भूमिका निदर्शनार्थ पूर्वपक्षपूर्वक **यास्क** आगे लिखते हैं – **यदि मन्त्रार्थप्रत्ययायानर्थकं भवतीति कौत्सोऽनर्थका हि मन्त्रास्तदेतेनोपेक्षितव्यम्॥** – निरु. १.५.१३

अर्थात् मन्त्र के अर्थ परिज्ञान के लिये यदि निरुक्तशास्त्र है, तो यह कथन अनर्थक है, यह कौत्स का मानना है, क्योंकि निश्चय से मन्त्र अनर्थक हैं अर्थ रहित हैं। मन्त्रों की अनर्थकता आगे कहे जाने वाले प्रकरण से जाननी चाहिये। -------।।

पूर्वपक्षरूप कौत्स के इस कथन का खण्डन एवं निरुक्त की वेदार्थ में प्रयोजनता सिद्ध करते हुये यास्क कहते हैं–

अर्थवन्तः शब्दसामान्यात्। –निरु. १.५.१३

अर्थात् शब्दों की समानता से वेदमन्त्र अर्थवान्

हैं। वचन का तात्पर्य है **अग्नि, वायु, आदित्य** आदि शब्द जो लोक में प्रयुक्त होते हैं, जिनसे अर्थावबोध होता है, वे शब्द वेद में भी हैं। लोक में वे शब्द यदि सार्थक हैं तो वेद में भी सार्थक हैं। इस प्रकार निरुक्त वेदार्थ में परम सहायक हैं। निरुक्त अर्थज्ञान को कराने वाला है, इसका निर्देश इस **प्रथम अध्याय के षष्ठ पाद** में भी दिया है। वहाँ यास्क कहते हैं–

निरुक्तशास्त्र के रहते हुये जो अर्थ को न जान पाये, यह अध्येता का दोष है, निरुक्तशास्त्र का नहीं। अर्थज्ञ का ही पूर्ण कल्याण होता है, मुक्ति मिलती है[३], आदि निर्देशपूर्वक महर्षि यास्क ने भली प्रकार वेदमन्त्रों की सार्थकता निर्दिष्ट की है।

वेदमन्त्रों के अर्थप्रकार-

महर्षि यास्क ने जहाँ वेदमन्त्रों के सार्थक्य व फल का निर्देश किया है, वहीं उन्होंने मन्त्रों के अर्थ प्रकार का भी निर्देश किया है। अर्थ को **वेदवाक्** का **पुष्पफल** बताया है। यथा– **यो वाचं श्रुतवान् भवत्यफलामपुक्मामिति- अफलाऽस्मा अपुष्पा वाग् भवतीति वा, किंश्चित्पुष्पफलेति वा। अर्थं वाचः पुष्पफलमाह, याज्ञदैवते पुष्पफले, देवताध्यात्मे वा॥**

– निरु. १.६.१८

अर्थात् जिसने फल पुष्प रहित वेदवाणी को सुना है, अर्थ नहीं जाना है मात्र शुकवत् रट रखा है, वह वाणी उसके लिये फल, पुष्परहित होती है, अथवा थोड़ी सी पुष्प, फल देने वाली होती है। **वाणी का पुष्प, फल अर्थ होता है,** ऐसा ऋषिजन कहते हैं। **याज्ञ**= यज्ञविषयक ज्ञान **पुष्प** है, और **अग्नि, वायु, आदित्य** आदि **देवता= प्रतिपाद्य** होते हैं, **तद्विषयक ज्ञान फल** होता है, अथवा देवता= अग्नि आदि प्रतिपाद्य विषयक ज्ञान **पुष्प** होता है एवं **अध्यात्म= जीवात्मा** व **परमात्मा** विषयक ज्ञान **फल** होता है। तात्पर्य हुआ जो मनुष्य मन्त्र के अर्थों को नहीं जानता, पर उसे वेदमन्त्र रटे हैं, वह उसकी अपेक्षा अच्छा है, जिसने मन्त्र भी याद नहीं किये। अर्थ वाणी का पुष्प, फल है, **याज्ञ, दैवत अथवा देवता व अध्यात्म** वाणी के पुष्प, फल हैं।

वेदार्थ की त्रिविध प्रक्रिया-

महर्षि यास्क के वचनों से स्पष्ट है कि वेदमन्त्रों के अर्थ की याज्ञिक, दैवत एवं अध्यात्म ३ प्रक्रियायें हैं। वेदार्थ की यास्क निर्दिष्ट इन ३ प्रक्रियाओं को समर्थन देते हुये स्कन्द स्वामी ने लिखा है– **सर्वदर्शनेषु च सर्वे मन्त्राः योजनीयाः। कुतः? स्वयमेव भाष्यकारेण सर्वन्त्राणां त्रिप्रकारस्य विषयस्य प्रदर्शनाय 'अर्थं वाचः पुष्पफलमाह' इति यज्ञादीनां पुष्पफलत्वेन प्रतिज्ञानात्।।** –निरु. स्कन्द. ७.२.५, भाग २, पृ. ३६

वचन का तात्पर्य स्पष्ट है **सर्वदर्शन= सभी अध्यात्म, यज्ञ** आदि प्रक्रियाओं में सभी मन्त्रों की योजना करनी चाहिये, क्योंकि स्वयं भाष्यकार ने सभी मन्त्रों के ३ प्रकार के विषय के प्रदर्शन के लिये 'अर्थं वाचः पुष्पफलमाह' ऐसा निर्देश करके **यज्ञ आदि** प्रक्रियाओं को **पुष्प, फल** के रूप में प्रतिज्ञात किया है। यास्क निर्दिष्ट वेदार्थ की इस **आध्यात्मिक, आधिदैविक, अधियज्ञ** त्रिविध प्रक्रिया का प्रतिपादन गृह्यसूत्र, स्मृति आदि ग्रन्थों में हुआ है।

तद्यथा–

अधिदेवमथाध्यात्ममधियज्ञमिति त्रयम्।
मन्त्रेषु ब्राह्मणे चैव श्रुतमित्यभिधीयते॥

–शांखायन गृ. सू. १.२.१६

अर्थात् अधिदेव, अध्यात्म, अधियज्ञ ये ३ प्रकार मन्त्रों और ब्राह्मणों में सुने जाते हैं, ऐसा कहा जाता है। वेदार्थ की त्रिविध प्रक्रिया का कथन मनुस्मृति में इस प्रकार किया गया है–

अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च।
आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत्॥

–मनु. ६.८३

अर्थात् ब्रह्म के ध्यान के लिये **अधियज्ञ** और **आधिदैविक** और **आध्यात्मिक** विषय वाले **ब्रह्म**=वेदमन्त्रों को सदा जपे, और जो वेदान्त दर्शन में ब्रह्मविषयक कथन है, उसका निरन्तर जप करे।

वेदमन्त्रों के अर्थ करने की अन्य प्रक्रियायें भी शास्त्रावगाहन द्वारा परिज्ञात होती हैं। वे भिन्न नहीं हैं अपितु वे सभी इन ३ प्रक्रियाओं की व्याख्या

रूप हैं, उनमें ही समाविष्ट हो जाती हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की वेदार्थ पद्धति-

ब्रह्मा, बृहस्पति, इन्द्र आदि, **ऐतरेय, याज्ञवल्क्य** आदि, **यास्क** आदि अनेक ऋषियों ने वेद के ज्ञान को उद्घाटित किया है। **महर्षि दयानन्द सरस्वती** उसी परम्परा के वेदज्ञान का उद्घाटन करने वाले **ऋषि** हैं[४]। आधुनिक युग के सर्वोपरि ऋषि **महर्षि दयानन्द सरस्वती** हैं।

महर्षि दयानन्द ऋषि ने **ऋग्वेद**[५] और **यजुर्वेद**[६] २ वेदों के भाष्य किये हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा किया गया वेदों का भाष्य किस पद्धति का है? यह ज्ञातव्य और आवश्यक तथ्य है।

पद्धति शब्द **प्रकार, शैली, विधा, मार्ग, उत्तम** आदि अर्थों का वाचक है। जिसकी व्युत्पत्ति है– **पादाभ्यां हन्यते इति पद्धतिः। पाद+हतिः= पद्धतिः**[७]**।**

इस शब्द का सामान्य अर्थ है **पैरों द्वारा जो रौंदा जाता है, वह मार्ग। विशेष अर्थ है- ज्ञान, गमन, प्राप्ति निमित्तक शास्त्र या परम्परा द्वारा जो ज्ञान, गमन, प्राप्ति की उपलब्धि है, वह पद्धति कही जाती है।** जिसके लिये सभी चलते हैं।

मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन **ज्ञान, गमन, प्राप्ति**= उपलब्धि में ही समाहित है। इसके लिये ही सभी प्रयत्न होते हैं। वे प्रयत्न वेदों से ही जाने गये हैं। इन प्रयत्नों की सम्प्राप्ति के लिये महर्षि दयानन्द सरस्वती ने किसी **नये मार्ग का अन्वेषण** नहीं किया, अपितु **पूर्वज ऋषियों के मार्ग को ही अपनाया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने उस मार्ग को ऊहजन्य रूप वैशिष्ट्य अवश्य प्रदान किया।** महर्षि दयानन्द सरस्वती की वेदार्थ पद्धति को अन्यत्र ढूंढ़ने की आवश्यकता नहीं है, उन्होंने **स्व वेदार्थ पद्धति** को स्वयमेव **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** में विस्तार से उद्घाटित कर दिया है, एवं **अन्यत्रापि** किया है।

१. महर्षि दयानन्द ने **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** के प्रारम्भ में **तैत्तिरीय आरण्यक** के कथन के पश्चात् **८ श्लोक** निर्दिष्ट किये हैं। उनमें अन्तिम **३ श्लोक वेदभाष्य पद्धति** के निर्देशक हैं। यथा–

आर्य्याणां मुन्यृषीणां या व्याख्यारीतिः सनातनी।
तां समाश्रित्य मन्त्रार्था विधास्यन्ते तु नान्यथा॥
येनाधुनिकभाष्यैर्ये टीकाभिः वेददूषकाः।
दोषाः सर्वे विनयेयुरन्यथार्थविवर्णनाः॥
सत्यार्थश्च प्रकाश्येत वेदानां यः सनातनः।
ईश्वरस्य सहायेन प्रयत्नोऽयं सुसिध्यताम्॥

ऋ.भा.भू.,भू. ६–८, पृ.१

आर्यों, मुनियों, ऋषियों की जो सनातनी= सर्वदा से चली आई व्याख्यारीति है, उसका समाश्रयण करके मन्त्रों के अर्थ किये जायेंगे, इसके विपरीत नहीं। जिससे विपरीत अर्थों का वर्णन करने वाले, वेददूषक आधुनिक भाष्यों द्वारा, टीकाओं द्वारा जो दोष= भ्रम, मिथ्या आरोप किये गये हैं, वे सभी नष्ट हो जायें। और जो वेदों का सनातन सत्यार्थ है, उसका प्रकाश होवे, इसीलिये वेदभाष्य कर रहा हूँ। ईश्वर की सहायता से यह प्रयत्न भली प्रकार सिद्ध हो जाये।

२. महर्षि दयानन्द ने **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** के **अथ संक्षेपतो भाष्यकरण शंकासमाधानादिविषयः** प्रकरण में स्व **वेदार्थ पद्धति** का प्रकार **प्रश्नात्मक शैली** में विज्ञापित किया है।

प्रश्नः- किञ्च भोः नवीनं भाष्यं त्वया क्रियत आहोस्वित्पूर्वाचार्य्यैः तमेव प्रकाश्यते। यदि पूर्वैः तमेव प्रकाश्यते, तर्हि तत् पिष्टपेषणदोषेण दूषितत्वान्न केनापि ग्राह्यं भवतीति? –ऋ.भा.भू. भाष्यक., पृ. ३५२

प्रश्न - क्योंजी! क्या तुम्हारे द्वारा नवीन भाष्य किया जा रहा है? अथवा पूर्वाचार्यों के द्वारा किया गया ही भाष्य बनाया जा रहा है ? यदि पूर्वों के द्वारा ही किया बनाया जा रहा है, तो वह पिष्टपेषण दोष से दूषित होने से किसी के द्वारा भी ग्राह्य नहीं हो सकता है?

उत्तरम्- पूर्वाचार्यैः तं प्रकाश्यते। तद्यथा- यानि पूर्वैर्देवैर्विद्वद्भिर्ब्रह्माणमारभ्य याज्ञवल्क्यवात्स्यायन-जैमिन्यन्तैर्ऋषिभिश्चैतरेयशतपथादीनि भाष्याणि रचितान्यासन्, तथा यानि पाणिनिपतञ्जलि-

यास्कादिमहर्षिभि च वेदव्याख्यानानि वेदाङ्गाख्यानि कृतानि, एवमेवजैमिन्यादिभिर्वेदोपाङ्गाख्यानि षट्शास्त्राणि, एवमुपवेदाख्यानि, तथैव वेदशाखाख्यानि च रचितानि सन्ति। एतेषां संग्रहमात्रेणैव सत्योऽर्थः प्रकाश्यते। न चात्र किञ्चिदप्रमाणं नवीनं स्वेच्छया रच्यत इति।। –ऋ.भा.भू.,भाष्यक.,पृ. ३५२

उत्तर- पूर्वाचार्यों के द्वारा किये हुये के अनुसार ही भाष्य किया जा रहा है। तद्यथा– जो पूर्व देवों, विद्वानों द्वारा और **ब्रह्मा** से लेकर **याज्ञवल्क्य, वात्स्यायन, जैमिनि** पर्यन्त ऋषियों द्वारा **ऐतरेय, शतपथ** इत्यादि भाष्य रचे गये थे, तथा और जो **पाणिनि, पतञ्जलि, यास्क** आदि महर्षियों द्वारा वेदों के व्याख्यान **वेदाङ्ग संज्ञा** वाले बनाये गये हैं, इसी प्रकार ही **जैमिनि** आदि के द्वारा **वेदोपाङ्ग** संज्ञा वाले **षड्दर्शन व उपवेद संज्ञक,** वैसे ही और वेदशाखा संज्ञक बनाये गये हैं। इनके संग्रह मात्र से ही= अर्थ न करते हुये इन ग्रन्थों के प्रमाणों द्वारा सत्य अर्थ मेरे द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है, और मेरे भाष्य में यहाँ स्वेच्छा से अप्रमाणिक, नवीन नहीं बनाया जा रहा है।

महर्षि दयानन्द ने अपने द्वारा किये गये वेदभाष्य का जो **फल**= लाभ होगा, उसका निदर्शन भी प्रश्नोत्तर शैली में किया है। यथा–

प्रश्नः– **किमनेन फलं भविष्यतीति?**

उत्तरम्– **यानि रावणोवटसायणमहीधरादिभिर्वेदार्थ-विरुद्धानि भाष्याणि कृतानि, यानि चैतदनुसारे-णेङ्गलेण्डशारमण्यदेशोत्पन्नैर्यूरोपखण्डदेशनिवासिभिः स्वदेशभाषया स्वल्पानि व्याख्यानानि कृतानि, तथैवार्य्यावर्त्तदेशस्थैः कैश्चित्तदनुसारेण प्राकृतभाषया व्याख्यानानि कृतानि वा क्रियन्ते च, तानि सर्वाण्यनर्थगर्भाणि सन्तीति सज्जनानां हृदयेषु यथावत् प्रकाशो भविष्यति। टीकानामधिकदोषप्रसिद्ध्या त्यागश्च॥** – ऋ. भा. भू., भाष्यक., पृ. ३५२

उत्तर– जो **रावण, उवट, सायण, महीधर** आदि द्वारा मूल वेद के अर्थ के विरुद्ध भाष्य किये गये हैं, और जो इन लोगों के अनुसार **इंग्लैण्ड, जर्मन** देशों में उत्पन्न **यूरोप** निवासियों के द्वारा अपनी भाषा में थोड़े व्याख्यान किये गये हैं, वैसे ही आर्य्यावर्त्त में रहने वाले कुछ जनों के द्वारा रावण, उवट आदि के सदृश प्राकृत= दक्षिणी, बंगाली आदि भाषाओं में व्याख्यान किये गये हैं और किये जा रहे हैं, वे सभी अनर्थों से भरे हुये हैं, ऐसा सज्जनों के हृदय में ठीक ठीक ज्ञान हो सकेगा और टीकाओं में अधिक दोष देखे जाने से उनका त्याग भी होगा।

३. महर्षि दयानन्द अथ प्रतिज्ञाविषयः संक्षेपतः प्रकरण में स्ववेदभाष्य के प्रकार का निर्देश करते हुये विज्ञापित करते हैं–

अत्र वेदभाष्ये कर्मकाण्डस्य वर्णनं शब्दार्थतः करिष्यते। परन्त्वेतैर्वेदमन्त्रैः कर्मकाण्डविनियोजितैर्यत्र यत्राऽग्निहोत्राद्यश्वमेधान्ते यद्यत् कर्त्तव्यं तत्तदत्र विस्तरतो न वर्णयिष्यते। कुतः? कर्मकाण्डानुष्ठानस्यैतरेय-शतपथब्राह्मणपूर्वमीमांसाश्रौतसूत्रादिषु यथार्थं विनियोजितत्वात्। पुनस्तत्कथनेनानृषिकृतग्रन्थवत् पुनरुक्तपिष्टपेषणदोषापत्तेश्चेति। तस्माद्युक्तिसिद्धो वेदादिप्रमाणानुकूलो मन्त्रार्थानुसृतस्तदुक्तोऽपि विनियोगो ग्रहीतुं योग्योऽस्ति॥

तथैवोपासनाकाण्डस्यापि प्रकरण ाब्दानुसरतो हि प्रकाशः करिष्यते।..... ॥

एवमेव ज्ञानकाण्डस्यापि।.....।।

ऋ.भा.भू.प्रतिज्ञा., पृ. ३७१।।

इस वेदभाष्य में कर्मकाण्ड का वर्णन शब्द के अर्थरूप से ही किया जायेगा। परन्तु इस कर्मकाण्ड में विनियोजित वेदमन्त्रों के द्वारा जहाँ जहाँ अग्निहोत्रादि से लेकर अश्वमेध पर्यन्त जो जो कर्त्तव्य कहा है, वह वह विस्तार से वर्णित नहीं किया जायेगा, क्योंकि कर्मकाण्ड के अनुष्ठान का प्रयोजनानुसार ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मणग्रन्थों, पूर्वमीमांसा, श्रौतसूत्र आदि में विनियोजन किया गया है। फिर से उसी का कथन करने से यह भाष्य अनृषि द्वारा किये गये ग्रन्थ के समान होगा और पुनरुक्ति, पिष्टपेषण दोष से युक्त हो जायेगा। इसलिये युक्तिसिद्ध, वेदादि प्रमाणों के अनुकूल, मन्त्रों के अर्थों के अनुकूल कर्मकाण्ड में कहा हुआ भी विनियोग ग्रहण करने योग्य है।

वैसे ही उपासना काण्ड का भी प्रकरण शब्द के अनुसार ही व्याख्यात किया जायेगा। .....।

ऐसे ही ज्ञान काण्ड का भी व्याख्यान किया जायेगा।.....।

एवमेव वेदानामुपवेदैरायुर्वेदादिभिर्वैद्यकविद्यादयो विशेषा विज्ञेयाः। तथैते सर्वे विशेषार्था अपि वेदमन्त्रार्थभाष्ये बहुधा प्रकाशयिष्यन्ते। एवं वेदार्थप्रकाशेन विज्ञानेन सयुक्तिदृढेन जातेनैव सर्वमनुष्याणां सकलसन्देहनिवृत्तिर्भविष्यति॥

अत्र वेदमन्त्राणां संस्कृतप्राकृतभाषाभ्यां सप्रमाणः पदशोऽर्थो लेखिष्यते। यत्र यत्र व्याकरणादिप्रमाणावश्यकत्वमस्ति तत्तदपि तत्र तत्र लेखिष्यते।.....॥ ऋ.भा.भू.प्रतिज्ञा., पृ. ३७१

ऐसे ही वेदों के **उपवेद आयुर्वेद** आदि के द्वारा वैद्यकविद्या आदि विशेष ज्ञातव्य हैं। और ये सभी विशेष अर्थ भी **वेदमन्त्रों के अर्थभाष्य में अनेक बार व्याख्यात किये जायेंगे।** इस प्रकार युक्तियों द्वारा दृढ़ता को प्राप्त वेद अर्थ के व्याख्यानरूप विज्ञान के उत्पन्न होने से सभी मनुष्यों के सभी सन्देह निवृत्त हो जायेंगे।

इस वेदभाष्य में वेदमन्त्रों के प्रमाणयुक्त **संस्कृत** और **प्राकृत भाषा** के द्वारा एक एक पद का अर्थ लिखा जायेगा। .....। जहाँ जहाँ **व्याकरण** आदि के प्रमाणों की आवश्यकता है, वह वह भी वहाँ वहाँ लिखी जायेगी।.....।

ऋषि परम्परा के वेदभाष्यकार महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द के इन कथनों से सुस्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द ने ब्रह्मा से लेकर **जैमिनी पर्यन्त** ऋषियों के **वेदार्थ पद्धति** के अनुसार ही **स्ववेदभाष्य की पद्धति रखी है, विपरीत पद्धति नहीं अपनायी है।** महर्षि दयानन्द ने पूर्वज ऋषियों के अनुगतत्व को अन्यत्र भी बड़ी दृढ़ता से लिखा है।[४]

महर्षि दयानन्द का वेदभाष्य में ऊहजन्य वैशिष्ट्य-

महर्षि दयानन्द ऋषि परम्परा के वेदभाष्यकार हैं। **शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त** आदि **वेदाङ्ग, उपाङ्ग, उपवेद** आदि के गूढ़ विद्वान् हैं। इस महत्त्व के कारण उन्होंने **स्ववेदभाष्य को ऊहजन्य वैशिष्ट्य भी प्रदान किया है।** उस वैशिष्ट्य को व्याख्यात करते हुये वे लिखते हैं–

अथात्र यस्य यस्य मन्त्रस्य पारमार्थिक-व्यावहारिकयोरर्थयोः श्लेषालङ्कारादिना सप्रमाणः सम्भवोऽस्ति, तस्य तस्य द्वौ द्वावर्थौ विधास्येते। परन्तु नैवेश्वरस्यैकस्मिन्नपि मन्त्रार्थेऽत्यन्तं त्यागो भवति। कुतः? निमित्तकारणस्येवरस्यास्मिन् कार्य्ये जगति सर्वांगव्याप्तिमत्वात्, कार्य्यस्येश्वरेण सहान्वयाच्च। यत्र खलु व्यावहारिकोऽर्थो भवति, तत्रापीश्वररचनानुकूलतयैव सर्वेषां पृथिव्यादिद्रव्याणां सद्भावाच्च॥

–ऋ.भा.भू.प्रतिज्ञा., पृ. ३७२

इस वेदभाष्य में जिस जिस मन्त्र के **पारमार्थिक, व्यावहारिक** दोनों अर्थों से **श्लेषालङ्कार** आदि के द्वारा सप्रमाण संभव है, उस उस मन्त्र के दो दो अर्थ किये जायेंगे। परन्तु एक भी मन्त्र के अर्थ में **ईश्वर विषय** का नितान्त त्याग नहीं होगा, क्योंकि निमित्त कारण ईश्वर की इस कार्य्य जगत् में **सर्वांगरूप** से व्याप्ति है और कार्य जगत् का ईश्वर के साथ सह अन्वय है, अर्थात् ईश्वर के द्वारा ही कार्य होता है।

जहाँ **व्यावहारिक अर्थ** भी है वहाँ भी ईश्वर की रचना, व्यवस्था के द्वारा ही सभी पृथिवी आदि द्रव्यों की उत्पत्ति होती है अर्थात् वहाँ भी ईश्वर का कथन होगा।

महर्षि दयानन्द के इस **ऊहवैशिष्ट्य** से यह भी स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द ने वेदार्थ की पूर्वज **यास्क आदि ऋषियों** द्वारा निर्दिष्ट जो **आधिदैविक, आध्यात्मिक** और **अधियज्ञ** प्रक्रियायें हैं, उनका तत् तत् नामों द्वारा कथन नहीं किया है, **परमार्थ, व्यवहार** नामों से किया है, पर उन तीनों प्रक्रियाओं में जहाँ जो अर्थ प्रतीत हुआ है, वहाँ वहाँ वैसा अर्थ किया है।

स्ववेदभाष्य में **निरुक्त**[९], **स्वर**[१०], **व्याकरण के नियम, व्याकरण प्रक्रिया, विशेषतः लेट् लकार के रूप आदि, धातुओं के अर्थ**[११], **अलङ्कार भेद**[१२], वेदभाष्य में दिये जाने वाले **वेद, व्याकरण** आदि के **सङ्केतों**[१३] को भी महर्षि दयानन्द ने **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** में

निर्दिष्ट किया है।

महर्षि दयानन्द वेदभाष्य क्रम

महर्षि के वेदभाष्य करने में **मन्त्र, पद, अन्वय** आदि का क्या क्रम होगा? यह भी अतिस्पष्टता से महर्षि दयानन्द ने प्रतिपादित किया है। यथा–

मन्त्रार्थभूमिका ह्यत्र मन्त्रस्तस्य पदानि च।
पदार्थान्वयभावार्थाः क्रमाद्बोध्या विचक्षणैः॥

– ऋ.भा.भू.ग्रन्थसंकेत., पृ. ४१०

इस मन्त्रभाष्य में पहले मन्त्र की **भूमिका**= ईश्वर ने जिस विषय को प्रतिपादित किया है वह विषय, **मूलमन्त्र** उस मन्त्र के **पद= पदच्छेद**, क्रम से मन्त्र के **पदों का अर्थ, अन्वय** अर्थात् पदों की सम्बन्धपूर्वक योजना, **भावार्थ** अर्थात् मन्त्र का मुख्य प्रयोजन, इस क्रम से विद्वानों को मन्त्रभाष्य जानना चाहिये।

महर्षि ने इस श्लोक के माध्यम से स्ववेदभाष्य के क्रम का प्रतिपादन किया है।

महर्षि दयानन्द ने वेदभाष्य में किन **सिद्धान्तों** को माना है? उनकी दृष्टि में **वेदों के विषय क्या हैं? मुख्य विषय** क्या है? कौन कौन से **ज्ञान, विज्ञान** हैं? आदि का विश्लेषण भी **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** में कर दिया है।

मध्यकालिक वेदभाष्यकार-

ब्रह्मा से लेकर **जैमिनि** पर्यन्त **यास्क** आदि ऋषियों ने जो वेदार्थ किये, वे वेद से अविरुद्ध थे, वेदांग आदि शास्त्रों से सम्पोषित थे। इन ऋषियों के **पश्चात् मध्यकाल में अनेक वेदभाष्यकार हुये हैं।** मध्यकालीन वेदभाष्यकारों में प्रमुख **सायणाचार्य, उवट, महीधर** आदि थे। **इन वेदभाष्यकारों ने ऋषि, मुनियों का अनुकरण नहीं किया।**

इन्होंने वेदार्थ की **आध्यात्मिक, आधिदैविक, अधियज्ञ** प्रक्रियाओं को जानते हुये भी वेदों में **अनित्य इतिहास** माना, **ईश्वर के निराकार स्वरूप को ज्ञातकर भी प्रस्तर** प्रतिमा **पूजन का प्रतिपादन किया, अग्नि, इन्द्र आदि शब्दों को रूढ़ि मानकर उन्हें तत् तत्** विशेष **आकार वाले अधिष्ठात्री देवता माना,** मन्त्रों के अर्थों में **अधियज्ञ प्रक्रिया को प्रामुख्येन** स्थापित किया। मन्त्रों की यज्ञपरक संगति न लगते हुये भी **अश्लील व्याख्यायें की।** यज्ञों में **पशुबलि** आदि समर्थक अर्थ किये। एतादृश अनेक दोषयुक्त मध्यकालीन भाष्यकारों ने **वेद के भाष्य किये।**

महर्षि दयानन्द की वेदार्थ पद्धति के आधार सिद्धान्त-

महर्षि दयानन्द की वेदभाष्य पद्धति के अनेक शाश्वत आधार हैं। उन आधारों में कुछ अति महत्त्वपूर्ण हैं।**१. व्याकरण के नियम, २.यास्कीय निर्वचन, ३.वेद ईश्वर प्रदत्त है, ४.वेद के प्रति मन्त्र में ईश्वर का विषय है। ५.वेदों के ज्ञान, कर्म, उपासना, विज्ञान अपने अपने प्रमुख विषय हैं, गौण विषय अनेक हैं। ६.वेदों के सभी शब्द यौगिक हैं। ७.वेद अनित्य इतिहास के प्रतिपादन से रहित हैं, ८.वेद सभी के लिये हैं।** ये महर्षि के वेदभाष्य के प्रमुख दृढ़तम आधार हैं।

वेदार्थ पद्धति के उदाहरण

उदाहरणतः यजुर्वेद का मन्त्र है–

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभिस्त्रवन्तु नः॥

यजु. ३६.१२

इस मन्त्र का **विनियोग महर्षि दयानन्द** ने **सन्ध्या के आचमन** करने में किया है। महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या **यजुर्वेद के ३६ वें** अध्याय में तथा **पञ्चमहायज्ञविधि** में की है। यास्क के निर्वचन, वेद के सभी शब्द यौगिक हैं आदि उपर्युक्त आधारों पर मन्त्र में आये आपः शब्द का महर्षि ने **आपः जलानि,** वेदभाष्य यजु. ३६.२ इस जल अर्थ के साथ **पञ्चमहायज्ञविधि** में **आपः** शब्द का **ईश्वर** अर्थ भी किया है–

आपः सर्वप्रकाशकस्सर्वानन्दप्रदस्सर्वव्यापक ईश्वरः।
-पञ्चमहा. पृ. ४

महर्षि ने **आपः** शब्द **ईश्वर** अर्थ का भी ग्राहक है, इसके प्रामाण्य में **आपो ब्रह्म जना विदुः**, अथर्व. १०.७.१० अथर्ववेद का मन्त्र दिया है। **आपः**

शब्द का **आप्लृ व्याप्तौ, अप्** शब्द का **ईश्वर** अर्थ **वेदों के शब्द यौगिक हैं,** यह मानने पर ही सम्भव है। **पुरुषसूक्त** का १५वाँ मन्त्र है–

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्॥

यजु. ३१.१५

मन्त्र में आये **पशुम्** पद का महर्षि दयानन्द ने **सर्वद्रष्टा ईश्वर** अर्थ किया है। यथा–

पशुम्= सर्वद्रष्टारं सर्वैः पूजनीयं देवा विद्वांसः, अबध्नन्= ध्यानेन बध्नन्ति। तं विहाये वरत्वेन कस्यापि ध्यानं नैव बध्नन्ति, नैव कुर्वन्तीत्यर्थः।

ऋ.भा.भू.सृष्टिविद्या.,पृ. १३६

अर्थात् सबके देखने वाले, सबके द्वारा पूजनीय को विद्वान् ध्यान के द्वारा बांधते हैं। उसको छोड़कर ईश्वररूप में किसी को ध्यान के द्वारा नहीं बांधते, ध्यान नहीं करते।

वेद में पशुहिंसा, पशुबलि मानने वाले भाष्यकार **उवट** ने **पशुम्** शब्द का **लौकिक पशु** अर्थ ही माना है, एवं वैसा ही अर्थ किया है।

यज्ञं पुरुषमेधाख्यं विस्तारयन्तः पुरुषं पशुम्, अबध्नन्= हतवन्तः। उवटभाष्य, यजु. ३१.१५

उवट ने इस प्रकरण में पशुबलि को विज्ञापित करते हुये **पशुम्** शब्द का लौकिक **पशु** अर्थ कर **अबध्नन्** का **मारा** अर्थ किया। ऋग्वेदीय मन्त्र है–

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः सः सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

ऋ. १.१६४.४६

इस मन्त्र में **अग्निम्** पद दो बार आया है। महर्षि दयानन्द ने **अग्नि** पद का **अग्निम्= सर्वव्याप्तं विद्युदादिलक्षणम्**= सर्वव्याप्त विद्युदादि लक्षणयुक्त अग्नि को, **सत्**= विद्यमान परब्रह्म परमेश्वर को, **अग्निम्**= सर्वव्याप्त परमात्मारूप, **आहुः**= कहते हैं, यह अर्थ किया है।

महर्षि दयानन्द ने यह अर्थ निरुक्त के आधार पर किया है[१४]। **अग्नि** पद को **विशेष्य** माना है, इन्द्र आदि पदों को **विशेषण** माना है। क्योंकि जो **विशेष्य** होता है, उसका पुनः पुनः उच्चारण होता है, विशेषण का मात्र एक बार।

अग्नि शब्द **ईश्वर** का भी वाचक है, यह महर्षि दयानन्द ने **अग्निमीळे०** ऋ. १.१.१ में **तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः,** यजु. ३२.१ मन्त्र द्वारा भली भांति प्रतिपादित कर दिया है।

सायणाचार्य ने इस मन्त्र में **इन्द्र** शब्द को **विशेष्य** रूप में गृहीत किया है और **अग्नि, मित्र** आदि को विशेषण रूप में माना है। सायणाचार्य ने विशेष्य, विशेषण की व्यवस्था को न जानते हुये विशेष्य, विशेषण विपरीत माने हैं। यहाँ **ऋषि दयानन्द सायणाचार्य का दोष** दर्शाते हुये **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** में लिखते हैं– **तत्र विशेष्यस्य पुनः पुनरुच्चारणं भवति, विशेषणस्यैकवारमेवेति। तथैवात्र मन्त्रे परमेश्वरेणाऽग्निशब्दो द्विरुच्चारितो विशेष्यविशेषणाऽभिप्रायत्वात्। इदं सायणाचार्येण नैव बुद्धमतस्तस्य भ्रान्तिरेव जातेति वेद्यम्॥** ऋ.भा.भू.भाष्यक., पृ. ३५३

आगे महर्षि दयानन्द लिखते हैं–

कोई कहे कि सायणाचार्य ने तत् तत् स्थानों में **इन्द्रादि** का आह्वान किया है, वहाँ भी परमेश्वर का ही **इन्द्रादि रूप** से **अवस्थान होने** से कोई विरोध नहीं है, अतः कोई दोष नहीं है। यहाँ हमारा कहना है यदि **इन्द्रादि** नामों से तत् तत् स्थानों में परमेश्वर ही कहा जा रहा है तो **परमेश्वर की इन्द्रादि रूप से अवस्थिति** मानना अनुचित है, जैसाकि **अज एकपात्०, स पर्य्यगाच्छुक्रमकाय०** इत्यादि मन्त्रार्थों से परमेश्वर के **जन्म, रूप, शरीरधारण** आदि का निषेध किया गया है, अतः परमेश्वर के लिये **इन्द्रादिरूप कथन मिथ्या है।**[१५] **महर्षि दयानन्द के कथन का तात्पर्य है कि सायणाचार्य आदि ने इन्द्र आदि के शरीर का मानवीय शरीर की भांति कथन किया है अतः इन्द्र आदि परमेश्वर के वाचक नहीं हो सकते।**

एतादृश **सायणाचार्य** की अनेक **भ्रान्तियाँ**=

दोष **महर्षि दयानन्द** ने **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** व **वेदभाष्य** में निर्दिष्ट किये हैं।

महर्षि दयानन्द ने वेदों में **अनित्य इतिहास नहीं माना** है, किन्तु **सायण, महीधर** आदि ने वेदों में जहाँ भी लोक प्रसिद्ध जो भी शब्द देखे, बस **लौकिक इतिहास** खड़ा कर दिया। उदाहरणतः मन्त्र है–

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्॥

–यजु. ३.६२

इस मन्त्र में **जमदग्नेः** पद आया है। लोक में **अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज** ये ७ ऋषि प्रसिद्ध हैं। ये शब्द लौकिक ऋषियों के वाचक तो हैं ही, पर ये **ईश्वर, रसना, चक्षुरादि** इन्द्रियों एवं **आधिदैविक पदार्थों के भी वाचक हैं।** वेद में **ईश्वर, इन्द्रियों** आदि के वाचक ही **जमदग्नि** आदि शब्द होते हैं, लौकिक मनुष्य आदि के नहीं। **क्योंकि वेद सार्वकालिक ज्ञान है, मात्र वर्त्तमानकालिक नहीं,** अतः व्यक्तिविशेष का सम्बन्ध नहीं लग सकता। **त्र्यायुषं जमदग्नेः** मन्त्र का अर्थ करते हुये **महीधर** ने **लौकिक मुनि** का ही सम्बन्ध लगा दिया।[१६]

महर्षि दयानन्द वेदाङ्गवित् हैं अतः उन्होंने इस मन्त्र के शतपथ ब्राह्मण, निरुक्त आदि के आधार से जमदग्नि एवं कश्यप शब्द के चक्षु, परमेश्वर, प्राण आदि अर्थ किये। यथा–

जमदग्नेः=चक्षुषः चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिर्यदनेन जगत्पश्यत्यथो मनुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्ऋषिः॥

–शत. ब्रा. ८.१.२.३

जमदग्नयः प्रजमिताग्नयो वा प्रज्वलिताग्नयो वा तैरभिहुतो भवति। निरु. ७.७.२४, अनेनापि प्रमाणेन रूपगुणग्राहकं चक्षुर्गृह्यते।

कश्यपस्य आदित्येश्वरस्य। प्रजापतिः प्रजा असृजत यदसृजताकरोत्तद्यदकरोत् तस्मात् कूर्म्मः। कश्यपो वै कूर्म्मस्तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्य इति॥ शत.ब्रा. ७.५.१.५, अनेन प्रमाणेन ईश्वरस्य **कश्यप** संज्ञा। –दया.भा. यजु. ३.६२

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इस मन्त्र का अर्थ करते हुये **महर्षि दयानन्द** ने **जमदग्नि** का अर्थ **चक्षु** और **कश्यप** का अर्थ प्राण किया है। यथा–

कश्यपो वै कूर्म्मः, प्राणो वै कूर्म्मः।

–शत.ब्रा. ७.५.१.५,७

अनेन प्राणस्य कूर्म्मः कश्यपस्य संज्ञास्ति। शरीरस्य नाभौ तस्य कूर्म्माकारावस्थितेः।

–ऋ.भा.भू. वेदसंज्ञा., पृ. ८६

वेदभाष्य में इस मन्त्र का भावार्थ करते हुये लिखते हैं–

इस मन्त्र में **चक्षु** सब इन्द्रियों में और **कश्यप**=ईश्वर सब रचना करने वालों में उत्तम है, यह जानना चाहिये। **त्र्यायुषम्** इस पद की ४ बार आवृत्ति होने से तिगुनी=३०० वर्ष से अधिक, चौगुनी=४०० वर्ष पर्यन्त आयु का ग्रहण किया गया है। इसकी प्राप्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करके अपना पुरुषार्थ भी करना चाहिये।

प्रार्थना कैसी करें? इसका निर्देश करते हुये लिखा–

हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से जैसे विद्वान् विद्या, परोपकार, धर्मानुष्ठान करके आनन्दपूर्वक ३०० वर्ष पर्यन्त आयु को भोगते हैं, वैसे ही ३ प्रकार के तापों से भिन्न शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त अहंकाररूप अन्तःकरण, व **प्राण** आदि को सुख देने वाले विद्या, विज्ञान सहित जो आयु है, उसे हम सब प्राप्त कर ३०० व ४०० वर्ष की आयु को सुख से भोगें।[१७]

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में **चक्षु** आदि इन्द्रियों व **प्राण** की ३०० व ४०० वर्ष की प्रार्थना **महर्षि दयानन्द** ने निर्दिष्ट की है।

सायणाचार्य, उवट, महीधर आदि ने एतादृश लौकिक इतिहास वाले अर्थ अनेकत्र निर्दिष्ट किये हैं, जो दोषपूर्ण हैं, यह कहा जा सकता है।

महर्षि दयानन्द की वेदभाष्य पद्धति विषयक विचार प्रसंग में **महर्षि की अनेक विशेषतायें** व **वेद रहस्य** प्रस्तुत हो सकते हैं, जो **सायण**[१८], **उवट**[१९], **महीधर**[२०], आदि के भाष्यों को **तृणं मन्ये** की कोटि में स्थापित करते हैं। वेदभाष्यकरण पद्धति के प्रसंग में **सायण, उवट, महीधर** आदि द्वारा किये **अश्लील अर्थों** को उदाहरणतः देना लज्जास्पद ही कार्य होगा।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द सरस्वती की वेदार्थ पद्धति से स्पष्ट है कि **महर्षि दयानन्द** ने **पूर्वज ऋषियों, शतपथ ब्राह्मण आदि के वेदानुकूल वचनों, निरुक्त, वेदाङ्ग, उपाङ्ग** ने **प्रमाणों के प्रतिपादन के अनुकूल ही वेदभाष्य किया है, कोई नई पद्धति स्थापित नहीं की है। ऊह द्वारा वेद के वैशिष्ट्य को उद्घाटित किया है, वेदज्ञान को व्यवहारोपयोगी बनाया है।**

-:- सन्दर्भ सूची -:-

१. पुरुषविद्याऽनित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे। –निरु. १.१.२

२. न त्रिभिरपौरुषेयत्वाद् वेदस्य, तदर्थस्यातीन्द्रियत्वात्।– सांख्य. ५.४१

३. स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
यो अर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।।–निरु. १.६.१७

४. पुनस्तत्कथनेनानृषिकृतग्रन्थवत्। –ऋ.भा.भू.प्रतिज्ञा., पृ. ३७१

५. ऋग्वेद का म. ७.६१.२ मन्त्र तक भाष्य किया है।

६. यजुर्वेद में ४० अध्याय हैं, सम्पूर्ण वेद पर भाष्य किया है।

७. पद गतौ, दिवादिः, चुरादिः। हन हिंसागत्योः, अदादिः। पाद को पद् भाव, हिमकाषिहतिषु च।। –अष्टा. ६.३.५३

८. अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्तों के माने हुये ईश्वरादि पदार्थ हैं, जिनको कि मैं भी मानता हूँ। सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ।..... ।मेरा कोई नवीन कल्पना व मत मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना, मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़ावाना मुझको अभीष्ट है। – सत्या. स्वमन्तव्या., पृ. ५५६

९. अथ निरुक्तकारः संक्षेपतो वैदिकशब्दानां विशेषनियमानाह – तास्त्रिविधा ऋचः परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृता आध्यात्मिक्यश्च।..... । इमं नियममबुद्ध्वा वेदभाष्यकारैः सायणाचार्यादिभिः ..... मनुष्यैः वेदेषु जडपदार्थानां पूजास्तीति वेदार्थोऽन्यथैव वर्णितः। – ऋ.भा.भू. अथ वैदिक., पृ. ३८३

१०. अथ वेदार्थोपयोगितया संक्षेपतः स्वराणां व्यवस्था लिख्यते।
–ऋ.भा.भू. अथ सं.,स्वर., पृ. ३८५

११. अथात्र चतुर्षु वेदेषु व्याकरणस्य ये सामान्यतो नियमाः सन्ति, त इदानीं प्रदर्श्यन्ते। –ऋ.भा.भू. अथ व्या., नि., पृ. ३८७

१२. अथालंकारभेदाः संक्षेपतो लिख्यन्ते। –ऋ.भा.भू.अथालंकार., पृ. ४०४

१३. अथ वेदभाष्ये ये संकेताः करिष्यन्ते, त इदानीं प्रदर्श्यन्ते।
–ऋ.भा.भू.अथग्रन्थ., पृ. ४०७

१४. इममेवाग्निं महान्तमात्मानमेकमात्मानं बहुधा मेधाविनो वदन्ति, इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निं दिव्यं च गरुत्मान्।। –निरु. ७.४.१८

१५. कोऽपि ब्रूयात्–सायणाचार्येण यद्यपीन्द्रादयस्तत्र तत्र हूयन्ते, तथापि परमेश्वरस्यैवेन्द्रादिरूपेणावस्थानादविरोधः, इत्युक्त्वादोष इति।

एवं प्राप्ते ब्रूमः– यदीन्द्रादिभिर्नामभिः परमेश्वर एवोच्यते, तर्हि परमेश्वरस्येन्द्रादिरूपावस्थितिरनुचिता। तद्यथा– अज एकपात्, स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमित्यादिमन्त्रार्थेन परमेश्वरस्य जन्मरूपवत्त्वशरीर–धारणादिनिषेधात्तत्कथनमसदस्ति।। –ऋ.भा.भू.भाष्यक., पृ. ३५३

१६. जमदग्नेः मुनेर्यत्र्यायुषं त्रयाणां बाल्ययौवनस्थाविराणामायुषां समाहारस्त्र्यायुषं तथा कश्यपस्यैतन्नामकस्य प्रजापतेः सम्बन्धि यत्त्र्यायुषं तथा देवेषु इन्द्रादिषु यत्त्र्यायुषमस्ति तत्सर्वं त्र्यायुषं नोऽस्माकं यजमानानामस्तु। जमदग्न्यादीनां बाल्यादिषु यादृशं चरितं तादृशं नो भूयादित्यर्थः।। –महीधर भाष्य यजु. ३.६२

१७. अत्र चक्षुरिन्द्रियाणां कश्यपः ईश्वरः स्रष्टृणामुत्तमोऽस्ति विज्ञेयम्। त्र्यायुषमित्यस्य चतुरावृत्त्या त्रिगुणाधिकं चतुर्गुणमप्यायुः संगृह्यैतत्प्राप्त्यर्थं जगदीश्वरं प्रार्थ्य स्वेन पुरुषार्थश्च कर्त्तव्यः। तद्यथा– हे जगदीश्वर! भवत्कृपया यथा विद्वांसो विद्यापरोपकारधर्मानुष्ठानेनानन्दतया त्रीणि शतानि वर्षाणि यावत्तावदायुर्भुञ्जते, तथैव यत्त्रिविधतापव्यतिरिक्तं शरीरेन्द्रियान्तः–करणप्राणसुखाढ्यं विद्याविज्ञानसहितमायुरस्ति तद्वयं प्राप्य त्रिशतवर्षं चतुःशतवर्षं वाऽऽयुः सुखेन भुञ्जीमहीति।। –दया.भा. यजु. ३.६२

१८. उपोपमे. सायण भा. ऋ. १.१२६.७

१९. गणानां त्वा. यजु. २३.१६,२०, आदयः।

२०. गणानां त्वा. यजु. २३.१६–२१, आदयः।

- प्राचार्या
आर्य कन्या गुरुकुल, शिवगंज सिरोही
(राजस्थान)-३०७०२७
दूरभाष- ९६८०६७४७८९

वैदिक साहित्य में वर्णित स्त्री विमर्श और स्वामी दयानन्द

❑ डॉ. रवीन्द्र कुमार...✍

वेद ईश्वर द्वारा प्रदत्त स्वप्रमाणित ज्ञान हैं यह ईश्वर की आज्ञा भी है। यह आज्ञा भी है कि वेदों की रचना मुख्यतः अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा ऋषियों ने की। सृष्टि के अस्तित्व में आने के साथ जीवन प्रारम्भ होता है। वेदों की प्राचीनता को सम्पूर्ण विश्व एक मत से स्वीकार करता है।

सृष्टि के प्रारम्भ से महाभारत युद्ध के एक सहस्र वर्ष पूर्व तक तथा कुछ अंशों में महाभारत युद्ध तक वैदिक संस्कृति गतिमान मानी जाती है। इस कारण से सृष्टि प्रारंभ से महाभारत तक वेदों के अतिरिक्त जो भी ग्रन्थ ऋषियों के द्वारा लिखे गए हैं, वे सभी वैदिक कालीन कहे जा सकते हैं। यथा - वेदांग, उपनिषद्, दर्शन, ब्राह्मण आदि ये सब वेदों पर अनुसंधानात्मक ग्रन्थ हैं।

इस पूरे काल में जो भी स्त्री-विमर्श हुआ वह अत्यन्त ऊर्जावान् था। सम्पूर्ण साहित्य स्त्री के सम्मान एवं गुणों की व्याख्या करता हुआ उसे गौरवान्वित प्रशस्ति प्रदान करता है। वेदों में नारी के शील, गुण, कर्त्तव्य और अधिकारों का विशद् वर्णन हैं। ऐसा उदात्त चित्रण संसार के किसी अन्य धर्मग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता है।

वेदों में नारी का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। पुरुष और नारी समाजरूप और राष्ट्ररूप रथ के दो चक्र हैं। जैसे एक चक्र से रथ नहीं चल सकता वैसे ही अकेले पुरुष या अकेली नारी से समाज और राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता है। प्रत्येक क्षेत्र में एक ईकाई दूसरी ईकाई की पूरक होती है। वैदिक साहित्य में पत्नी ही घर का आधार थी। घर की सुरक्षा, व्यवस्था, संचालन, निरीक्षण और समुन्नयन का पूर्ण उत्तरदायित्व पत्नी पर होता था। 'पत्नी ही घर है' ऋग्वेद 3/53/4 पत्नी के कर्तव्य व महत्व दोनों मुख्य थे। वह परिवार की समृद्धि का आधार, सुख की मूल, सन्तानोत्पत्ति का आधार थी। सुशील स्त्रियाँ पति को प्रिय होती थीं। वेद में उसे पति के समकक्ष रखा गया है। जैसे पत्नी के लिए पति आदर और स्नेह के योग्य है, वैसे ही पत्नी भी पति के लिए सम्मान और स्नेह की पात्र है। वेद में पति-पत्नी दोनों को दम्पती अर्थात् घर के स्वामी कह कर पुकारा है। 'वैदिक इण्डैक्स' के लेखक मैकडॉनल और कीथ 'दम्पती' शब्द के विवरण में लिखते हैं कि द्विवचनान्त रूप में पति-पत्नी दोनों के लिए 'दम्पती' शब्द का प्रयोग यह सूचित करता है कि वेद में पत्नी को बहुत उच्च स्थान प्राप्त था।

स्वामी दयानन्द ने वेद के अनुसार प्रतिपादित किया है कि वधू पति-गृह में दासी बनकर नहीं, प्रत्युत सम्राज्ञी बनकर आती के है।[१] वह केवल पति की दृष्टि में ही नहीं, अपितु सास, श्वसुर, देवर, ननद सबकी दृष्टि में सम्राज्ञी होती है।[२] पति उसके सम्पूर्ण दायित्व का निर्वाह करता है और कहता है कि 'तुम मेरे साथ रहती हुई संतान और धन किसी भी दृष्टि से कष्ट अनुभव नहीं करोगी।'[३] तुम गृहाश्रम को पूर्ण बनाना, इसमें पैदा होने वाले मानसिक छिद्रों को भरना और अविचल होकर रहना। मैं तुम्हें हृदय में रखने के लिए ग्रहण करता हूँ।[४] पत्नी को वह सत्य की विधात्री मानता है।[५] वह कामना करता है कि सब देव हम दोनों को एक कर दें। हम दोनों

के हृदय ऐसे एक हो जाएँ जैसे पानी में पानी मिलकर पानी एक हो जाता है।[६] इस प्रकार पति के घर में आने पर वह वधू प्रत्येक सदस्य के द्वारा अपने गुणों एवं कर्मों से उच्च स्थान प्राप्त करती थी।[७]

स्त्री का सामाजिक स्तर भी अत्यधिक ऊँचा था। वह "मङ्गलमयी और सुखमयी होती हुई पति गृह में विशेष शोभा को प्राप्त करती थी।[८] सारा समाज उसे यशोमयी, कर्मण्य और सत्यं शिवं सुन्दरम् का आदर्श मानता था।[९] वैदिक साहित्य में नारी की अन्य उक्तियाँ भी उसे दीन-हीन नहीं अपितु गृहाश्रम की पताका, गृहाश्रम-रूप शरीर का मस्तक[१०] और शत्रुओं से लोहा लेने वाली वीरांगना सिद्ध करती है।[११] वैदिक मंत्रों में अन्यत्र विश्लेषण करने पर वैदिक नारी अत्यन्त उज्ज्वल, प्रतापमयी, पति और सन्तानों के जीवन को ऊँचा उठाने वाली, सौहार्दमयी और यशोमयी के रूप में प्रकट होती है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने समाज में स्त्री के इस वैदिक स्वरूप को प्रकाशित करने के लिए सतत प्रयास किया है।[१२]

ध्यातव्य है कि वेदों में जो पृथिवी, उषा, नदी और गाय के वाची नाम हैं, वे प्रायः नारी के वाचक भी हैं। वे सब भी नारी की उच्चता और विविधतादि गुण-गरिमा पर प्रकाश डालते हैं, यथा- 'पृथिवीवाची'[१३] नामों में गौ, क्षमा, क्षिति, अवनि, उर्वी और मही शब्द नारी के भी वाचक होते हुए क्रमशः नारी की गमनशीलता, कर्मण्यता, क्षमाशीलता, निवासक शक्ति, रक्षक शक्ति, विशालता और पूज्यता को सूचित करते हैं। 'उषावाची'[१४] नामों में विभावरी, सूनरी, चित्रामघा, अर्जुनी, वाजिनी और सूनृता नारी के भी वाचक होते हुए क्रमशः उसकी ज्ञानज्योतिर्मय, शुभ नेतृत्व क्षमता, अद्भुत ऐश्वर्यशालिता, सत्वगुणप्रधानता, बलवत्ता, सुखदायकता और सत्यमधुरभाषिता को व्यक्त करते हैं। 'नदीवाची'[१५] नामों में स्रोत्या, एनी, धुनि, रुजाना, सरित्, हरित्, अयु, हिरण्यवर्णा, पयस्वती, सरस्वती, तरस्वती और माता नाम नारी के भी वाचक होते हुए क्रमशः उसकी कुलीन स्रोत से उत्पत्ति, गतिमयता, शत्रुप्रकम्पकता, विघ्न, भञ्जकता, निरन्तर प्रवहमानता, दोषहरणशीलता, अग्रगामिता, ज्योतिर्मयता, प्रशस्त-दुग्ध ता, विविध विद्यारसमयता, वेगशालिता तथा मातृत्वमहिमा को सूचित करते हैं। 'गायवाची'[१६] नामों में अघ्न्या, उसिता, मही, अदिति, इड़ा, जगती और शक्वरी शब्द नारी के भी वाचक होते हुए उसकी अहन्तव्यता (अपीडनीयता), ऐश्वर्य प्रवाहकता, पूज्यता, अपराजेयता, सम्मानार्हता, स्तोतव्यता, जङ्गमशीलता और सामर्थ्यशालिता को द्योतित करते हैं।

यहाँ पर स्त्री की स्थिति अत्यन्त यशस्वी और गरिमामयी है। कुछ आलोचकों का कथन है कि वेदों में नारी को हीन दृष्टि से देखा गया है इसकी पुष्टी में वे एक तर्क यह प्रस्तुत करते हैं कि वेदों में सर्वत्र पुत्र ही माँगे गये हैं। पुत्रियों की कामना कहीं दिखाई नहीं देती है। वस्तुतः यह स्थापना सही नहीं है। हमें इस तथ्य की ओर ध्यान देना आवश्यक हैं कि वैदिक कोश निघण्टु के अनुसार अपत्यवाची पन्द्रह शब्द इस प्रकार है-

तुक। तोकम्। तनयः। तोक्म। तक्म। शेषः। अप्नम्। गयः। जाः। अपत्यम्। चहुः। सूनुः। नपात्। प्रजा। बीजम्। इति पंचदश अपत्यनामानि।[१७]

यह व्याकरण की भाषा है। किसी भी साहित्य को समझने के लिए उसके व्याकरण को समझना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु वेद परिशुद्ध संस्कृत में हैं। अतः यहाँ पर समझ की आवश्यकता अधिक है। जहाँ शुद्धता शुचिता अधिक हो वहाँ पर समझ की भी अत्यधिक व्यापकता होना चाहिए। अतः अपत्य का अर्थ सन्तान होता है जिसमें पुत्र और पुत्री दोनों सम्मिलित है। इससे स्पष्ट है कि उपर्युक्त शब्दों से जहाँ सन्तान प्राप्ति की प्रार्थना वेदों में मिलती हैं। वह पुत्र और पुत्री दोनों के लिए है। यह भी द्रष्टव्य है कि सन्तान की सर्वाधिक वैदिक प्रार्थनाएँ 'प्रजा' शब्द से

हैं और प्रजा से पुत्र-पुत्री दोनों का ग्रहण होता है। निघण्टु का प्रमाण हमारे सम्मुख न भी होता तो भी 'प्रजा' से केवल पुत्र का अर्थ कोई गृहीत नहीं करता। वेदों में प्रजा की कई प्रार्थनाएँ हैं।

'सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा'[१८] **'ज्योग् जीवन्त प्रजया सचेमहि'**[१९] **'प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः'**[२०] **'आप्यायमानाः प्रजया धनेन'**[२१] **'इह प्रियं प्रजया ते समृध्यताम्'**[२२] **'आ न प्रजां जनयतु प्रजापतिः'**[२३] **'मा हास्महि प्रजया मा तनूभिः'**[२४] **'रु समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया'**[25] **'सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम्'**[२६] **'प्रजया च बहुं कृधि'**[२७] **'अग्निः प्रजां बहुलां मे करोतु'**[२८] **'प्रजां देवि दिदिहि नः'**[२९] **'मा व्ययिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च'**[३०] **'सूर्यामिव परिधत्तां प्रजया'**[३१] **'इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु'**[३२] **'इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै'**[३३] **'प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम्'**[३४] इसके अतिरिक्त वेदों में कई स्थलों पर स्पष्ट भी कन्या या पुत्री की कामना मिलती है, यथा- 'मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्' मेरे पुत्र शत्रुहन्ता हों और पुत्री भी विशेष तेजस्विनी हो।[३५] "यज्ञ करने वाले पति-पत्नी पुत्रों और कुमारियों वाले होते हैं।[३६] प्रति प्रहर हमारी रक्षा करने वाला पूषा परमेश्वर हमें कन्याओं का भागी बनाए अर्थात् कन्याएँ प्रदान करे।[३७] यजुर्वेद की सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय प्रार्थना में जहाँ यह इच्छा व्यक्त की गई है कि हमारे राष्ट्र में विजयशील, सभ्य, वीर युवक पैदा हो, वहाँ साथ ही बुद्धिमती नारियों के उत्पन्न होने की भी प्रार्थना है।[३८]

कन्या जन्म वेद को अवाञ्छित है? इस पक्ष में अथर्ववेद के दो स्थल प्रायः उद्धृत किये जाते हैं पहला हैं-स्त्री का जन्म कहीं अन्यत्र हो, इस गर्भ से तो पुरुष सन्तान ही हो।[३९] जिस सूक्त का यह मंत्र है उसमें कुल तीन मंत्र हैं। प्रकरण यह प्रतीत होता है कि किसी नारी के केवल कन्याएँ ही उत्पन्न होती हैं, उसकी चिकित्सा का इसमें वर्णन है। जिस शमी वृक्ष के ऊपर पीपल उग आया हो, उस पीपल की जड़, छाल, पत्र, फल आदि के समुचित प्रयोग से उस नारी का उक्त दोष दूर हो सकता है, इसका संकेत इस सूक्त में है। उक्त प्रयोग से यह नारी पुत्र को प्रसव करे, कन्या जन्म अन्यत्र वहाँ हो जो कन्या को चाहते हैं। यह उद्धत पंक्ति का तात्पर्य निकलता है। इससे कन्या की अवाञ्छनीयता सिद्ध नहीं होती। दूसरा है- पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन् सायणादि इसका अर्थ यह करता है कि हे पति! उत्पन्न होने वाले पुत्र की रक्षा करो, उसे स्त्री न बनाओ। वस्तुतः यह मन्त्र गर्भरक्षा के प्रकरण का है। 'पिङ्ग' पति के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है, किन्तु ओषधि-विशेष है। सायण के अनुसार यह 'श्वेत सरसों' है। पिङ्ग ओषधि के प्रयोग से गर्भपिण्ड के भक्षक रोग-कृमियों को नष्ट किया जा सकता है, यह मंत्र में वर्णित किया गया है। पूरा मंत्र और उसका अर्थ इस प्रकार है-

पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन्।
आण्डादो गर्भान् मा दभन् बाधस्वेतः किमीदिनः॥[४०]

हे पिङ्ग ओषधि! तू उत्पन्न होने वाले शिशु की रक्षा कर। गर्भाण्ड को खा जाने वाले रोग- कृमि गर्भ में चाहे पुत्र हो, चाहे कन्या हो, उसे पीड़ित न कर सकें। वे गर्भों को नष्ट न कर पाएँ। यहाँ से गर्भाशय से गर्भ-भक्षक रोग-कृमि-रूप राक्षसों को दूर कर।[४१]

सायण का भी पहला अर्थ यही है। इस सही अर्थ को देकर फिर वैकल्पिक रूप में दूसरा अशुद्ध अर्थ देने की न जाने क्यों उसने आवश्यकता समझी। 'मा पुमांसं स्त्रियं क्रन्' का गर्भस्थ पुरुष को स्त्री मत बना देना, यह अर्थ संगत भी नहीं है क्योंकि गर्भ में यदि वस्तुतः पुत्र हैं, तो उसे कन्या भला कौन बना सकता है? अगले मंत्र में नारी गर्भाशय के दोष बताये गये हैं। 'अप्रजास्त्वं' अर्थात् गर्भस्थित न होने के कारण सन्तान न होना अथवा मृत सन्तान होना। ये

दोष उचित चिकित्सा से पिङ्ग ओषधि द्वारा दूर किए जा सकते हैं, यह तात्पर्य हैं।

वेदों में नारी की स्थिति हीन सिद्ध करने के लिए अन्य पक्षों की ओर से ऋग्वेद के दो मंत्रों का प्रायः उदाहरण दिया जाता है पहला-

इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत् स्त्रिया अशास्यं मनः।
उतो अह क्रतुं रघुम॥[४२]

इस मन्त्र का उनकी ओर से यह अर्थ किया जाता है कि स्वयं इन्द्र ने कहा है कि स्त्री के मन पर शासन नहीं किया जा सकता और उसकी बुद्धि तुच्छ होती है। सायण को भी यह अर्थ अभिप्रेय प्रतीत होता है। पर खेद है कि मन्त्र का अर्थ सर्वथा विपरीत किया गया है। वास्तविक अर्थ तो यह है कि स्त्री के मन पर शासन या अंकुश नहीं रखा जाना चाहिए, पुरुष के समान उसे भी विचारों की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। उसके अन्दर भी जो वैचारिक शक्ति है, उसका परिवार, समाज और राष्ट्र को लाभ मिलना चाहिए। दूसरी बात मंत्र में यह कही गई है कि स्त्री का क्रतु 'रघु' होता है। क्रतु शब्द वैदिक कोश निघण्टु में कर्म और बुद्धि का वाचक है।[४३] रघु शब्द वेदों में कही भी तुच्छ के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है। भले ही लौकिक संस्कृत में इसका एक अर्थ छोटा या तुच्छ भी होता है। प्रस्तुत स्थल के अतिरिक्त वेदों में यह शब्द विभिन्न विभक्तियों में तथा समस्त रूप में अनेक बार आया है। वहाँ भी इसका अर्थ फुर्तीला, वेगवान् या क्रियाशील ही किया है। जब अन्य किसी स्थल में रघु का अर्थ तुच्छ नहीं है तो फिर नारी के प्रकरण में ही तुच्छ अर्थ किया जाना क्या वेद और नारी दोनों के प्रति अन्याय नहीं है? उतो अहं क्रतुं रघुम् का सही अर्थ यह होगा कि नारी का क्रतु, अर्थात् उसकी बुद्धि और क्रियाशीलता बहुत तीव्र होती है। इस प्रकार नारी की हीनता के लिए प्रस्तुत किया गया यह मंत्र वस्तुतः नारी की हीनता का द्योतक नहीं, प्रत्युत उसकी गरिमा का ही द्योतक है।

दूसरा स्थल जो नारी को वेद की दृष्टि में हीन सिद्ध करने के लिए प्रतिपक्ष की ओर से प्रस्तुत किया जाता है। वह इस प्रकार है- **न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता**[४४] अर्थात् स्त्रियों से मित्रता करना अच्छा नहीं होता, उनकी मित्रताएँ लक्कड़बग्घों के हृदय के समान क्रूर होती हैं। प्रथम दृष्टि में यह वाक्य स्त्री निन्दापरक ही प्रतीत होता है। यह मंत्र पुरुरवा उर्वशी संवाद का है। पुरुरवा अत्यधिक कामासक्त है। उसे सन्मार्ग पर लाने के लिए स्वयं उर्वशी की ओर से यह वचन कहा गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि स्त्रियों की बहुत अधिक कामासक्तियाँ ठीक नहीं होती, अन्ततः यह कामासक्तियाँ लक्कड़बग्घों के हृदय जैसी क्रूर और विघातक सिद्ध होती हैं। स्त्री स्वयं अपनी निन्दा भला क्यों करेगी? वेद की दृष्टि में तो न नारी निन्दनीय है, न पुरुष निन्दनीय है, नारी या पुरुष के अवगुण ही उन्हें निन्दनीय बनाते हैं। इसलिए वेद कहता है-

उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी।
अदेवत्रादराधसः॥
विया जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम्।
देवत्रा कृणुते मनः॥[४५]

अर्थात् जो देवज्ञ नहीं करता और विद्वानों की रक्षा नहीं करता और जो धनादि का दान नहीं करता या किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त नहीं करता, ऐसे पुरुष से तो एक स्त्री अधिक अच्छी हैं, जो प्रशंसनीय और उद्यमी होती है। जो आपत्तियों से प्रताड़ित को बचाती है, प्यासे को जानती हैं, धनादि की अभिलाषा को जानती है (और उसकी सहायता करती है।) तथा जो परमात्मदेव, पतिदेव, सास- श्वसुर आदि देव व अतिथि आदि देवों की सेवा में मन लगाती हैं।

उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः।
स वैरदेय इत् समः॥[४६]

अर्थात् इसके विपरीत निश्चय ही कोई

अप्रशंसित कृपण मनुष्य मैं पुरुष हूँ ऐसा कहता है, अर्थात् अपने पुरुष होने का अभिमान करता है, तो वह शत्रु के ही समान है।

उक्त वेदमन्त्रों के आधार पर यह सिद्ध है कि वैदिक संस्कृति में स्त्रियों का उच्च स्थान था। कतिपय बुद्धिजीवियों द्वारा स्त्रियों को अपमानित करने के लिए वेद के मन्त्रों का अनर्थ कर समाज के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद के मन्त्रों का वास्तविक अर्थ करने की पद्धति बताकर समाज का अत्यन्त उपकार किया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती का जितना उपकार हम स्वीकार करें वह कम ही है। स्वामी दयानन्द के आशय को पूर्ण रूप से जानने के लिए स्वामी दयानन्द के साहित्य को पढ़ना आवश्यक है। इस लेख के द्वारा स्त्रियों के प्रति स्वामी दयानन्द और वैदिक दृष्टिकोण को इंगित करने का प्रयास किया गया है।

सन्दर्भसूची :-

1. अथर्व. १४/१/४३
2. ऋग्वेद १०/८५/४६
३. अर्थव. १४/१/४६
४. यजु. ६/२५
५. ऋग्वेद १/८६/१०
६. ऋग्वेद १०/८५/४७
७. संस्कारविधि, गृहाश्रम प्रकरण
८. अथर्व १४/१/६४
९. ऋग्वेद १/७९/१
१०. ऋग्वेद १०/१५९/२
११. ऋग्वेद १०/१५९/५
१२. संस्कारविधि, गृहाश्रम प्रकरण
१३. निघण्टु १/१
१४. निघण्टु १/८
१५. निघण्टु १/१३
१६. निघण्टु २/११
१७. निघण्टु २/२
१८. ऋग्वेद १/२३/२४
१९. ऋग्वेद १/१३६/६
२०. ऋग्वेद २/३३/१
२१. ऋग्वेद १०/१८/२
२२. ऋग्वेद १०/८५/२७
23. ऋग्वेद १०/८५/४३
२४. ऋग्वेद १०/१२८/५
२५. यजुर्वेद ३/१९
२६. यजुर्वेद ३/३७
२७. यजुर्वेद १७/५०
२८. यजुर्वेद १९/४८
२९. यजुर्वेद ३४/१०
३०. अथर्व. १४/१/४८
३१. अथर्व. १४/१/५३
३२. अथर्व. १४/१/५४
३३. अथर्व. १४/२/३१
३४. अथर्व. १४/२/६४
३५. ऋग्वेद १०/१५९/३
३६. ऋग्वेद ८/३१/८
३७. ऋग्वेद ९/६७/१०
३८. यजु. २२/२२
३९. अथर्ववेद ६/११/३
४०. अथर्ववेद ८/६/२५
४१. अथर्ववेद ८/६/२५
४२. ऋग्वेद ८/३३/१७
४३. निघण्टु २/१, ३/९
४४. ऋग्वेद १०/९५/१५
४५. ऋग्वेद ५/६१/६ व ७
४६. ऋग्वेद ५/६१/८

सहयकाचार्य,
श्रीभगवानदास आदर्श संस्कृत महाविद्यालय,
हरिद्वार

संस्कृतभाषा के पठन-पाठन में महर्षि दयानन्द की भूमिका

❑ डॉ. अभिमन्यु...✍

स्वामी दयानन्द इस युग के एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने भारतीय समाज के उत्थान और पतन को पहचाना तथा उत्थान के उपायों और पतन के कारणों पर विचार किया और उनको दूर करने का यथासामर्थ्य पूर्ण प्रयत्न किया। स्वामी जी ने समाज का पथ श्रेष्ठ दिशा में प्रदर्शित करने के साथ-साथ भद्र-मार्ग को खोजने और पहचानने की योग्यता भी प्रदान किया। उन्होंने अपने समय में व्याप्त अशिक्षा, दुर्दशा, गरीबी, निष्क्रियता, पाखण्ड और आत्महीनता के कारणों को भलींभाति पहचाना तथा भारतीय समाज को सचेत किया कि-अंग्रेजों के जिस ज्ञान विज्ञान से हम चमत्कृत हो रहे हैं, वह केवल पश्चिमी सभ्यता की देन है, ऐसा नहीं है। जिस ज्ञान-विज्ञान को हमारे ऋषि, महर्षि, विद्वान् मनीषी और पूर्वजों ने हजारों वर्षों में विकसित और प्रसारित किया था, उनमें से पराधीनता के काल में यद्यपि अधिकांश नष्ट हो गया है, पुनरपि जो भी अंश अवशिष्ट है, वह अपने विकास, उत्कर्ष और आत्म गौरव के लिए कम नहीं है। आवश्यकता इस बात की है, कि इस ज्ञान-विज्ञान को जानने और समझने के लिए तथा अपने खोए हुए आत्मगौरव और स्वाभिमान को प्राप्त करने के लिये हमें संस्कृत भाषा का अध्ययन अनिवार्य रूप से करना होगा।

संस्कृत वस्तुतः भारत का प्राण है। इसलिए यह सहज ही एक जनश्रुति के रूप में प्रचलित है कि-**संस्कृतमेव ही भारतम्**-कि संस्कृत ही भारत है। संस्कृत के ज्ञान के बिना भारत और भारतीयता को समझना सम्भव ही नहीं है । मानव मात्र की उदात्ततम संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए संस्कृत के ग्रन्थों का आश्रय लेना परमावश्यक है, क्योंकि-**संस्कृतिः संस्कृताश्रिता। भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतम् संस्कृतिस्तथा।**

अपने जीवनकाल में स्वामी दयानन्द ने संस्कृत भाषा के प्रचार एवं प्रसार के लिए अथक प्रयत्न किये। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि जब तक आबाल वृद्ध वनिता संस्कृतज्ञ बन कर अपनी सांस्कृतिक निधि की रक्षा नहीं करेंगे तब तक देश का लुप्त गौरव पुनः नही आ सकेगा।

दण्डी विरजानन्द की पाठशाला से अध्ययन समाप्त कर जब स्वामी दयानन्द कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण हुए तो उन्होंने सर्वप्रथम गंगा के तटवर्ती प्रदेश में भ्रमण करने का कार्यक्रम बनाया। इससे पूर्व वे हरिद्वार में कुम्भ के अवसर पर पाखण्ड-खण्डिनी पताका खड़ी कर देशवासियों में व्याप्त साम्प्रदायिक दुराग्रह और मिथ्या विश्वासों के मूलोच्छेद की प्रतिज्ञा कर चुके थे। इन दिनों उनका सम्पूर्ण सम्भाषण संस्कृत के माध्यम से ही होता था। प्रारम्भ में वे सरल संस्कृत में बोलते थे। इसक कारण उन्हीं के शब्दों में यह था-

"भारत में द्राविड प्रभृति अनेक भाषायों बोली जाती हैं तब मैं किस भाषा में बोलूँ। संस्कृत सारे हिन्दुओं की भाषा है और समस्त भाषाओं का मूल है। अतः संस्कृत बोलना उचित है।"[१]

गंगातीर पर भ्रमण करते समय संस्कृत में ही बोलने की वे प्रतिज्ञा कर चुके थे।[२] लोगों का यह कहना कि उनकी संस्कृत भाषा इतनी सरल होती है

कि सामान्य पठित व्यक्ति को भी उसे समझने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती, यथार्थ ही था। पारस्परिक वार्तालाप के प्रसंग में स्वामीजी अपने भक्तों को संस्कृत पढ़ने की प्रेरणा करते थे। उनकी ऐसी ही प्रेरणा से अनुप्राणित होकर आगरा निवासी पं० सुन्दरलालजी तथा बालमुकुन्दजी ने अष्टाध्यायी पढ़ना आरम्भ कर दिया था।[३]

अतः स्वामी जी ने संस्कृत के पठन-पाठन को स्वयं के द्वारा स्थापित आर्य समाज के उद्देश्य से जोड़ दिया। स्वामी जी अपने पत्रों एवं विज्ञापनों के माध्यम से जनता और जनार्दन को सदैव प्रेरित और प्रोत्साहित करते रहते थे। ऐसे ही एक विज्ञापन में स्वामी जी लिखते हैं-

"इससे मेरा यह विज्ञापन है आर्यावर्त देश के अंग्रेज बहादुर से कि संस्कृत विद्या की ऋषि-मुनियों की रीति से प्रवृत्ति करावै। इस्से राजा और प्रजा को अनन्त सुख-लाभ होगा और जितने आर्यावर्त्तवासी सज्जन लोग हैं उनसे भी मेरा यह कहना है कि इस सनातन संस्कृत विद्या का उद्धार अवश्य करें, ऋषि मुनियों की रीति से अत्यन्त आनन्द होगा और जो संस्कृत विद्या [लुप्त] हो जाएगी, तो सब मनुष्यों की बहुत हानि होगी इस में कुछ सन्देह नहीं।"[४]

संस्कृत के पठन-पाठन के लिए स्वामी दयानन्द ने एक विशिष्ट क्रम निर्धारित किया था। इसका उल्लेख उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पठन-पाठन तथा संस्कारविधि के वेदारम्भ संस्कार के अन्तर्गत किया है। संस्कृतवाक्यप्रबोध नामक पुस्तक के निर्माण की आवश्यकता का प्रतपादन करते हुए लिखते हैं कि-

"मैंने इस 'संस्कृतवाक्यप्रबोध' पुस्तक को बनाना अवश्य इसलिये समझा है कि शिक्षा को पढ़ के कुछ-कुछ संस्कृत भाषण का आना विद्यार्थियों को उत्साह का कारण है। जब वे व्याकरण के सन्धि विषयादि पुस्तकों को पढ़ लेंगे, तब तो उनको स्वतः ही संस्कृत बोलने का बोध हो जायगा, परन्तु यह जो संस्कृत बोलने का अभ्यास प्रथम किया जाता है, वह भी आगे-आगे संस्कृत पढ़ने में बहुत सहाय करेगा। जो कोई व्याकरणादि ग्रन्थ पढ़े विना भी संस्कृत बोलने में उत्साह करते हैं, वे भी इसको पढ़के व्यवहारसम्बन्धी संस्कृत भाषा को बोल और दूसरे का सुनके भी कुछ-कुछ समझ सकेंगे। जब बाल्यावस्था से संस्कृत बोलने का अभ्यास होगा तो उसको आगे-आगे संस्कृत बोलने का अभ्यास अधिक अधिक ही होता जायगा। और जब बालक भी आपस में संस्कृत भाषण करेंगे तो उनको देख कर जवान और वृद्ध मनुष्य भी संस्कृत बोलने में रुचि अवश्य करेंगे। जहाँ कहीं संस्कृत के नहीं जानने वाले मनुष्यों के सामने दूसरे को अपना गुप्त अभिप्राय समझाना चाहें तो वहाँ भी संस्कृत भाषण काम आता है"।[५]

स्वामीजी का जो पत्रव्यवहार प्रकाशित हुआ है उससे यह बात भलीभाँति सिद्ध होती है कि वे इन पाठशालाओं में संस्कृत के अध्यापन को सर्वोपरि महत्त्व देने के पक्ष में थे। यदि इन पाठशालाओं में भी संस्कृत का स्थान गौण हो जाता है तो उन्हें चलाने में कोई सार्थकता नहीं है, यह उनका निश्चित मत था। दानापुर निवासी बाबू माधोलाल को पत्र लिखते हुए वे इस बात पर प्रसन्नता प्रकट करते हैं कि उन्होंने संस्कृत पाठशाला खोलने का निश्चय किया है-आपके संस्कृत पाठशाला खोलने का विचार सुनकर मुझे बहुत हर्ष है, पर इससे पूर्व कि आप इस सर्वोपयोगी काम को हाथ में लें, मुझे सूचना दें कि पाठशाला में पढ़ाए जाने वाले विभिन्न शास्त्रों के प्रमाण ग्रन्थ के सम्बन्ध में आपने क्या क्रम रखा है।[६]

संस्कृत का पठन-पाठन केवल विद्यार्थियों के लिये ही आवश्यक नहीं अपितु धनिक-वर्ग के लिये भी आवश्यक मानते थे। फर्रुखाबाद निवासी लाला कालीचरण रामचरण को पत्र लिखते समय यह

लिखना नहीं भूलते **"इस पाठशाला में अधिक करके संस्कृत की उन्नति पर ध्यान रहना चाहिये और इसमें केवल लडके ही पढते हैं अथवा हमारे रईस लोगों में से भी कोई पडता है।"**[७]

फर्रुखाबाद की पाठशाला के विषय में अनेक शिकायतें सुनने के अनन्तर स्वामीजी ने सेठ निर्भयराम को लिखा –"विदित हुआ है कि आप लोगों की पाठशाला में आर्यभाषा संस्कृत का प्रचार बहुत कम और अन्य भाषा उर्दू, फारसी अधिक पढ़ाई जाती है। इससे वह अभीष्ट, जिसके लिये पाठशाला खोली गई है, सिद्ध नहीं होता दीखता। वरन आपका यह हजारहा मुद्रा का व्यय संस्कृत की ओर निष्फल होता भासता है। आप लोग देखते हैं कि बहुत काल से आर्यावर्त्त में संस्कृत का अभाव हो रहा है। **वरन संस्कृतरूपी मातृभाषा की जगह अंग्रेजी लोगों की मातृभाषा हो चली है। .....हमारी अतिप्राचीन मातृभाषा संस्कृत जिसका सहायक वर्तमान में कोई नहीं है।"**

इसी पत्र में आगे पाठशाला संस्थापन का ध्येय ही संस्कृतप्रचार बताते हुए लिखते हैं–

"अब इसके साधनार्थ यह होना चाहिये कि कुल पठन–पाठन समय के छः घण्टों में तीन घण्टे संस्कृत, दो घण्टे अंग्रेजी और एक घण्टा उर्दू फारसी पढ़ाई जाया करे और प्रतिमास संस्कृत की परीक्षा अन्य पण्डितों द्वारा हुआ करे।"[८]

फर्रुखाबाद के ही राजा दुर्गाप्रसादजी को पत्र लिखते हुए स्वामीजी लिखते हैं–"जहां तक बने पाठशाला के उद्देश्य पर कि संस्कृत की उन्नति होनी सो इसपर अच्छी प्रकार ध्यान रहे।"[९] इन्हीं राजा दुर्गाप्रसादजी को एक अन्य पत्र में पाठशाला विषयक दायित्व निर्वाह करने के लिए कहते हैं–

"पाठशाला में संस्कृत का काम ठीक–ठीक होना चाहिये। जैसे मिशन स्कूलों में लड़के अपने अन्य स्वार्थसिद्धि के लिये बाइबल सुन लेते हैं, वैसे जो संस्कृत सुन लिया तो क्या लाभ होगा? इस पाठशाला में मुख्य संस्कृत जो मातृभाषा है उसको ही वृद्धि देनी चाहिये। वरन फारसी का होना कुछ अवश्य नहीं। केवल संस्कृत और राजभाषा अंग्रेजी दो ही का पठन–पाठन होना अवश्य है।"[१०]

स्वामी जी अपने द्वारा स्थापित संस्कृत पाठशालाओं की प्रगति का लेखा–जोखा यदा–कदा व्यवस्थापकों से मांगते रहते थे। फर्रुखाबाद के लाला कालीचरण रामचरण को एक पत्र में उन्होंने लिखा– "तुम्हारा प्रबन्ध भी पाठशाला विषयक अच्छा नहीं है। अब कई बार हमे लिखा कि पण्डित लक्ष्मीदत्तजी के आने के पश्चात् वा पहले संस्कृत में कौन–कौन ग्रन्थ को किस–किसने वा कितनों ने पढ़ा वा पढ़ते हैं, उसका समाचार कुछ भी नहीं लिखा। इससे विदित होता है कि **तुम्हारी पाठशाला में अलिफ–बे और कैट–बैट की भरमार है जो कि आर्यसमाजों को विशेष कर्त्तव्य नहीं है।"**[११]

स्पष्ट है कि स्वामीजी इन पाठशालाओं में संस्कृत पठन–पाठन को ही प्रधानता देने के इच्छुक थे। संस्कृत प्रचार में उन्हें असफल होते देखकर उन्हें बन्द कर देना ही श्रेयस्कर समझा गया।

यहाँ यह बात विशेष द्रष्टव्य है कि स्वामीजी नरेशों और राजपुरुषों के लिए भी संस्कृत का ज्ञान अनिवार्य समझते थे। जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंहजी को स्वकर्त्तव्यों का बोध कराने के लिए जो पत्र स्वामीजी ने लिखा था उसमें निम्न परामर्श अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं–

"महाराजकुमार के सब संस्कार वेदोक्त कराइयेगा। २५ वर्ष तक ब्रह्मचारी रख के प्रथम देवनागरी भाषा और पुनः संस्कृत विद्या, जो कि सनातन आर्ष ग्रन्थ हैं जिनके पढ़ने में परिश्रम और समय कम होवे और महालाभ प्राप्त हो, इन दोनों को पढ़े। पश्चात् यदि समय हो तो अंग्रेजी भी, जो कि ग्रामर और फिलासफी के ग्रन्थ हैं, पढ़ने चाहियें।"[१२]

महाराणा सज्जन सिंह, उदयपुर को जोधपुर से लगभग १०-१६ सितम्बर, १८८३ के मध्य लिखे पत्र में उनकी दिनचर्या सम्बन्धी नियमों यह उल्लेखनीय है -

"सदा सनातन वेद शास्त्र, आर्यराज, राजपुरुषों की नीति पर निश्चित रहकर उनकी उन्नति तन मन और धन से सदा किया करें। इससे विरुद्ध भाषाओं की प्रवृत्ति वा उन्नति न करें वा करावें। किन्तु जितना दूसरे राज्य के सम्बन्ध में, यदि वे इस भाषा को न समझ सकें, उतने ही के लिये उन-उन भाषाओं का यत्न रखें, जो वह प्रबल राज्य हो।"[१३]

इसी प्रकार अपने एक अन्य पत्र में वे थियोसोफिकल सोसाइटी के संस्थापकों - कर्नल आल्काट तथा मैडम ब्लैवेट्स्की के विषय में जिज्ञासा करते हुये पूछते हैं। "उन्होंने संस्कृत पढ़ने का आरम्भ किया है या नहीं।"[१४]

स्वामी जी के वेदभाष्य के विषय में कई लोगों की यह धारणा थी कि यदि इसका अंग्रेजी और उर्दू में अनुवाद हो जाय तो अधिकाधिक लोग उसका लाभ उठा सकेंगे। स्वामीजी इस प्रस्ताव के विरुद्ध थे। उनकी यह सम्मति थी कि यदि उनके वेदभाष्य का अंग्रेजी अनुवाद सुलभ हो जायेगा तो लोग संस्कृत वा हिन्दी के माध्यम से इसे पढ़ने में निरुत्साहित हो जायेंगे और यह इन्हें कदापि इष्ट नहीं था कि लोग संस्कृत माध्यम से वेदाध्ययन करने की अपेक्षा अंग्रेजी वा उर्दू के माध्यम से पढ़ें। बम्बई निवासी श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को पत्र[१५] लिखते हुए उन्होंने इसी बात को स्पष्ट किया है।

उपर्युक्त उद्धरणों से ऋषि दयानन्द के संस्कृत के प्रति अनन्य भक्ति भाव और प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। इन तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि स्वामी दयानन्द की दृष्टि में -

१. संस्कृत से ही प्राणिमात्र और आर्यावर्त का कल्याण होगा।

२. संस्कृत भारत की स्वभाविक सनातन मूल भाषा है।

३. प्रत्येक भारतीय श्रेष्ठजन को संस्कृत सीखना, बोलना, पढना और ऋषिप्रणीत ग्रन्थों का स्वाध्याय, मनन, चिन्तन और अभ्यास करना चाहिये।

४. आर्यजनों और समाजों को संस्कृत सीखने और सीखाने का सर्वविध प्रयत्न करना चाहिये।

५. आर्य पाठशालाओं में संस्कृत पढने और पढाने का समुचित प्रबन्ध करना चाहिये। यदि संस्कृत और आर्ष ग्रन्थों के पठन-पाठन में ये पाठशालायें असमर्थ हैं तो उन्हें बन्द कर देना चाहिये।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि यह विवेक स्वामी दयानन्द से पूर्व उनके गुरु प्रज्ञाचक्षु दण्डी गुरुवर विरजानन्द को हुआ था । उन्होंने आर्ष और अनार्ष के माध्यम से संस्कृत साहित्य के उपयोगी और महत्वपूर्ण पक्ष को पहचाना तथा अनार्ष ग्रन्थों के बहिष्कार का श्रीगणेश किया।

अष्टाध्यायी महाभाष्ये द्वे व्याकरणपुस्तके।
ततोऽन्यत् पुस्तकं यत्तु तत्सर्वं धूर्तचेष्टितम्॥

उन्होंने ही यह आर्ष अनार्ष की विवेकपूर्ण दिव्य दृष्टि अपने योग्यतम शिष्य स्वामी दयानन्द को दी। किन्तु दोनों के दृष्टिकोण में कुछ अन्तर है- १. गुरुवर दण्डी स्वामी विरजानन्द की आर्ष अनार्ष दृष्टि प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृत साहित्य तक सीमित थी, किन्तु २. ऋषि दयानन्द ने यह आर्ष अनार्ष विवेक की दृष्टि को संस्कृत साहित्य तक सीमित न रखकर, उससे आगे समाज और देश की भूमिका में विस्तार कर दिया और आधुनिक भाषाओं, ज्ञान विज्ञान की तुलना प्राचीन वैदिक साहित्य से करके भारत की प्राचीन गौरव तथा अस्मिता को स्थापित करने का सार्थक प्रयास किया। महर्षि के इस कार्य से भारतीय समाज में जागृति व चेतना पैदा हुई और अपनी संस्कृति और इतिहास के प्रति आत्मगौरव का भाव पैदा हुआ। स्वयं ऋषि दयानन्द ने अपने

उपदेश और साहित्य से संस्कृत पढ़ने और ज्ञान-विज्ञान को समझने के लिए प्रेरित किया। संस्कृत ग्रन्थ रचना द्वारा उन्होंने देववाणी के सारस्वत भण्डार की जो अपूर्व वृद्धि की है वह अतुलनीय है। उनके पश्चात उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज, संस्कृत पाठशालाओं और गुरुकुलों ने इस प्रयत्नपूर्ण दु:साध्य कार्य को किया और कर रहे हैं। जिन के योगदान से आप सभी सुधीजन परिचित हैं।

स्वामी दयानन्द की संस्कृत के प्रति इस अतुलनीय योगदान समीक्षा करते हुए पं भगवद्दत्त रिसर्च स्कॉलर का कहना है कि[१६]-

आर्यसंस्कृति के इस सर्वथा विद्वेषी भयानक काल में आर्य-संस्कृति के अनन्य भक्त ऋषि दयानन्द सरस्वती के संस्कृतभाषा सम्बन्धी ये उद्दाम विचार अत्यन्त स्पष्ट हैं। इन विचारों में एक अपरिमित शक्ति, एक प्रबल प्रवाह और एक अनुपम रस है। इन्हीं गम्भीर और पूर्ण सत्य विचारों की छाया ऋषि दयानन्द सरस्वती रचित ग्रन्थों में भी दृष्टिगत होती है। भारत और भारतीय संस्कृति के उद्धार के निमित्त ये सत्य विचार वर्तमान भारत के किसी भी सुधारक या नेता को नहीं सुझे। इन विचारों को श्री मोहनदास कर्मचन्द गांधी और श्री जवाहरलाल भी प्रकट नहीं कर सके। वे ऐसा करें भी कैसे। वे तो संस्कृतभाषा के वैभव से अनभिज्ञ हैं और वेदविद्या विहीन है । वे भारतीय तत्त्व को नहीं समझते।

श्री गान्धी जो ने एक दो स्थानों पर लिखा है कि प्रत्येक हिन्दू को संस्कृत पढ़नी चाहिये। परन्तु यह उनका कथन मात्र ही रहा है। उनका स्वीकृत किया हुआ उत्तराधिकारी श्री जवाहरलाल संस्कृत-ज्ञान-शून्य है। उनके अधिकांश अन्य साथी भी संस्कृत से विमुख हैं। इसके साथ यह भी विचारणीय है कि जो भाषा व्यवहार में नहीं आती, वह मृतप्राय: हो जाती है। इसलिये व्यवहार में शहिन्दुस्तानी भाषाश को प्रचारित करनेवाले श्री गान्धी जी संस्कृत को मृतप्राय ही बनावेंगे। उनका कहना कथनमात्र रहेगा। यदि वे सत्य से थोड़ा सा भी प्रेम रखते हैं तो उन्हें निज हठ छोड़कर यह मानना चाहिये कि भारतीयों के लिए संस्कृत पढ़ना ही आवश्यक नहीं, प्रत्युत संस्कृत को शिष्टव्यवहार की भाषा बनाना भी आवश्यक है। अत: श्री गांधी जी को ऋषि दयानन्द सरस्वती का अनुकरण करना चाहिये।

सन्दर्भसूची :-

१. स्वामी दयानन्द सरस्वती, विष्णु प्रभाकर, प्राक्कथन, पृ. ८
२. देववाणी में वार्तालाप करता हुआ कुछ काल के लिए गंगा के किनारे-किनारे भ्रमण करूँगा। श्रीमद्दयानन्द प्रकाश गंगाकाण्ड, छठा सर्ग, पृष्ठ ११९।
३. श्रीमद्दयानन्दप्रकाश, गंगाकाण्ड, प्रथम सर्ग, पृष्ठ ९०।
४. ऋषि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार और विज्ञापन, प्रथम भाग, पृ. ५०-५१
५. संस्कृतवाक्यप्रबोध, भूमिका, पृ. १
६. ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र-व्यवहार और विज्ञापन, प्रथम भाग, पृ.-३४३
७. ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र-व्यवहार और विज्ञापन, प्रथम भाग, पृ.-६१२
८. वही, पृ. ६१४
९. वही, पृ. ६१६
१०. वही, पृ. ६१८
११. ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र-व्यवहार और विज्ञापन, प्रथम भाग, पृ.-५२१-५२२
१२.ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र-व्यवहार और विज्ञापन, पृ. -४६४
१३. ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र-व्यवहार और विज्ञापन, द्वितीय भाग, पृ.-७५९
१४. वही, प्रथम भाग, पृ.-३२३
१५. वही, प्रथम भाग, पृ.-१७८-१७९
१६. ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र-व्यवहार और विज्ञापन, भूमिका, पृ.-५४-५५

-एसो. प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग, कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-२२१००५

महर्षि दयानन्द की वेदार्थ पद्धति

❑ आचार्य योगेन्द्र याज्ञिक...✍

ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषियों की परम्परा से महाभारतकाल तक तो वेदार्थ की परम्परा स्वस्थ व सुदृढ़ रही। परन्तु महाभारत के भयानक युद्ध के उपरान्त ऋषियों का काल समाप्त हो गया। और जब पाणिनि, पतञ्जलि व पिंगल सदृश मुनियों और यास्कादि आचार्यों की परम्परा लुप्तप्राय हो गई। तो परम्परावादी विप्रों ने वेदों की अनुपूर्वी को तो सुरक्षित कर लिया किन्तु ऋषियों के अभाव में वेदार्थ की शुद्ध परम्परा को ज्यादा समय तक सुरक्षित नहीं रख पाए। आचार्य यास्क सदृश विद्वानों ने इसके लिए भरपूर प्रयास किया। पर धीरे-धीरे वेद भाष्यकारों ने ऋषियों व नैरुक्त परम्परा को तिलाञ्जलि दे दी। परिणामस्वरूप वेद के यथार्थ अभिप्राय से हम दूर हो गये।

ऐसा नहीं था कि बाद के वेदभाष्यकार विद्वान् नहीं थे। परन्तु सामान्य विद्वान् व ऋषियों में अन्तर तो होता ही है। कहा भी है- **''ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुवर्तते''**[१] सामान्य विद्वान् शब्द को पकडकर उसके अर्थ तक पहुँचने का प्रयास करता है। पहुँच गया तो वह सार्थक, न पहुँचा तो व्यर्थ, उल्टा अर्थ जान गया तो अनर्थ। पर ऋषि पहले अर्थ के सागर में सराबोर होकर जिसे प्रकट करना है, उसे सम्पूर्णता से जान लेते हैं और उस अर्थ को प्रकट करने योग्य शब्द को उच्चारित कर देते हैं। इसलिए ऋषियों का वेद भाष्य ही सत्य होता है।

वेदों के यथार्थ अभिप्राय से अनभिज्ञ होने के कारण **१९** वीं शताब्दी आते-आते हम संकटापन्न होते चले गये, जो संस्कृति, शिक्षा, धर्म, कर्म, सभ्यतादि मनुष्य के आभूषण हैं उन आभूषणों को मनुष्य जाति खो चुकी थी। भारत में वेद मान्यताएँ चारों ओर से रूढ़िवाद और कुरीतियों से जकड़ गईं थी। वह अनावश्यक बन्धनों, सड़े-गले रीति-रिवाजों, अनेक मूर्खतापूर्ण अन्धविश्वासों, शुष्क कर्मकाण्डों व भ्रान्त विचारों के रोग से ग्रस्त थी। ऐसे समय में ब्रह्मा से लेकर जैमिनिमुनिपर्यन्त प्राचीन ऋषि-महर्षि वेद के विषय में जो कुछ कहते आए, कालक्रम से उस पर पड़े आवरण को हटा कर उसी उद्घोष को दुहराना व वेद प्रतिपादित शाश्वत सत्य सनातन धर्म की रक्षा करना एक आवश्यक कार्य था।

उसे पूर्ण करने के लिए मानो ईश्वर की कृपा व हमारे सौभाग्य से उस संकटापन्न **१९** वीं शताब्दी में मोरवी राज्य के टंकारा ग्राम में श्री कर्शन जी तिवारी के घर सं.**१८८१** वि. मूल नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्तित्व जन्मना औदीच्य ब्राह्मण कुलोत्पन्न सामवेद शाखाध्यायी होते हुए भी **१४** वर्ष की अवस्था में ही यजुर्वेद कण्ठस्थ कर अपनी बहन व चाचा की मृत्यु के उपरान्त मन में दो प्रश्नों को लेकर **''सच्चा शिव क्या है? और मृत्यु क्या है?''** इस विचार के समाधान हेतु **२२** वर्ष की अवस्था में गृह त्याग कर हरिद्वार में स्वामी पूर्णानन्द जी से प्रेरणा लेकर **३६** वर्ष की वय में प्रज्ञाचक्षु गुरु विरजानन्द जी के चरणों में विद्याध्ययन हेतु **१४** नवम्बर **१८६०** ई. बुधवार को मथुरा आ पहुँचा। स्वामी विरजानन्द जी से अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदान्तदर्शन और वेदार्थ की पद्धति का अध्ययन किया। **१८६३** ई. में गुरु विरजानन्द ने अपने उस शिष्य से अध्ययन पूरा होने के उपरान्त गुरु दक्षिणा में देश, समाज व वेद की सेवा करने का वचन माँगा, और उसको निभाने हेतु वह शिष्य दयानन्द सरस्वती अपने महान् गुरु विरजानन्द के इस महान् यज्ञ का यजमान बन गया।

उस महामानव स्वामी दयानन्द सरस्वती ने उच्च आदर्शों से युक्त इस संसार के प्रथम चतुर्वेदविद् महर्षि ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त जितने भी ऋषि मुनि व आचार्य हुए तथा उनके द्वारा जो प्रोक्त वाङ्मय सम्प्रति उपलब्ध है एवं जो वेदानुकूल भारतीय शिष्टाचारान्तर्गत परम्परा है उन सबको अपने अन्दर समेट कर सभी विचारधाराओं के बीच में जो कुछ मूर्खतापूर्ण पाखण्ड व अन्धविश्वास था उसे दूर करने के लिए सदियों के लम्बे शून्य के पश्चात् मानवता के भाग्याकाश पर तिमिरहर्ता सूर्य के रूप में उदित होकर जड़ हो चली मानवता को वेदाभिमुख करने का अनुपम कार्य किया।

महाभारत युद्ध के उपरान्त ५००० वर्ष के इस काल में ऋषियों की इस परम्परा को चाहा तो बहुतों ने पर उस वेदार्थ परम्परा ने किसी का वरण नहीं किया। क्योंकि उसके योग्य कोई अपनी योग्यता का निर्माण ही नहीं कर पाया। परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने अखण्ड ब्रह्मचर्य, घोर तपस्या तथा समाधि के द्वारा योग्य बनकर ऋषियों की परम्परा का वरण किया। और अपने जीवन, लेखन, व्याख्यान, शास्त्रार्थ, परोपकार के कार्यों व वेदभाष्य के द्वारा विश्व में एक नई क्रान्ति उत्पन्न कर दी। और इस बात के लिए जन समुदाय को विवश किया, कि आप सत्य स्वीकारो। महर्षि का अपना कोई स्वतन्त्र मत नहीं था । वे वेद प्रोक्त सत्य सनातन आर्ष परम्परा के संवाहक थे।

जिन वेदों के बारे में कहा जाता था कि उसे शंखासुर ले गया उसे स्वामी दयानन्द जी ने पौष १९२५ सं. में फर्रुखाबाद निवास के समय जर्मन से मंगवाकर विश्व के समक्ष सत्य अर्थों के साथ प्रस्तुत कर शंकारूपी शंखासुर का विनाश कर दिया, स्वामी दयानन्द जी अपनी उदात्त भावनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं - **''हमने केवल परमार्थ और स्वदेशोन्नति के कारण अपने समाधि और ब्रह्मानन्द को छोड़कर यह कार्य ग्रहण किया है''**। [२]

वेदभाष्य व स्वामी दयानन्दः -

वेद भाष्यकारों को हम तीन भागों में बांट सकते हैं- १. भारतीय - सायण, महीधर, उव्वट आदि। **२. पाश्चात्य** - रॉथ, मैक्समूलर मैक्डॉनल आदि। **३.** ऋषि दयानन्द तथा उनके अनुयायी भाष्यकार।

स्वामी दयानन्द से पूर्व, पाश्चात्य एवं भारतीय दोनों प्रकार के वेद के अनेक भाष्यकार हुए। परन्तु दुर्भाग्य तो देखो कि मध्यकाल के प्रायः भाष्यकारों ने प्राचीन ऋषि मुनियों की भाष्यपद्धति का अनुसरण ही नही किया। और दुराग्रह से ग्रसित होने के कारण अरविन्द के अतिरिक्त अन्य प्रायः भाष्यकारों ने वेद के अध्यात्मिक पक्ष को स्वीकार नही किया। आचार्य सायण वेद को अपौरूषेय स्वीकार करते हुए इस प्रकार कहते हैं - **यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्। निर्ममे तमहं वन्दे परमानन्दमहेश्वरम्॥** [३]

परन्तु वही बाद में कहते हैं - **''सर्वे वेदाः कर्मकाण्डपराः, वेदा यज्ञार्थं प्रवृत्ताः''** अर्थात् सारे वेद कर्मकाण्ड के प्रवर्तक हैं। और उन्होनें यज्ञपरक वेद मन्त्रों की व्याख्या की है। परन्तु कहीं-कहीं मंत्रों की अध्यात्म परक व्याख्याएँ भी की हैं। [४]

महीधर ने तो यजुर्वेद के भाष्य में स्वयं स्वीकार किया **''भाष्यं विलोक्योव्वटमाधवीयम्''** अर्थात् मैनें उव्वट व माधव के आधार पर वेदभाष्य किया है। महीधर का भाष्य स्वच्छन्दता से युक्त है क्योंकि इन्होंने कात्यायन सूत्र का आश्रय लिया गया है।

महीधर ने राजधर्म का प्रतिपादन करने वाले १३ मन्त्रों का[५] इतना अश्लील अर्थ किया है कि वह स्वयं आगे [६] कहते है-**''अश्लील भाषणेन दुर्गन्धं प्राप्तानि अस्माकं मुखानि सुरभीणि यज्ञः करोत्वित्यर्थः''** अर्थात् इस उपरोक्त प्रकरण का अर्थ करने में जो मेरा मुख अश्लील भाषण से दुर्गन्ध युक्त हो गया है उसे यज्ञ सुगन्धयुक्त करे।

सायण, उव्वट, महीधर, वेंकटमाधव, स्कन्दस्वामी और पाश्चात्यों के भाष्यों से वेद प्राणि हिंसा के पोषक

और यज्ञवेदियां रूधिर से पंकिल पशुवधशाला बन गई थीं। इनके भाष्यों के कारण वेदों के सम्बन्ध में नाना आक्षेप होने लगे। वेदों को **''धूर्तैः प्रलपितम्''** कहा जाने लगा था, असभ्य मानव जाति की रचना माना जाने लगा।

शुक्ल यजुर्वेद के भाष्यकार उव्वट, महीधर का भाष्य यद्यपि कर्मकाण्ड परक है, तथापि अनेक स्थलों पर उन्होनें भी मंत्रों की अध्यात्म व्याख्याएँ की हैं। जैसे - (यजुर्वेद **३.३५** में सविता का अर्थ, **१३. ४** में प्रजापति का अर्थ, **१६** वें अध्याय में रुद्र का अर्थ आदि।

सायण, उव्वट, महीधरादि के वेदभाष्यों से स्वामी दयानन्द संतुष्ट नही थे इसलिए उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका लिखकर मार्गशीर्ष शु. **६** सं. **१९३४** वि. को ऋग्वेद का भाष्य प्रारम्भ किया और पं.गोपालराव हरि देशमुख के प्रस्ताव पर पौष शु. **१३** सं.**१९३४** वि. को ऋग्वेद के साथ यजुर्वेद का भाष्य भी प्रारम्भ कर दिया।[७] यजुर्वेदभाष्य के प्रारम्भ में यह कारण रहा होगा कि सर्वत्र यजुर्वेदीय कर्मकाण्ड का अधिक प्रचार था, जिसमें पशुबलि आदि सम्बन्धी भ्रांतियाँ भी थी।

अपने वेदभाष्य के विषय में महर्षि दयानन्द का कथन यह था - **''परन्तु जो रावण, उवट, सायण और महीधरादि ने भाष्य बनाये हैं, वे सब मूलमन्त्र और ऋषिकृत व्याख्यानों से विरूद्ध हैं। मैं वैसा भाष्य नहीं बनाता। क्योंकि उन्होंने वेदों की सत्यार्थता और अपूर्वता कुछ भी नही जानी। और जो यह मेरा भाष्य बनता है, सो तो वेद, वेदांग, ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थों के अनुसार होता है। क्योंकि जो-जो वेदों के सनातन व्याख्यान हैं, उनके प्रमाणों से युक्त बनाया जाता है, यही इसमें अपूर्वता है। क्योंकि जो-जो प्रामाण्याप्रामाण्यविषय में वेदों से भिन्न शास्त्र गिन आये हैं, वे सब वेदों के ही व्याख्यान हैं। वैसे ही ग्यारह सौ सत्ताईस (११२७) वेदों की शाखा भी उनके व्याख्यान ही हैं। उन सब ग्रन्थों के प्रमाणयुक्त यह भाष्य बनाया जाता है।**[८]

परन्तु हमारे दुर्भाग्यवशात् स्वामी दयानन्द जी अपनी इच्छानुरुप[९] चारों वेदों का भाष्य तो न कर पाये पर उन्होंने सम्पूर्ण यजुर्वेद का एवं ऋग्वेद **७. ६१.२** तक का भाष्य तो कर ही गए हैं।

स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य से प्रस्फुटित सिद्धान्तः -

क. वेद का संग्रह किसी पुरोहित, ऋषि ने नही किया है अपितु सृष्टि के आदि में परमात्मा द्वारा पवित्रतम ऋषियों के हृदय में प्रकाश किया गया।

ख. वेद में किसी ऋषि, राजा आदि का अनित्य इतिहास नहीं हो सकता है।

ग. वेद में हिंसा - अश्लीलतादि ऐसे दोष नहीं हो सकते जो कि पूर्ववर्त्ती भाष्यकारों के द्वारा वेद पर थोप दिये गये हैं।

घ. परमेश्वर - प्रोक्त होने के कारण ही वेद में केवल सत्य विद्याएँ ही विद्यमान हैं।

ङ वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ज्ञान-कर्म के साथ ब्रह्म भी है। अग्नि आदि शब्द प्रकरण एवं विशेषण के अनुसार मुख्यरूप से उसी ब्रह्म के ही वाचक हैं। किन्तु प्रकरणानुसार इन शब्दों के भौतिक अर्थ भी हैं।

च. वेद में अनेक देवी देवताओं का वर्णन नहीं है अपितु चारों वेद केवल एक ब्रह्म के ही प्रतिपादक हैं। इसे ही दूसरे शब्दों में एकेश्वरवाद कहा जाता है।

छ. वेद में किसी भी प्रकार की जड़पूजा का विध ान नहीं है। एकमात्र परमचेतनसत्ता ब्रह्म ही वेदों में उपास्य माना गया है।

ज. वेद का क्षेत्र केवल यज्ञादि ही नहीं है अपितु अध्यात्म, राजनीति, ज्ञान-विज्ञान, शिल्प, गणित, नैतिकता, समाजिकता आदि बहुत कुछ वेद में है।

झ. वेद नाम केवल ऋग्, यजु, साम तथा अथर्व के रूप में चार संहिताओं का ही है। ब्राह्मणादि अन्य कोई भी ग्रन्थ वेद पदवाच्य नहीं हैं।

ञ. वेद स्वतः प्रमाण हैं जबकि अन्य ग्रन्थ वेदानुकूल होने से ही प्रमाण हैं।

ट. वेद के पुनरावृत्त मन्त्र व मन्त्रांशों के

अलग-अलग अर्थ हैं।

ठ. प्राचीन ऋषि-मुनियों व नैरुक्त परम्परा की भाष्यपद्धति के अनुसरण को महत्ता देना ही श्रेष्ठ है।

ड. व्यावहारिक और पारमार्थिक भाष्यपद्धति की स्थापना ही श्रेयस्कर है।

ढ़. वेदभाष्य में क्रियात्मक सामाजिकरूप को अपनाकर उसे सर्वसाधारण की अमूल्य धरोहर बना दिया है।

वेद में पुनरावृत्त (पुनरुक्त) वेदमंत्रों के साथ दयानन्द द्वारा उचित न्यायः -

वेद में अनेक स्थल ऐसे उपलब्ध होते हैं, जहां मन्त्र मंत्रार्थ और मन्त्रांश अनेक बार पुनरावृत्त (पुनरुक्त) हुए है। इसी को पुनरुक्ति कहा जाता है। पुनरुक्ति का तात्पर्य होता है पुनः कथन। यह पुनरुक्ति **शब्द, अर्थ व शब्दार्थ रूप** से तीन प्रकार की होती है। और इस तीन प्रकार की पुनरुक्ति को हम **सप्रयोजन व निष्प्रयोजन** रूप से दो भागों में बांट सकते हैं इसमें सप्रयोजन पुनरुक्ति में तो कोई दोष नही है पर हाँ निष्प्रयोजन पुनरुक्ति तो दोषावह ही मानी जायेगी। कहा भी है -'' **प्रयोजनशून्यत्वे पदवाक्ययोः पुनः पुनः कथनं पुनरुक्तिदोषः**''।

सप्रयोजन पुनरुक्ति अन्य लौकिक शास्त्रों व लोक व्यवहार में भी देखी जाती है। जैसे -

१. आयुर्वेद में वात, पित्त, कफ का कई बार प्रयोग आया है। वह दोष नहीं है।

२. न्याय - वैशेषिक दर्शन में प्रमाण व द्रव्यादि शब्दों का कई बार प्रयोग है पर वह सदोष नहीं है।

३. लोक व शास्त्र में भी एक ही उदाहरण से अनेक प्रश्नों को सुलझाया जाता है। जैसे महाभाष्यकार ''**अस्य सूत्रस्य शाटकं वयेति**'' इस दृष्टान्त को बार-बार देते हैं। जैसे -'' **गंगायां घोषः**'' ''**पीनो देवदत्तः दिवा न भुङक्ते, रात्रौ भुङक्ते**'' ''**सैन्धवम् आनय**'' आदि। ऐसा नहीं है कि विद्वानों को दूसरा उदाहरण नहीं आता था पर इसका लाभ यह होता है कि इससे विद्यार्थी को शीघ्र समझ में आ जाता है। नवीन उदाहरण में नवीनता तो होगी पर समझने में शीघ्रता नहीं होगी। परन्तु दोषदर्शन करने वालों को तो वह पुनरुक्ति ही दिखाई देगी। क्योंकि कहा है-''**मणिमयमंदिरमध्ये पश्यति पिपीलिका छिद्रम्**'' अर्थात् चींटी को यदि मणिमाणिक्य मण्डित मंदिर में छोड़ दिया जाए तो वह स्वभाव वशात् मंदिर में छिद्र ही ढूँढेगी। वेदों में मन्त्र गत शाब्दिक पुनरुक्ति के निम्न प्रकार उपलब्ध होते हैं - **१. पदपुनरुक्ति २. पादपुनरुक्ति ३. अर्धर्चपुनरुक्ति ४. मन्त्रपुनरुक्ति ५. सन्दर्भपुनरुक्ति।**

पुनरुक्त के विषय में ऋषि दयानन्द उपरोक्त सिद्धान्त को आत्मसात् करते हुए जहां मन्त्र मंत्रार्थ और मन्त्रांश अनेक बार पुनरावृत्त (पुनरुक्त) हुए हैं। उनका सर्वत्र भिन्न-भिन्न अर्थ करतें हैं। जैसे- यजुर्वेद के **१८** वें अध्याय में आगत **४०** बार ''**यज्ञेन कल्पन्ताम्**'' का अलग - अलग अर्थ किया है। और वह अर्थ मनमाना नहीं है अपितु शास्त्र, ऋषियों व ईश्वर की मान्यता के अनुकूल है इस प्रकार की अनेक श्रेष्ठताओं से ओतप्रोत ऋषि दयानन्द की वेदार्थ शैली है।

सन्दर्भ :-

१. उत्तररामचरित १.१०

२. पत्र व्यवहार एवं विज्ञापन ।

३. ऋग्वेदभाष्यभूमिका (सायणकृत) ।

४. ऋ. १.१६४.१ अस्यवामीय सूक्त ।

५. महीधरकृत यजुर्वेद भाष्य २३.१९-३१ (१३ मंत्र)

६. महीधरकृत यजुर्वेद भाष्य २३.३२

७. ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, १९५५, पृ. ५०

८. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका भाष्यकरण शंका समाधान आदिविषय (दयानन्दकृत)।

९. भाद्रपद वदी ५ सं. १९४० वि.(२३.८.१८८३) को मुंशी समर्थदान को लिखा पत्र

-उपाध्याय,

आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय,

नर्मदापुरम् होशंगाबाद(म.प्र.)

स्वामिदयानन्दस्य वैदिकचिन्तनमाधुनिकसन्दर्भे

❑ आचार्या डॉ. अन्नपूर्णा...✍

सृष्टेः प्रारम्भकालादारभ्य ईश्वररचितोऽयं संसार इदानीमपि चलति। अग्रे प्रलयं यावत् चलिष्यति च। संसारेऽस्मिन् मानवः (श्रेष्ठपदमारोहितवान्) सर्वश्रेष्ठः इति निश्चितम्। सः सामाजिकजीवनं यापयति। सामाजिकी व्यवस्था समाजं सुदृढं करोति। इमां व्यवस्थां सृष्टिप्रारम्भकाले वेदज्ञानमाध्यमेन जनाः लब्धवन्तः। परन्तु शनैः-शनैः इयं व्यवस्था विकृता जाता। अज्ञानताहेतोः अन्धविश्वासः रूढिवादः विपर्ययात्, अर्थात् विपरीतज्ञानात् संसारः अव्यवस्थितः, विषमः आतंकमयः संकटमयश्च इदानीं नितरां दरीदृश्यते।

अस्यां संकटमयि स्थितौ सत्पथप्रदर्शकानां आवश्यकता भवति। येषां विचारेण मार्गदर्शनेन, येषां रचितग्रन्थ-ज्ञानेन, तस्य प्रचारेण च जनाः कुमार्गं विहाय सन्मार्गं प्राप्नुवन्ति। स्वजीवनं अन्य जीवनं च निर्मातुं समर्थाः भवन्ति। अस्मिन् परिप्रेक्ष्ये महर्षेः अर्थात् स्वामिदयानन्द सरस्वती महोदयस्य स्थानं अत्युच्चं प्रतीयते। यतोहि तल्लिखिताः ग्रन्था संसारस्य सत्यमार्गदर्शकाः सन्ति। यथा सत्यार्थप्रकाशः, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, गोकरूणानिधिः, आर्योद्देश्यरत्न-माला, संस्कारविधिः, उपदेशमंजरी इत्यादयः ग्रन्थाः अज्ञानग्रस्तजनानां कृते ज्ञानवर्तिका सदृशाः सन्ति।

स्वामिदयानन्दस्य विचारधाराया आधुनिकप्रसंगे प्रासंगिकता -

स्वामिदयानन्देन सत्यार्थप्रकाशग्रन्थे यल्लिखितं तत् सर्वं विश्वस्य कृते आवश्यकम्। यदि सत्यार्थप्रकाशः सर्वत्र पाठविधौ पाठ्यपुस्तकरूपेण भवेत्। तदा सर्वानर्थस्य धर्मसंकटस्य च समाप्तिः नूनमेव भविष्यति।

कथम्? आधुनिकयुगे वर्तमानतमे समाजेऽपि जनाः ईश्वरविषये विवादग्रस्ताः भूत्वा कलहं कुर्वन्ति। धर्मविषयेऽपि वैमनस्यं प्राप्य आतंकं प्रसारयन्ति किन्तु स्वामिदयानन्दः लिखितवान् सत्यार्थप्रकाशस्य सप्तमसमुल्लासे (अथेश्वरवेदविषयव्याख्यास्यामः)।

सः ईश्वर एक एवास्ति। वेदानुसारं सर्वव्यापकः, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञः, सर्वनियन्ता। उदाहरणरूपेण यजुर्वेदस्य चत्वारिंशाऽध्यायस्य मन्त्रमुल्लिखितवान्-

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं
शुद्धमपापविद्धं कविर्मनीषी परिभूः
स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः
समाभ्यः॥

- यजु. ४०/८

स ईश्वरः सर्वव्यापकः, सर्वशक्तिमान्, अस्नाविरम् अर्थात् स्नायुबन्धात् रहितः शरीरधारी न भवति। अव्रणम् अर्थात् अखण्डितो वर्तते। ईश्वरः कदापि अवतारग्रहणं न करोति। जीवात्मानः कर्मानुसारं शरीरं धारयन्ति, न तु परमेश्वरः। स तु कर्मफलस्य दाता, न भोक्ता।

वेदस्य इमं सिद्धान्तं यदि सर्वत्र सर्वे ज्ञास्यन्ति, तदा कोऽपि विभ्रमः न भविष्यति। केवलं गुणकर्मस्वभावेन एकम् ईश्वरमपि बहुधा स्तुतिं कुर्वन्ति।

उक्तं च -

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति॥

अपरं च-धर्मविषयेऽपि जनानां मनसि भ्रमः, अन्धविश्वासादयः मनसि परिपूर्णा परिलक्ष्यन्ते। स्वामिदयानन्दः धर्मार्थं वेदं प्रमाणरूपेण गृहीतवान्। अस्मात् हेतोः महर्षिमनोः मनुस्मृतेः उदाहरणं प्रस्तुतं कृतवान् -

धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः

अपरं च -

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।

सदाचारः धर्मः, धारणात् धर्म इत्याहुः। धर्मः

पक्षपातरहितः न्यायः तथा असत्यस्य परित्यागः सत्यस्य ग्रहणं धर्मः, कर्त्तव्यं नाम धर्मः। मानवस्य मानविकता एव धर्मः। हिन्दु मुस्लिम ख्रीष्ट इत्यादयः सम्प्रदायाः सन्ति न धर्म पदवाच्या। जनाः इदानीम् अज्ञानवशतः हिन्दु-मुसलमानख्रीष्टं इति धर्माः कथयन्ति।

महर्षेः परिभाषायां यदि सदाचारकर्त्तव्यं वा धर्मरूपेण ज्ञात्वा जनाः तदनुरूपम् आचरिष्यन्ति तदा सर्वे मानवाः सुखिनः भविष्यन्ति। कुत्रापि आतंकः न भविष्यति।

वेदानुसारेण जीवनयापनमुचितम् इति महर्षिदयानन्दस्य वेदस्य चोपदेशोऽयमस्ति। यथा -

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥

कुत्रापि कदापि हिंसा न करणीया।

पुमान्पुमांसं परिपातु विश्वतः॥

एकः अन्यस्य रक्षां करोतु अयमेव ईश्वरस्य आदेशः। महर्षि दयानन्देन उक्तम्-महर्षे ब्रह्मणः आरभ्यः महर्षिजैमिनीपर्यन्तम् ऋषीणां यन्मतमस्ति तदैव मम मतम्। चतुर्षु वेदेषु यः सिद्धान्तः व्यवस्थितः वर्णितः, यः उपदेशः उपलभ्यते स सर्वः मदीय विचारः। अतः समाजस्य कृते इदानीम् एतेषाम् आवश्यकता नितराम् अनुभूयते।

सामाजिकी व्यवस्था अपि इदानीम् विकृता अस्ति। यथा - वर्णव्यवस्था स्वामिदयानन्दः स्वीकृतवान्। वेदानुसारेण यदस्ति -

ब्रह्मणोऽस्यमुखमासीद् बाहू राजन्य कृतः।
उरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥

-यजुर्वेदः

ब्रह्म हि ब्राह्मणः। क्षत्रं हि राजन्यः। ये ब्रह्म विदित्वा ब्रह्मज्ञानेन संसारस्य मार्गदर्शनं कुर्वन्ति त एवं ब्राह्मणाः ये बाहूबलेन राष्ट्ररक्षां कुर्वन्ति त एव क्षत्रियाः। ये वाणिज्यं व्यवसायं कृत्वा राष्ट्रस्य समृद्धिः विवर्द्धयति त एव वैश्याः। अन्ये ये सेवाकार्यरताः ते शूद्राः। इयं वर्णव्यवस्था कर्मणा अस्ति न जन्मना। यदि इयं वर्णव्यवस्था राष्ट्रे प्रचलिष्यति तदा अस्मिन् आधुनिकतमे समाजे राष्ट्रे वा किमपि विघटनं न भविष्यति। इदानीं समाजे यां वर्णव्यवस्थामवलम्ब्य प्रशासकानां चयनं भवति। तत्र जनाः संकीर्णजातिवादं गृहित्वा अनर्थं कुर्वन्ति। नेतानां चयनं च कुर्वन्ति, तत् असमीचीनम् अन्यायश्च परिलक्ष्यते। अनेन प्रकारेण इदानीं समाजे, ग्रामेषु नगरेषु, पठितवर्गेषु अपि जातिवादस्य संकीर्णता परिलक्ष्यते। वैवाहिकसम्बन्धेष्वपि जातिवादस्य कुप्रभावहेतोः तस्य दुष्परिणामः समक्षम् आयाति। येन अनेकाः पठिताः युवानः युवतयश्च तस्य जातिवादस्य संकुलया पीडिताः (निकुटिताः) स्वजीवने कष्टं प्राप्नुवन्ति। महर्षिदयानन्दः अस्याः कुप्रथायाः खण्डनं कृत्वा ''गुणकर्मस्वभावनुसारेण विवाहो भवेत्।'' इति स्वामरग्रन्थसत्यार्थप्रकाशस्य चतुर्थसमुल्लासे उल्लिखितवान्। तदैव आश्रमव्यवस्थापि समाजस्य कृते महत्त्वपूर्णव्यवस्था वर्त्तते, किन्तु आधुनिकतमे समाजे तन्न परिलक्ष्यते।

यदीयं वर्णाश्रमव्यवस्था समाजे सर्वत्र संलग्ना भवेत् तदा नूनं समाजस्य संकटः दूरं भविष्यति। आश्रमव्यवस्थायां चत्वारः आश्रमाः सन्ति। यथा -

ब्रह्मचर्यः, गृहस्थः, वानप्रस्थः, सन्यासाश्रमः।

तत्र ब्रह्मचर्ये बाल्यकालादारभ्य पञ्चविंशति वर्षपर्यन्तम् आचार्यकुले मानवस्य जीवनस्य निर्माणं भवति। तत्र न केवलं बालकाः अपितु कन्याः अपि स्थित्वा व्रतपालनं कुर्युः, पठेयुः। स्वामिदयानन्दः वेदानुसारेणोक्तवान् यत् -

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्

अतः कन्याभिरपि गुरुकुले स्थित्वा वेदशास्त्राध्ययनं करणीयम् इति।

गृहस्थाश्रमे पंचविंशति वर्षानन्तरं विधिपूर्वकं वेदादिनामर्जनं कृत्वा ये गन्तुमिच्छन्ति, ते एव गृहस्थाश्रमे प्रवेशं कुर्युः। गृहस्थाश्रमस्य या व्यवस्था वेदेषु चित्रिता सा एव ऋषिभिः अनुमोदिता। महर्षिदयानन्देन सा व्यवस्था अंगीकृता। गृहस्थाश्रमेऽपि धर्मानुसारेण स्थित्वा प्रतिदिनं पंचमहायज्ञं करणीयम्। अर्थात् ब्रह्मयज्ञ-देवयज्ञ-पितृयज्ञ-अतिथियज्ञ-बलिवैश्वदेवयज्ञपंचयज्ञाः गृहस्थजनैः करणीयाः। ब्रह्मयज्ञे ईश्वरस्य ध्यानं, देवयज्ञे

अग्निहोत्रं, पितृयज्ञे जीवितमातृपितृणां सेवा न मरणानन्तरं श्राद्धः, अतिथियज्ञे अभ्यागतानां सत्कारं कृत्वा तेभ्यः उपदेशः आशीर्वादश्च ग्रहणीयः। बलिवैश्वदेवयज्ञे न केवलं स्वस्य कृते अपितु अन्येषां कृते पशुपक्षीणां कृते भोजनं दातव्यम्। यदि एतत् सर्वं गृहे भविष्यति तद् गृहं स्वर्गं भविष्यति। यस्मिन् गृहे एतत् सर्वं भवति। तस्मिन् गृहे सर्वदा सुखं भवति। गृहस्थाश्रमः न केवलं भोगार्थं अपितु राष्ट्रहिताय संस्कारयुक्तः सन्तानार्थ उद्दिष्टः, अतः अस्मिन् समाजे यदि महर्षिदयानन्दस्य चिन्तानानुसारम् आचरणं करिष्यन्ति न केवलं राष्ट्रस्य अपितु सम्पूर्णविश्वस्य समस्यायाः समाधानं भविष्यति।

अग्रे गृहस्थाश्रम् अनन्तरं पंचाशत् वर्षादधिकतमे वर्षे वानप्रस्थ आश्रमं प्रविश्य तत्र आत्मोत्थानाय समाजस्य कल्याणाय च कार्यं करणीयम्। आध्यात्मिकजीवनं अंगीकृत्य गृहस्थमोहमायां परित्यज्य तपस्वीनः स्युः तदनन्तरं सन्यासाश्रममवलम्ब्य योगेन ध्यानेन वा तनुत्यागः करणीयः। इदानीं समाजे कामक्रोधलोभमायाजर्जरिताः मानवाः दुःखमयजीवनं यापयन्ति। अतः वेदानुसारेण महर्षिदयानन्दस्य उपदेशानुसारेण यदि चलिष्यन्ति। आधुनिकजनाः स्वस्थाः सुखिनश्च भवितुमर्हन्ति। अपरं च समाजे इदानीं अन्धविश्वासः प्रायः दृश्यते। विशेषरूपेण स्त्रियः पुरुषाः अपि अनेन आक्रान्ताः सन्ति। (जादू-टोना-तान्त्रिक) अज्ञानान्धकारेषु स्वजीवनं संकटाकुलं कुर्वन्ति।

सत्यार्थप्रकाशे महर्षिदयानन्दः एतत् सर्वं अन्धविश्वासः इति उल्लिखितवान्। अपरञ्च इदानीमपि जनाः अज्ञानताहेतोः यत्र कुत्रापि मन्दिरे प्रस्तरदेवदेवीनां समीपे पशुवधं (बलि इति नाम्ना) भ्रामकपूजाविधि परिपालयन्ति। इयं प्रथा सर्वथा अनर्थकारिणी भ्रामिकी अशुद्धा च अस्ति। वेदेषु कुत्रापि बलिप्रथा नास्ति। केचन भाष्यकाराः प्रकृतार्थम् अन्वेषणं न कृत्वा मन्त्रस्य रहस्यं सम्यक्रूपेण न ज्ञात्वा अर्थस्य अनर्थं कृतवन्तः। अतैव मध्यकाले जनाः अन्धविश्वासयुक्ताः आसन्। तदेव इदानीं चापि परिलक्ष्यते।

महर्षिदयानन्दः व्याकरणनिरुक्तशास्त्रमवलम्ब्य मन्त्रस्थ शब्दानामर्थं सुस्पष्टं कृतवान्। यज्ञस्य अन्य नाम अध्वरः ध्वर इति हिंसा कर्म। न ध्वर इति अध्वरः। यज्ञस्य अर्थः यत्र हिंसा न भवति इत्यनुसारेण यज्ञे बलिप्रथाः न भवति। मध्ययुगे ब्राह्मणाः यज्ञपद्धतिं विकृतिं कृतवन्तः। अतः जनाः नास्तिकाः संजाताः। यज्ञं प्रति श्रद्धा विहीनाः संजाताः। तस्य परिणामः इदानीमपि अनुभूयते।

स्वामिदयानन्दः पुनश्च यज्ञस्य करणाय वेदानां प्रचाराय-प्रसाराय च महद्योगदानं कृतवान्। इदानीमपि तस्य अनुयायिनः आर्यसमाजस्य विद्वांसः, सज्जनाः, संन्यासिनः, गुरुकुलस्य ब्रह्मचारिणः, ब्रह्मचारिण्यश्च तदैव कुर्वन्ति। इदानीं तमे समाजे एतस्य अति प्रासंगिकता प्रतीयते। स्त्रीशिक्षार्थं स्वामिदयानन्दः महत्यत्नमकरोत्।

मध्यकाले स्वार्थवशाः अज्ञानयुक्ताः मानवाः स्त्रीभिः वेदाध्ययनं न करणीयम् इति प्रचारितवन्तः।

स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्।।

एतत् प्रचारं कृत्वा वेदाध्ययनात् नारीं वंचितां कृतवन्तः। किन्तु महर्षिदयानन्दः पुनः स्त्रीणां कृते वेदाध्ययनमवश्यमेव करणीयमिति वेदानुसारेण स्वमतं संस्थाप्य वेदाध्ययनस्य अधिकारः नारीभ्यः दत्तवान्। इदानीमपि नार्यः सर्वाधिकारयुक्ताः समाजे श्रेष्ठपदमाप्नुवन्ति। परन्तु यत्र कुत्रापि ग्रामीणक्षेत्रे वा इदानीमपि चावहेलिता भवन्ति। जन्मनः पूर्वमेव ताः विलीनं कुवन्ति जनाः। अतः इदानीं समाजेऽपि दयानन्दस्य विचाराणां परमावश्यकता वर्तते। या नारी वीराणां जननी, मातृशक्तिरूपेण पूजनीया तस्याः ईदृशी स्थिति न भवेत्। अतः आधुनिकसन्दर्भे स्वामिदयानन्दस्य प्रासंगिकता महति वर्तते। तेन विरचिताः दशनियमाः विश्वस्य दिव्यसन्देशाः प्रतिभान्ति। अद्य जनाः यदि एतत् हृदि गृहीत्वा स्वकर्त्तव्यं करिष्यन्ति तदा स्वस्य अन्यस्य च कल्याणं भविष्यत्येव।

- आचार्या,
द्रोणस्थली-आर्षकन्यागुरुकुलमहाविद्यालयः,
देहरादूनम्

महर्षि दयानन्द सरस्वती (कविता)

❑ ब्र. निशान्त कुमार...✍

जैसे सर्पझुण्डों पर मोर का है भारी पंजा,
जैसे दावा काननों को धू-धू कर जलाता है।
जैसे रणवीरों से है डरते सारे योद्धागण,
जैसे सूर्य तेज सारे तारों का घटाता है।
विद्या दीप हाथ में है ओम् ध्वजा साथ में है,
निजज्ञानदीप्तियों से देश को जगाता है।
सारे आर्यावर्त को निज तेज से व्याप्त करता,
दयानन्द नाम उसका निर्भय वो कहाता है॥

जिसने घरबार छोड़ा करने खोज सत्य सारी,
जिसने सच्चे शिव का ध्यान यें लगाया है।
सारे साधुओं से मिला सारे वो मठों में घूमा,
पर ठौर आके उसने मथुरा में पाया है।
बिलख-बिलख रोया देश की दशा को देख,
उद्धार करने को इसका प्रण यें उठाया है।
धन्य हुई सारी भूमि भारत और विश्व की,
दयानन्द जैसा शूर सहायक बनके आया है॥

ऋषि था अकेला उसके सामने था जग सारा,
मृत्यु से न डरता वो न भय कभी खाता है।
अपने तेज शौर्य और धीरता व वीरता से,
सारे व्याप्त देश को वो क्षण में हिलाता है।
सत्य ज्ञान वेद का है लेकर चला वो आज,
'वेदों की ओर लौटों' नारा यें लगाता है।
हृदय के अन्दर व्याप्त देश की है दु:ख पीड़ा,
करूँगा कल्याण इसका प्रण यें उठता है॥

जहाँ भी टिकाया पैर तप: पूत स्वामी जी ने,
फिर न किसी ने भी वहाँ से हटाया है।
पाखण्ड़ी दलों की वहाँ भरमार भीड़ आयी,
पर उस देव से भी कोई न जीत पाया है।
काशी शास्त्रार्थ सारी दुनिया का साक्षी है,
शेर ने अकेले सारे काशी को हराया है।
सारे पण्डे सारे झण्डे अभिभूत होते है,
स्वामी जी के तेज ने ही सबको डराया है॥

ऋषि अलबेला था वो जग में अकेला था वो,
तेज से ही सारे जिसने विधर्मी भगाएं है।
जिनमें है तम और पाखण्ड भी घोर-सा,
ऋषि ने वो सारे गढ़ पाखण्डी हिलायें है।
भारतीय सभ्यता है तेजधारी सबसे बड़ी,
प्रमाण भी सारे उसने अंग्रेजों को दिखाएं है।
ज्ञान से भरूंगा फाड़ तम की छटा को सारी,
सारे विश्व को ही उसने वेद यें बतायें है॥

सारी कुरीतियों के जाल को है तोड़ डाला,
दलित जनों को जिसने माटी से उठाया है।
बालविवाह व्याप्त था जो सारे ही देश में,
उसका विरोध स्वामी जी ने करवाया है।
नींद से है व्याप्त सारा देश झकझोर डाला,
विधवा की मांग को भी फिर से सजवाया हैं।
गोओं की रक्षा लोगों! देश की ही रक्षा है,
ये ही पाठ उसने सारे जनों को पढ़ाया है॥

बड़े-बड़े ज्ञानीजन चरणों में आन गिरें,
क्रान्तिकारी वीरों का भी गुरू वों कहाया है।
महानीच निर्दयी दया की है मांग करते,
दयानन्द रूपी सागर जग यें डुबाया है।
धन्य है वो ब्राह्मण कुल धन्य गुजरात सारा,
सूर्य वेद रश्मियों का जिसने उगाया है।
दयानन्द वीर धीर दयानन्द शूरवीर,
दयानन्द दयानन्द दयानन्द छाया है॥

- स्नातक, गुरुकुल पौन्धा देहरादून

महर्षि दयानन्द सरस्वती का शिक्षा दर्शन

❑ डॉ. नवीन कुमार...✍

शोधसार -

प्रकृति का शाश्वत नियम परिवर्तनशीलता का है। इस नियम के अधीन विश्व के समस्त तत्व अविच्छिन्न रूप से निरन्तर परिवर्तनशील है। प्रकृति की परिवर्तनशीलता के कारण विश्व में भौतिक ,सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं आध्यात्मिक दशाओं में भी परिवर्तन होता रहता है तथा इन परिवर्तनों का प्रत्यक्ष प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ता है। जिससे इसमें भी परिवर्तन होता रहता है। इसीलिए शिक्षा को गतिशील एवं परिवर्तनशील प्रक्रिया कहा गया है। शिक्षा ही मानव का निर्माण करती है या व्यक्ति को इस रूप में तैयार करती है कि वह समाज में अपनी भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वहन कर सके।

किसी भी देश की कोई भी शिक्षा व्यवस्था लम्बी समयावधि तक अपने युग की आशाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम नहीं रह पाती है। तब वहाँ शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन आवश्यक समझा जाने लगता है। ऐसी परिस्थिति में ही कोई अग्रदर्शी चिन्तक अपने काल की भौतिक, सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन का प्रतिफल है।

१९ वीं शताब्दी में ऐसे ही एक अग्रदर्शी, क्रान्तिकारी द्रष्टा एवं नव जागरण के पुरोधा "महर्षि दयानन्द सरस्वती" का प्रार्दूभाव हुआ। जिन्होंने भारतीय समाज में विद्यमान नाना प्रकार की बुराईयों, जड़ताओं, कुण्ठाओं एवं अज्ञानताओं को दूर करने के लिए क्रान्तिकारी विचारों एवं उपदेशों को दिया था, उन्हीं का अध्ययन इस शोध पत्र में किया गया है। साथ ही साथ महर्षि द्वारा प्रतिपादित वैदिक शिक्षा प्रणाली" अर्थात् "आर्ष शिक्षा पद्धति' का भी विशद् एवं गहन अध्ययन किया गया है तथा वर्तमान समय में इसकी 'प्रासंगिकता' एवं उपादेयता का भी अवलोकन किया गया है ।

शोध अध्ययन के उद्देश्य-

प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य स्वामी दयानन्द सरस्वती के दार्शनिक विचारों के शैक्षिक निहितार्थ और वर्तमान भारतीय सन्दर्भ में उनकी प्रासंगिकता का पता लगाना है। इस शोध पत्र में ऋषि दयानन्द सरस्वती के शैक्षिक योगदानों की उपयोगिता एवं महत्व को निर्धारित करने का प्रयास किया गया है।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध पत्र में ऐतिहासिक विधि का प्रयोग किया गया है। इस विधि का सम्बन्ध भूत से है तथा यह भविष्य को समझाने के लिए भूत का विश्लेषण करता है। मानव की उपलब्धि का पूर्ण सही और अर्थपूर्ण अभिलेख इतिहास कहलाता है। यह केवल कुछ घटनाओं की सूची मात्र नहीं होता अपितु एक विशेष समय एवं स्थान पर घटित मानव-जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का एक सत्य, सुनियोजित एवं परीक्षित अभिलेख होता है। इस इतिहास का प्रयोग भूतकाल की पृष्टभूमि में वर्तमान को समझने एवं भविष्य के लिए पूर्व कथन करने के लिए किया जाता है जिससे भविष्य के सम्बन्ध में उचित निर्णय करने में सरलता हो सके।

स्वामी दयानन्द सरस्वती पुनर्जागरण मे पुरोधा थे। उन्होने अपनी कॉन्तिकारी आभा का परिचय समय-समय पर राष्ट्र को सामाजिक परिवर्तनों के

द्वारा दिया। वे उत्कृष्ट शिक्षा शास्त्री भी थे। उन्होने पुरातन वैदिक संस्कृति पर आधारित भारतीय शिक्षा व्यवस्था का सर्मथन किया तथा शिक्षा एवं दर्शन का अद्‌भुत समन्वय अपनी आर्ष शिक्षा पद्धिति मे प्रस्तुत किया। उनके द्वारा प्रस्तुत आर्ष शिक्षा पद्धति विश्व की व्यापकता शिक्षा पद्धति है जिसमे उन्होने समस्त प्रकार की व्यावहरिक विधाओं का प्रयोग किया है। स्वामी जी ने शैक्षिक एवं मानवीय मूल्यों को भारतीय संस्कृति की पुरातन विशेषताओं का आदर करते हुए नवीन मूल्यों के सूत्र अपने चिन्तन दर्शन में पिरोये हैं। स्वामी दयानन्द ने न केवल आर्य समाज के संस्थापक, समाजसुधारक और धर्ममर्मज्ञ है,वरन गुरूकुलों की स्थापना कर उन्होने शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिर्वतन किया। उन्होने आर्षशिक्षा पद्धति मे वेद, उपनिषद, वेदान्त तथा स्मृतियों के शिक्षण पर बल दिया।

स्वामी दयानन्द का शैक्षिक विचार-

स्वामी दयानन्द सरस्वती यह जानते थे कि शिक्षा समाज की आधारशिला है। समाज में जिस प्रकार की शिक्षा होगी, उसी प्रकार से समाज का निर्माण होगा। अत: इस बात का प्रयत्न किया गया, कि शिक्षा का उद्देश्य समाज के अनुकूल हो और उसके माध्यम से मनुष्य का सर्वागीण विकास करना है जिसमें शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक एवं व्यावसायिक ज्ञान का विकास सम्मिलित है।

स्वामी जी ने अपने सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास के प्रारम्भ में लिखा है-'अथ शिक्षां प्रवदयाम:।' उन्होंने शिक्षा को ज्ञान माना। शिक्षा शब्द में सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड को ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित वैचारिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक अर्थात् समस्त मानव हितकर प्रवृतियां समाहित हैं। स्वामी दयानन्द ने वैदिक भारत की सभ्यता और संस्कृति पर आधारित आधुनिक परिवेश में शिक्षा को बहुत अधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार व्यक्ति समाज और राज्य की उन्नति तथा सुख समृद्धि उसी दशा में सम्भव है, जिसमें सब स्त्री-पुरुष सुशिक्षित हों, सबको धर्म-अधर्म और कर्तव्य अकर्तव्य का समुचित ज्ञान हो। और विद्या तथा विज्ञान को सबके हित कल्याण के लिए प्रयुक्त किया जाये।[१]

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपनी पुस्तक व्यवहार भानु में शिक्षा के अर्थ को बताया है कि - "जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्यादि दोषों को छोड़ के सदा आनन्दित हो सके वह शिक्षा कहाती है"।[२]

महर्षि दयानन्द का शिक्षा सम्बन्धी विचार आदर्शवादी था । वे शिक्षा को केवल विद्यालयी शिक्षा से नहीं जोड़ते थे, जिसे निश्चित समय और पाठ्यक्रम के अन्तर्गत प्राप्त किया जाता है वरन् जीवन पर्यन्त चलने वाली शिक्षा को वे महत्व देते थे। इस शिक्षा का विकास गर्भ से लेकर मृत्युपर्यन्त तक होता है जैसा कि महर्षि दयानन्द ने अपने सत्यार्थ प्रकाश में उल्लिखित किया है कि 'माता वह धन्य है जो गर्भाधान से लेकर जबतक विद्या पूरी न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करें।'[३]

महर्षि दयानन्द ने शिक्षा को विद्या के रूप में जाना तथा उसे परिभाषित किया है-"जिससे मुनष्य विद्या आदि शुभगुणों की प्राप्ति और अविद्यादि दोषों को छोड़ के सदा आनन्दित हो सके, वह शिक्षा कहलाता है।[४]

महर्षि दयानन्द जी ने शिक्षा की परिभाषा को और अधिक स्पष्ट करने क लिए शिक्षा (विद्या) के मूलभूत उद्देश्य तत्वों की थी परिभाषा दी है।

जिससे पदार्थ यथावत जानकर न्याययुक्त कर्म किये जावे वह विद्या और जिससे किसी पदार्थ का यथावत ज्ञान न होकर अन्याय रूप कर्म किये जाय वह अविद्या कहलाती है।

स्वामी जी के ग्रन्थों के अवलोकन से शिक्षा शब्द का अभिप्राय इस प्रकार व्यक्त किया गया है।

शिक्षा- जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटे, उसको शिक्षा कहते हैं। षजिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्यादि दोषों को छोड़ के सदा आनन्दित हो सकें, वह शिक्षा कहलाती है।[५]

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

(१) आत्मानुभूति -

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने प्राचीन ऋषियों के समान ही यह बताया कि शिक्षा का प्रथम उद्देश्य आत्मानुभूति है। आत्मानुभूति का अर्थ है- अपनी आत्मा को पहचानना। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए स्वामी जी ने बालक तथा बालिकाओं को अनिवार्य शिक्षा प्रदान करके व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास पर बल देना चाहिए, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आत्मा के विषय में सच्चा ज्ञान प्राप्त हो सकें।

(२) वैदिक धर्म तथा संस्कृति का पुनरुत्थान-

स्वामी जी के समय में लोगों को पौराणिक हिन्दू धर्म में अविश्वास उत्पन्न हो जाने के कारण ईसाई धर्म को स्वीकार करते जा रहे थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने लोगों को इस धर्म संकट से बचानें के लिए अपनी शिक्षा का दूसरा उद्देश्य- वैदिक धर्म तथा संस्कृति का पुनरुत्थान की घोषणा की और उनका विश्वास था कि शिक्षा प्राप्त करने से लोगों को अपने प्राचीन वैदिक धर्म तथा संस्कृति का ज्ञान हो जायेगा, जिससे कि वे फिर ईसाई बनना पसन्द नहीं करेंगे।

(३) शारीरिक विकास

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य शारीरिक विकास है। स्वामी जी ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि प्रत्येक बालक तथा बालिका को अपने विद्या अध्ययन काल में ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। स्वामी व्यक्ति को शारीरिक रूप से बलिष्ठ होना पसन्द करते थे। उनका मत था कि शिक्षा संस्थाओं को अलग से शारीरिक शिक्षा देना चाहिये। उन्होंने यजुर्वेद भाष्य में लिखा है कि अध्यापक तथा उपदेशक बालकों को ऐसी शिक्षा है जिससे वे शुद्ध आत्मा, नीरोग शरीर तथा धर्मयुक्त कर्म करने वाले हों।[६]

(४) मानसिक विकास

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के अनुसार शिक्षा का चौथा उद्देश्य बालक का मानसिक विकास है। स्वामी जी ने बताया कि बालक को मानसिक दृष्टि से विकसित करने के लिए माता को पाँच वर्ष तथा पिता को आठ वर्ष की आयु तक घर पर ही शिक्षा देनी चाहिए। इसके पश्चात् बालक को पाठशाला भेजना चाहिए।

(५) नैतिक विकास

स्वामी दयानन्द के अनुसार शिक्षा का जो उद्देश्य सर्वोपरि था, वह नैतिक उद्देश्य का था, उनकी शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य छात्रों के नैतिक गुणों का विकास करना था, जिससे कि एक अच्छे चरित्र का निर्माण हो सके। उनके अनुसार 'नैतिकता का अर्थ-न्यायोचित कार्य था।' उनके शब्दानुसार कहने, सुनने, धर्मोपदेश देने, पढ़ने या पढ़ाने का केवल यही उद्देश्य है कि व्यक्ति न्यायोचित कार्य करें।[७]

स्वामी दयानन्द सरस्वती का विश्वास था कि व्यक्ति सत्य का अनुसरण उसी समय कर सकेगा, जब उसका नैतिक विकास हो जाता है।

स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति प्राप्त करना है। इस मुक्ति के लिए वे सभी प्रकार के शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास को आवश्यक मानते हैं। शिक्षा के उद्देश्य में वे चरित्र निर्माण को अधिक महत्व देते हैं। उन्होंने धर्माचरण पर बल दिया। सद्गुणों के अभाव में कोरा ज्ञान व्यर्थ होता है। इसलिए शिक्षा के द्वारा अहिंसा, सदाचार परोपकार

आदि गुणों का संवर्धन किया जाना चाहिए। शिक्षा में सद्गुणों की आवश्यकता सम्बन्धी विचारों का विशेष महत्व है।[८]

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठ्यक्रम-

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में शिक्षण संस्थाओं के लिए एक निश्चित पाठ्यक्रम का सुझाव दिया है और उस पाठ्यक्रम में वेदों का अध्ययन, धर्मग्रन्थों का परिशीलन एवं संस्कृति अध्ययन की प्रधानता हो । जिससे व्यक्ति में अध्यात्मिक मूल्यों का विकास, धार्मिक मूल्यों का विकास, चारित्रिक मूल्यों का विकास हो सके। स्वामी दयानद सरस्वती प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के प्रबल प्रतिपादक होने के कारण वे वैदिक काल की गुरुकुल अध्ययन पद्धति के समर्थक थे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठ्य विषय में संस्कृत भाषा, वेद वेदांग तथा शास्त्रों को प्रमुख स्थान दिया गया है। साथ ही चिकित्सा शास्त्र, राजनीति, युद्ध विद्या, शिल्प विद्या, भौतिक विज्ञान, गणित, ज्योतिष आदि अध्ययनों को महत्व प्राप्त था। अंग्रेजी भाषा के परिचय की भी महर्षि ने उपेक्षा नहीं की। वे यह मानते थे कि बचपन में देवनागरी अक्षरों के साथ-साथ अन्य देशीय भाषाओं (जिसमें अंग्रेजी भी अन्तर्गत हो सकती है) का भी ज्ञान प्राप्त कराना प्रारम्भ किया जाये। पर किसी विदेशी भाषा को पढ़ाना एक बात है, और उसे शिक्षा का माध्यम बनाना उससे भिन्न बात है।[९]

महर्षि द्वारा जो पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया, उसमें संस्कृत भाषा, वैदिक वांग्डमय तथा प्राचीन शास्त्रों के अध्ययन के साथ-साथ नये ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की भी सुचारू रूप से व्यवस्था की गयी है।

महर्षि इस मामले में बहुत सतर्क थे कि कहीं नये ज्ञान विज्ञान को पढ़ने से विद्यार्थी यह न समझने लगे कि ये सब पाश्चात्य लोगों की देन है। महर्षि ने इस तथ्य को दृष्टि में रखकर अपनी शिक्षा प्रणाली में विज्ञानों को आयुर्वेद, धनुर्वेद, अर्थवद आदि नामों से सम्मिलित किया- स्लोपेथी मिलिटरी साइन्स, टैक्नोलॉजी, सदृश नामों से नहीं।[१०] स्वामी दयानन्द का विचार था कि"जब विद्यार्थी यह समझकर भौतिक विज्ञानों का अध्ययन करेंगे कि प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने भी वैज्ञानिक क्षेत्र में समुचित उन्नति की थी, और जो ज्ञानविज्ञान की पुरातन धारा का पूरक मात्र है, तो उसमें किसी प्रकार से हीन भावना प्रादुर्भूत नहीं हो पायेगी।[११]

आचार्य के कर्त्तव्य और लक्षण-

महर्षि जी ने सत्यार्थ प्रकाश में बड़े ही स्पष्ट शब्दों में आचार्य के गुणों पर प्रकाश डालते हुए कहा है- "जो विद्यार्थियों को अत्यन्त प्रेम से धर्मयुक्त व्यवहार की शिष्टतापूर्वक विद्या देने के लिए तन, मन और धन से प्रयत्न करें, उसको आचार्य कहते है।[१२]

महर्षि की शिक्षा प्रणाली में चरित्र निर्माण पर अत्यधिक बल दिया गया। इसीलिए अध्यापकों और अध्यापिकाओं के लिए विद्वान होने के अतिरिक्त सदाचारी होना आवश्यक माना गया था। महर्षि के शब्दों में 'जो अध्यापक पुरूष व स्त्री दुष्टाचारी हो उनसे शिक्षा न दिलावें। किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त होवे वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं।'[१३]

महर्षि जी पुरातन मत पर विश्वास नहीं करते थे की गुरू के वचन का बिना विचारे अनुपालन करना चाहिए। वे इस संदर्भ में कहते हैं कि-हे शिष्य! जो तेरे माता-पिता, आचार्य आदि हम लोगों के अच्छे धर्मयुक्त उत्तमकर्म है, उन्हीं का आचरण तू कर और जो हमारे दुष्ट कर्म हो, उनका आचरण कभी मत कर।[१४] "महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में आचार्यों के व्यवहारों का उल्लेख बहुत स्पष्ट शब्दों में किया है और कहा है कि उन्हें

विद्यार्थियों के अच्छे आचरण पर जहाँ उन्हें प्रशंसित करें वहीं बुरे आचरण पर दण्डित करें।[१५]

यजुर्वेद का प्रमाण देते हुए महर्षि जी कहते हैं कि– "अध्यापक जन गुण ग्रहण कराने ही के लिए शिष्यों को ताड़ना देते हैं।[१६]

स्वामी दयानन्द सरस्वती का मानना था कि "अध्यापक लोग ऐसा यत्न किया करे जिससे विद्यार्थी लोग सत्यवादी, सत्यमानी, सत्यकारी, जितेन्द्रिय सुशील शुभ गुण युक्त शरीर एवं आत्मका पूर्ण बल बढ़ा के समग्र वेदादि शास्त्रों में विद्वान हो। स्वामी जी का विचार है कि शिक्षक को सतत् जागरूक रहकर बालक को अपने अनुरूप बुलाना चाहिए। अपनी आंतरिक शक्तियों एवं अन्तरात्मा के विचारो को छात्रों की अन्तरात्मा में प्रविष्ट कराना चाहिए। उसे छात्रों के तरूणाई की सभी समस्याओ का निदान करना चाहिए। आचार्य को सच्चा संतोष तभी होता है जब वह शिष्य को अपनी कृति के रूप में अपने जैसा एवं अपने से भी अच्छा बना सकने में सफल होता है। गुरू के परिश्रम की सार्थकता इसी रचना में निहित है उसी तरह छात्र को भी अपने गुरु का सम्मान करना चाहिए उसकी आज्ञा का पालन एवं सेवा सुश्रुषा करनी चाहिए वस्तुत: स्वामी जी ने प्राचीन काल में गुरू शिष्य की आदर्श परम्परा को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है।

स्वामी जी के द्वारा प्रस्तावित आर्ष शिक्षा पद्धति विश्व की व्यापकतम शिक्षा पद्धति है जिसमे उन्होने बालक को शिक्षित करने के साथ ही साथ रोजगार परक शिक्षण पर बल दिया है जिससे बालक शिक्षित होकर बेरोजगारी की पंक्ति में न खडा होकर उद्यमी बने। उनकी शिक्षा पद्धति ने अनुसार शिक्षित होकर बालक के अनुशासन हीनता, चारित्रिक पतन, मानवीय मूल्यो में हास विभिन्न प्रकार के सामाजिक व्यभिचार इत्यादि दुर्गणों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस प्रकार स्वामी जी ने समाज को नूतन आयाम दिलाया।

इस प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती की दार्शनिक पृष्ठभूमि तथा उनकी वैदिक विचार धारा को आत्मसात् करते हुए उनके शिक्षा दर्शन के अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में संशोधन कर शिक्षा की व्यवस्था की जाय तो समाज एवं राष्ट्र में व्याप्त सभी प्रकार की समस्याओं का चिर स्थायी समाधान सम्भव हो सकेगा। इस प्रकार मानव को महामानव एवं राष्ट्र को 'विश्व गुरू' का स्वामी दयानन्द सरस्वती का दिव्य स्वप्न साकार सिद्ध होगा।

अत: महर्षि दयानन्द की आर्ष शिक्षा पद्धति प्राचीन काल में तो प्रासंगिक थी ही वर्तमान समय में भी प्रासंगिक है और आने वाले समय में भी प्रासंगिक होगी। यही इस शोध पत्र की उपयोगिता एवं प्रासंगिकता को बढ़ाती है।

निष्कर्ष–

स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का विश्लेषण करने के पश्चात् यह निष्कर्ष सरलता से निकाला जा सकता है कि स्वामी जी एक उच्च कोटि के शिक्षा चिन्तक के रूप में सामने आते है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के शैक्षिक विचारों से प्राप्त निष्कर्ष निम्न हैं–

- स्वामी जी ने मनुष्यों के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित किया है, उनके द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक उद्देश्यों की शिक्षा इस भौतिकवादी समय में अत्यन्त प्रासंगिक है।
- स्वामी जी के विचारों के मूलभूत तत्वों को आधुनिक पाठ्यक्रम में समावेशित कर उसे अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।
- स्वामी जी बाल शिक्षा, माता–पिता व परिवार के संरक्षण में देने के पक्ष में है। उनकी यह ध ारणा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सत्य है। अत: जब बाल्यावस्था में ही बच्चे को कान्वेन्ट में दाखिल कर दिया जाता है, तो उस समय स्वामी जी के

विचार सही प्रतीत होते हैं।

- ⇨ स्वामी जी कठोर अनुशासन के पक्षपाती हैं।
- ⇨ गुरु शिष्य का सम्बन्ध पिता-पुत्र का होना चाहिए।
- ⇨ विद्यार्थी को अनुशासित, संयमित, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला एवं विद्याविलासी होना चाहिए।
- ⇨ राष्ट्रीय भावों को परिपुष्टि करने वाली शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है।

सारत: स्वामी जी के शैक्षिक विचारों की महत्ता का आकलन करना सहज नहीं है। यह सही है कि महर्षि ने शिक्षा विषयक जिन सिद्धान्तों का निरूपण किया था वे प्राचीन शिक्षा पद्धति के अनुसार हैं। पर साथ ही इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि वर्तमान परिस्थितियों में उन्हें प्रयुक्त करने के जो साधन निर्दिष्ट किये वे उनके गम्भीर चिन्तन के परिणाम थे। इसमें सन्देह नहीं कि महर्षि एक प्रगतिशील शिक्षाशास्त्री थे एवं संसार के उपकार एवं मानवमात्र के कल्याण के लिए उन्होंने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये सही ढंग की शिक्षा का उसमें सर्वप्रथम स्थान है।

सन्दर्भ-सूची :-

१. सत्यार्थ प्रकाश स्वामी दयानन्द पृ० ९२४
२. व्यवहार भानु पृष्ठ - ७
३. प्रशस्ता धार्मिकी विदूषी माता, विघते, यस्य स: मातृमान्-सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय समुल्लास पृ0 २०
४. व्यवहार भानुपृष्ठ-१७४
५. दयानन्दीय लघुग्रन्थ संग्रह व्यवहार भानु, पृ0 ५०१
६. यजुर्वेद, पृ0 २० भावार्थ।
७. स्वामी दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश।तृतीय समु०पृ. ७२
८. डा० भवानी लाल महर्षि दयानन्द एवं विवेकानन्द पृष्ठ २०
९. सत्यकेतु विद्यालंकार एवं हरिदत्त वेदालंकार, आर्य समाज का इतिहास। पृ0 ४८२
१०. वहीं पृष्ठ ४८३
११. वहीं पृष्ठ ४८३
१२. व्यवहार भानु पृष्ठ-१७५
१३. महर्षि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश द्यतृतीय समुल्लास, पृ0 २६
१४. संस्कार विधि, वेदारम्भ संस्कार, १०४
१५. व्यवहार भानु पृष्ठ-२७७
१६. यजुर्वेद भाष्य ६.१५

- सहायक आचार्य (संस्कृत),
राजकीय महाविद्यालय, सरकाघाट,
हिमाचल प्रदेश

(प्रश्न) वेद ईश्वरकृत हैं अन्यकृत नहीं। इस में क्या प्रमाण ?

(उत्तर) जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्धगुणकर्मस्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुण वाला है वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल कथन हो वह ईश्वरकृत; अन्य नहीं। और जिस में सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तों के और पवित्रत्मा के व्यवहार से विरुद्ध कथन न हो वह ईश्वरोक्त। जैसा ईश्वर का निर्भ्रम ज्ञान वैसा जिस पुस्तक में भ्रान्तिरहित ज्ञान का प्रतिपादन हो; वह ईश्वरोक्त। जैसा परमेश्वर है और जैसा सृष्टिक्रम रक्खा है वैसा ही ईश्वर, सृष्टि, कार्य, कारण और जीव का प्रतिपादन जिस में होवे वह परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है और जो प्रत्यक्षादि प्रमाण विषयों से अविरुद्ध शुद्धात्मा के स्वभाव से विरुद्ध न हो; इस प्रकार के वेद हैं।

- महर्षि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, सप्तम समुल्लास

राष्ट्रनेता महर्षि दयानन्द का राजधर्म

❑ डॉ. शिव कुमार...✍

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन में उन्नीसवीं सदी के पुनर्जागरण के सूत्रधार राष्ट्रनेता स्वामी दयानन्द जी का राजनीतिक दर्शन सर्वथा मौलिक अद्वितीय एवं प्रासंगिक है। उनके राज-दर्शन में वे सभी शाश्वत तत्त्व निहित है, जिनके द्वारा वर्तमान समस्याओं का समाधान सम्भव है। स्वामी दयानन्द आधुनिक भारतीय राजशास्त्र प्रणेताओं में मूर्धन्य है, इन्होंने राष्ट्रवादी चिन्तन को आध्यात्मिकता के साथ जोड़ते हुए भारतीयों में राष्ट्रप्रेम, स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग, स्वभाषा हिन्दी, स्वधर्म वैदिक धर्म, स्वराज्य एवं स्वसंस्कृति व सभ्यता के प्रति अनुराग उत्पन्न किया, साथ ही विदेशी राजनीतिक व मानसिक दासता के प्रति घृणा और विराग भी उत्पन्न किया। इसीलिए वे अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के ८ वें समुल्लास में लिखते हैं'- कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मत-मतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायी नहीं है।

यह सत्य है दयानन्द जी ने सक्रिय राजनीति में कभी भाग नहीं लिया तथापि उनके चिन्तन ने भारतीय राष्ट्रवाद को उसी प्रकार प्रेरणा प्रदान की जैसे महात्मा सुकरात प्लेटो और अरस्तू के चिन्तन ने यूनान को मैकियावेली ने इटली के पुनर्जागरण को थॉमस हाब्स और जॉन लॉक के दर्शन ने इग्लैण्ड को रुसों ने फ्रांस की राज्य क्रान्ति को जर्मनी के होगेल तथा काण्ट ने यूरोपीय राष्ट्रवाद को एवं कार्ल मार्क्स के चिन्तन ने सोवियत रूस की क्रान्ति को प्रेरणा प्रदान की है। महर्षि की राष्ट्रप्रेरणा से प्रेरित होकर स्वामी श्रद्धानन्द लाला लाजपतराय जैसे अनेक क्रान्तिदूतों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने तात्कालिक राजनीति में ऋषि के मन्तव्यों के अनुकूल चलकर एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों एवं प्रवचनों में राज्य विषयक चिन्तन के लिए राजध र्म शब्द का ही प्रयोग किया है।

सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में राजधर्म को परिभाषित करते हुए कहते हैं - जिस प्रकार का राजा होना चाहिए और जैसे इसके होने का सम्भव तथा जैसे इसको परमसिद्ध प्राप्त होवे उसको सब प्रकार कहते हैं।

वस्तुतः महर्षि के राजनीतिक चिन्तन के आधार वेद, मनुस्मृति, बृहस्पति, राजधर्मसूत्र, विदुरप्रजागर नीति तथा महाभारत आदि आर्ष ग्रन्थ रहे हैं। महर्षि यजुर्वेद भाष्य (यजु. ३०/१) में राजधर्म को यज्ञ बता रहे हैं। उन्होंने राजविद्या को श्रेष्ठ योग मानते हुए राजनीति के प्रयोगकर्ता को ही समस्त मनुष्यों का माता-पिता, मित्र और रक्षक माना है। महर्षि ने अपने वेदभाष्यों में धर्मनिष्ठ राजनीति के सिद्धान्त पद-पदपर दर्शाये हैं। उनको यह ज्ञात था कि जब भी राजनीति का धर्म एवं नैतिकता से विच्छेद हुआ है उसका परिणाम स्वार्थ कपट, छद्म, हिंसा तथा विश्वयुद्ध आदि हुआ है। स्वामी दयानन्द ने वंशानुगत राजत्व के सिद्धान्त का प्रबल प्रतिवाद किया है। वे घोषणा करते हैं राजा पद हेतु राजवंश का होना आवश्यक नहीं है, वे ऋग्वेद भाष्य करते हुए कहते हैं-हे राजन्! अपना पुत्र भी बुरे लक्षणों वाला हो तो अधिकार नहीं देने योग्य है।'

अन्यत्र भी उनका निर्देश है कि दस कामज एवं आठ क्रोधज दुर्व्यसनों वाले मनुष्य को चाहे वह राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही क्यों न हो राजा नहीं बनाना चाहिए। अतः स्पष्ट है महर्षि दयानन्द के राजदर्शन में राजत्व की प्राप्ति वंशानुगत न होकर योग्यता तथा राजोचित गुणों पर निर्भर करती है।

राजा का कर्तव्य बताते हुए महर्षि सर्वोपरि कर्तव्य प्रजा का पालन, रंजन, संरक्षण व संवर्द्धन करना बताते है। दूसरा कर्तव्य प्रजा के समस्त प्रकार के भय को शान्त करते हएु उनके जीवन, स्वतन्त्रता एवं सम्पत्ति की सुरक्षा करना बताया है।

आन्तरिक रूप से राष्ट्रद्रोहियों द्वारा राष्ट्र की दुर्बल एवं खण्ड-खण्ड करने की गतिविधियों एवं बाह्यरूप से पड़ोसी या शत्रुराष्ट्रों के आक्रमण का भय प्रजा को अशान्त एवं आतंकित करता रहता है इन दोनों प्रकार की आपदाओं से प्रजा को भयमुक्त करना राजा का आजीवन व्रत होना चाहिए। महर्षि की संकल्पना एक आदर्श की प्रतिमूर्ति व्यक्ति को ही राजा पद हेतु योग्य स्वीकार करती हैं। महर्षि लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था पर ही विश्वास करते थे, इसीलिए अपने वेदभाष्य में राजा का चयन प्रजा द्वारा किए जाने के संकेत देते है। वे यजुर्वेद भाष्य (यजु. भा. ६/२७) में लिखते हैं - 'प्रजाजनों को यह उचित है कि आपस में सहमति कर किसी उत्कृष्ट गुणयुक्त सभापति को राजा माने।'

स्वामी दयानन्द ने राजा के सहायकों में चार प्रकार के अधिकारियों का उल्लेख किया है - राज्याधिकारी, सेनाधिकारी, न्यायाधिकारी और कोषाधिकारी। इनके अधीन अन्य अधिकारी व कर्मचारी होने चाहिए। इन उच्चपदाधिकारियों की नियुक्ति उत्तम पुरुषों में से की जानी चाहिए, जिससे धन, सेना, न्याय तथा राज्य की वर्तमान में रक्षा और भविष्य में उन्नति हो सके। राज्य सत्ता की प्रमुख इकाई मन्त्रिगण कैसे हो तो ऋषि उनका धर्मनिष्ठ, कर्मनिष्ठ, स्वराष्ट्रभक्त तथा प्रजापालक होना अनिवार्य समझते हैं। इसके साथ ही राज्य की सुरक्षा, अभिवृद्धि, प्रजा-पालन, वैदेशिक नीति का सफल संचालन तथा पुरुषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति का प्रयास करना भी मन्त्रियों का कार्य बताया है। वस्तुतः महर्षि मन्त्रियों को वोट की राजनीति से ऊपर उठाकर लोक कल्याण के लिए समर्पित होने तथा राजनीति में सत्य, न्याय, धर्म एवं जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए प्रेरित करना चाहते हैं जो कि आज की परिस्थिति में भी प्रासंगिक है।

महर्षि दयानन्द के राजधर्म की तात्कालिक परिस्थिति में भी उपादेयता को दर्शाते हुए मैक्समूलर कहते है - दयानन्द की धार्मिक शिक्षा में भी सशक्त राष्ट्रीय अनुभूति है।

इस प्रकार दयानन्द के राष्ट्र समाज और मानवता के प्रति समर्पित व्यक्तित्व के चिन्तन का वर्णन अत्यन्त दुष्कर कार्य है। वर्तमान में दयानन्द के राजनीतिक दर्शन के समादर और क्रियान्वयन में ही देश और विश्व का कल्याण निहित है।

- गुरुकुल पौन्धा, देहरादून

ईश्वर

प्रथम **'ईश्वर'** कि जिस के ब्रह्म परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिस के गुण, कर्म, स्वाभाव पवित्र हैं। जो सर्वज्ञ निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है; उसी को परमेश्वर मानता हूँ।

- महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश

महर्षि दयानन्द एवं उनके दार्शनिक चिन्तन

❑ डॉ. सुभाष चन्द्र शास्त्री...✍

युगपुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती की २००वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में आर्य जगत् के विभिन्न संस्थाओं में विभिन्न विशेष कार्यक्रम हो रहे हैं। उसी क्रम में 'आर्ष-ज्योतिः' पत्रिका भी अपना विशेषांक प्रकाशित कर अपनी विशिष्ट भूमिका निभा रही है। इस हेतु पत्रिका-स्वामी एवं सम्पादकों का बहुत-बहुत आभार एवं धन्यवाद।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का जब इस दुनियाँ में आगमन हुआ उस समय अनार्ष शास्त्रों, अवैदिक विचारों एवं अदार्शनिक चिन्तनों का अधिकता में बोलबाला था। सामाजिक एवं शैक्षिक स्थिति भयावह थी। वैसे तो ऋषि दयानन्द की पारिवारिक पृष्ठभूमि वैदिक होने के कारण उन्हें संस्कृत वेद, व्याकरण एवं उपनिषद् आदि ग्रन्थों का अध्ययन था। परन्तु सद्गुरु ब्रह्मर्षि विरजानन्द जी के पास पहुँचकर उन्होंने परिष्कृत पाठ को पढ़ा जो कि आर्ष ज्ञानपरम्परा का संवाहक था तथा वैदिक था। उन्होंने तीन वर्ष के अल्पकाल में ही अपने पूर्व संस्कारों के कारण सभी श्रेष्ठ आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया एवं उनमें निष्णात हो गए। यद्यपि गुरु विरजानन्द नेत्रविहीन थे परन्तु प्रज्ञाचक्षु थे। उन्हें पथभ्रष्ट राष्ट्र की चिन्ता थी। अपने सच्छिष्य दयानन्द से नयनाश्रुवाष्पस्तम्भितकण्ठ एवं करुणस्वर में कहा- वत्स! भारतवर्ष में अविद्यान्धकार फैला हुआ है उसे तुम ही अपनी 'आर्ष ज्योति' से प्रकाश फैलाकर दूर कर सकते हो। गुरु का आदेश पाकर सच्छिष्य ऋषि दयानन्द भी दृढ़संकल्पित होकर कार्यक्षेत्र में चल पड़े।

ऋषि दयानन्द के विषय में गीता का वह श्लोक मुझे प्रासंगिक लगता है जिस श्लोक को ऋषि स्वयं अवैदिक तो मानते हैं परन्तु समाधानात्मक टिप्पणी भी करते हैं-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।[१]

कि जब-जब अधर्म का नाश होता है तब-तब मैं जन्म लेता हूँ। इस अर्थ को अवैदिक मानते हुए अपनी टिप्पणी करते हैं कि- जब-जब अधर्म का नाश होता है तब-तब मैं जन्म लेकर साधुओं की रक्षा और दुष्टों का नाश करूँ। यह ठीक है।

वैसे करुण हृदय परमेश्वर भी विकराल परिस्थितियों में समाज सुधार एवं राष्ट्र धर्म निर्वहन हेतु किसी विशिष्ट व्यक्ति को जन्म-लाभ देते ही हैं। अतः इस श्लोक के आधार पर हम कह सकते हैं कि- जब-जब भी धर्म की हानि होती है श्रीराम, श्रीकृष्ण एवं ऋषि दयानन्द जैसे धर्मधुरन्धर व्यक्ति का जन्म होता है, और वे अपने जन्म से इस संसार को आलोकित करते हैं, सत्पथप्रदर्शक बनते हैं।

अपने गुरु द्वारा आदिष्ट पथ में आकर देश के पथभ्रष्ट लोगों से ऋषिवर ने अपने दार्शनिक अन्दाज में कहा- "ऐ भोले लोगों! यदि तुम उत्तम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो तो वेदों की ओर लौटो। क्योंकि वेद ही सब सत्य विद्याओं की पुस्तक हैं।"

इसी वैदिक चिन्तनधारा में ऋषि ने अपनी जिस दार्शनिक पद्धति को दर्शाया है उनमें ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका एवं सत्यार्थ प्रकाश विशेष रूप से हैं। उनके वेदभाष्यों में भी मन्त्रों की दार्शनिक व्याख्याएँ की हैं। यहाँ पर ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के सन्दर्भ में उनके दार्शनिक चिन्तन का अध्ययन करते हैं।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका को प्रारम्भ करते हुए ईश्वरप्रार्थना विषय में ऋषि अपने प्रियमन्त्र- **ओ३म्, विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव॥**[२] इस मन्त्र की व्याख्या में ऐसा प्रतीत होता है उनके रोम-रोम ईश्वर का वास है। वे लिखते हैं-

हे सत्यस्वरूप! हे विज्ञानमय! हे सच्चिदानन्द स्वरूप! हे अनन्तसामर्थ्ययुक्त! हे परमकृपालो! हे अनन्तविद्य! हे विज्ञानविद्याप्रद देव! हे परमेश्वर आप सूर्यादि सब जगत् का और विद्या का प्रकाश करने वाले हैं तथा सब आनन्दों के देने वाले हैं। आप सब जगत् को उत्पन्न करने वाले हैं। हमारे जो दु:ख है, दुष्ट गुण हैं उन्हें दूर कीजिए और जो दु:ख रहित कल्याण सुख का मार्ग है वह हमें प्राप्त कराइये।[३]

इसी प्रकरण में **"य आत्मदा बलदा:"**[४] मन्त्र के दार्शनिक स्वरूप को प्रकट करते हुए लिखते हैं- जो जगदीश्वर अपनी कृपा से ही अपने आत्मा का विज्ञान देने वाला है, जिसकी उपासना सब विद्वान् लोग करते हैं। जिसका आश्रय लेना मोक्ष आदि सुख का कारण है, जिसकी अकृपा ही जन्ममरण दु:खों का हेतु है अर्थात् ईश्वर का उपदेश जो सत्यविद्या, सत्यधर्म और सत्यमोक्ष है उनको न मानना दु:खों का कारण है।[५] अत: ऋषि ने इन मन्त्रों का संयोजन ईश्वरस्तुतिप्रार्थना उपासना प्रकरण में किया है जिससे सभी मनुष्य इन मन्त्रों का पाठ करते हुए ईश्वर में समर्पित हो जाएँ।

ऋषि के जीवन दर्शन से ज्ञात होता है कि वे वेदादि सच्छास्त्रों का भाष्य करने से पूर्व ब्रह्ममुहूर्त्त में घण्टों बैठकर चिन्तन किया करते थे। उसी चिन्तनधारा में जिस प्रकार अग्नि वायु आदित्य एवं अङ्गिरा ऋषियों में वेद उतर आये उसी प्रकार ऋषि दयानन्द में भी वेदों के अर्थ स्वयमेव उतर आते थे।

वेदोत्पत्ति विषय में लिखते हैं- जिस प्रकार एक पिता अपनी सन्तान पर प्रेम एवं कृपा करता है उसी प्रकार परमकारुणिक ईश्वर ने भी वेद का ज्ञान देकर हम पर कृपा की है।[६]

वेद एवं संसार के निर्माण के नित्यत्व पर विचार करते हुए वे ऋग्वेद का मन्त्र उद्धृत करते हुए कहते हैं-**सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।**[७]

जैसे इस कल्प की सृष्टि में शब्द, अक्षर, अर्थ और सम्बन्ध वेदों में है इसी प्रकार पूर्व काव्य में थे और आगे भी होंगे क्योंकि जो ईश्वर की विद्या है, ज्ञान है, वह नित्य है, उसकी वृद्धि, क्षय और विपरीतता कभी नहीं होती।[८]

मीमांसा दर्शनकार ने भी कहा है-**नित्यस्तु स्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात्।**[९] शब्द नित्य हैं, शब्द ब्रह्म वेद हैं, वे भी नित्य है। जो शब्द का उच्चारण किया जाता है, उसकी ही प्रत्यभिज्ञा होती है कि श्रोत्रद्वारा ज्ञान के बीच में वही शब्द स्थिर होता है और अर्थ ज्ञान होता है।[१०]

वैशेषिक दर्शनकार कहते हैं- **तद्वचनादाम्नायस्य प्रमाणम्**[११] वेद ईश्वरोक्त हैं, ईश्वर नित्य है अत: उसकी विद्या भी नित्य है।

योगदर्शन में पतञ्जलि जी भी कहते हैं- **स एष पूर्वेषामपि गुरु: कालेनानवच्छेदात्**[१२] अर्थात् जिन ऋषियों में वेदादि सच्छास्त्र प्रकट हुए थे उनके भी अनादि गुरु ईश्वर है।

वेदान्तदर्शन में व्यास जी लिखते हैं-

'शास्त्रयोनित्वात्'[१३] वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रणयनकर्त्ता ईश्वर ही है। वेदों के दार्शनिक विचारों का उल्लेख करते हुए वेदविषयविचार प्रकरण में लिखते हैं कि-

सर्वे वेदा: यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योम् इत्येतत्॥[१४]

सभी वेद जिस पद की व्याख्या करते हैं तपस्या और ब्रह्मचर्य जिस पद के लिए किया जाता है वह परमपद मोक्ष है उसी को प्राप्त करना ही

मुख्य लक्ष्य है। योगदर्शन के प्रसिद्ध दार्शनिक सूत्र का उल्लेख ऋषि करते हैं-

तस्य वाचकः प्रणवः[१५]

ईश्वर का मुख्य नाम ओ३म् है। **"प्रकृष्टतया नूयते स्तूयते इति प्रणवः" ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्।**[१६]

ऋषि इसकी दार्शनिक व्याख्या करते हुए कहते हैं- **ओमित्येद्यस्य नामास्ति तदक्षरम्। यन्न क्षीयते कदाचिद् यच्चराचरं जगदश्नुते व्याप्नोति तद् ब्रह्मैवास्तीति विज्ञेयम्।**[१७]

परम दार्शनिक विषय ब्रह्मविद्याविषय में लिखते हैं- सर्वाः (विद्याः) सन्ति मूलोद्देशतः। तत्रादिमा ब्रह्मविद्या।[१८]

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्।[१९]

अर्थात् जो सब जगत् का बनाने वाला है, चेतन और जड़ का पालन करने वाला है। मनुष्यों को उत्तम बुद्धि और आनन्द से तृप्त करने वाला है उस परमपिता परमेश्वर को अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं।[२०]

सृष्टिविद्याविषय में ऋग्वेद के प्रसिद्ध दार्शनिक सूक्त नासदीय सूक्त के मन्त्रों का उल्लेख करते हुए ऋषिवर लिखते हैं कि- जब यह कार्य सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी तब सर्वशक्तिमान् परमेश्वर और जगत् का कारण अर्थात् जगत् बनाने की सामग्री विद्यमान थी। उस समय तीनों गुणों से युक्त जो प्रधान कहलाता है वह भी नहीं था स्थूल जगत् के निवास का स्थान भी नहीं था।[२१] इन सभी वेदमन्त्रों के भावार्थ से यह दार्शनिक विचार प्रस्फुटित होते हैं कि तब ईश्वर के अलावा और कुछ भी नहीं था। अगले मन्त्र में परमेश्वर की सत्ता को प्रमाणित करते हुए ऋषि कहते हैं-

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे....।[२२]

हिरण्यगर्भ वह परमेश्वर है, वही सृष्टि से पूर्व विद्यमान था। वही पृथिवी सूर्य आदि दिव्य पदार्थों का रचयिता है उसी सुख स्वरूप ईश्वर की उपासना करनी चाहिए, अन्यों की नहीं।[२३] दार्शनिक सूक्त पुरुष सूक्त के मन्त्रों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं-

सहस्रशीर्षा पुरुषः[२४]

पुरुषः की व्याख्या करते हुए लिखते हैं- **'पुरि संसारे शेते सर्वमभिव्याप्य वर्त्तते स पुरुषः परमेश्वरः।'**[२५]

अर्थात् ईश्वर संसार के कण-कण में अणु-अणु में विद्यमान है। वह बिना पैर हाथ के सभी कार्य कर सकता है। कहा भी है-**अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।**[२६]

अन्यच्च-

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोस्ति किञ्चित्। वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरिषेण सर्वम्।।[२७]

तस्मात्परमेश्वरादणीयः सूक्ष्मं ज्यायः स्थूलं च महद्वा किञ्चिदपि नास्ति। यथा वृक्षः शाखापत्रपुष्पफलादिकं धारयन् तिष्ठति, तथैव पृथिवीसूर्यादिवं सर्वं जगद्धारयन् परमेश्वरोऽभिव्याप्य स्थितोऽस्ति।[२८]

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।[२९] इसका भावार्थ करते हुए महान् दार्शनिक ऋषि दयानन्द संसार के भोले लोगों से कहना चाहते हैं- जो सबसे बड़ा, सबका प्रकाश करने वाला और अविद्या अन्धकार अर्थात् अज्ञान आदि दोषों से अलग है, उसी पुरुष को मैं परमेश्वर और इष्टदेव जानता हूँ। उसको जाने बिना कोई मनुष्य यथावत् ज्ञानवान् नहीं हो सकता। क्योंकि उसी परमात्मा को जानके और प्राप्त होके जन्म मरण आदि क्लेशों के समुद्र समान दुःख से छूट के परमानन्दस्वरूप मोक्ष को प्राप्त होता है, अन्यथा किसी प्रकार से मोक्ष सुख प्राप्त नहीं हो सकता। इससे क्या सिद्ध हुआ कि उसी

की उपासना सब मनुष्यों को करनी उचित है। उससे भिन्न की उपासना करना किसी मनुष्य को न चाहिए, क्योंकि मोक्ष को देने वाला एक परमेश्वर के बिना दूसरा कोई भी नहीं है। व्यवहार और परमार्थ के दोनों सुख का मार्ग एक की उपासना और उसको जानना ही है। क्योंकि इसके बिना मनुष्य को किसी प्रकार से सुख नहीं हो सकता।[३०]

पुरुष सूक्त के अन्तिम मन्त्र **'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च०'**[३१] की भावार्थ करते हुए लिखते हैं- हे परमेश्वर! आपकी दया से परलोक जो मोक्ष सुख है उसको हम लोग प्राप्त होते हैं। इस प्रकार की कृपादृष्टि से हमारे लिए इच्छा करो तथा मैं सब संसार में सब गुणों से युक्त होकर सब लोकों के सुखों का अधिकारी जैसे होऊँ, वैसी कृपा और इस जगत् में मुझको सर्वोत्तम शोभा और लक्ष्मी से युक्त कीजिए यह आपसे हमारी प्रार्थना है। सो आप कृपा से पूरी कीजिए।[३२]

योगीराज दयानन्द का योग के प्रति अत्यन्त रुचि होने के कारण ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासना विषय में महर्षि पतञ्जलि जी द्वारा लिखित योगदर्शन के बहुत सारे सूत्रों का व्याख्यान करते हुए कहते हैं- "जब-जब मनुष्य लोग उपासना करना चाहें, तब-तब इच्छा के अनुकुल एकान्त स्थान में बैठकर, अपने मन को शुद्ध आत्मा में स्थिर करें तथा सब इन्द्रिय और मन को सच्चिदानन्दादि लक्षण वाले अन्तर्यामी अर्थात् सबमें व्यापक और न्यायकारी परमात्मा की ओर अच्छी प्रकार से लगाकर सम्यक् चिन्तन करके उसमें अपने आत्मा को नियुक्त करें। फिर उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना को बारम्बार करके, अपने आत्मा को भलीभाँति से उसमें लगा लें।"[३३]

ऋषि दयानन्द त्रैतवाद के दर्शन को मानने वाले दार्शनिक थे जो कि वेदों में प्रसिद्ध है। महर्षि से पूर्ववर्ती विद्वानों ने वेदोक्त इन दार्शनिक विचारों को समुचित रूप से चिन्तन नहीं किया जिस कारण बहुत से विद्वानों ने त्रैतवाद का पोषण नहीं किया। ईश्वर जीव एवं प्रकृति तीनों के अनादित्त्व को वेदों के आधार पर स्वीकार करते हुए सत्यार्थ प्रकाश में लिखा-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥[३४]

अर्थात् जो ब्रह्म और जीव दोनों चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं और वैसा ही अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं। इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसार में पाप पुण्य रूप फलों को अच्छे प्रकार से भोगता है और दूसरा परमात्मा कर्मफलों को न भोगता हुआ चारों ओर प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप, तीनों अनादि है।[३५]

इन विचारों को पुष्ट करते हुए उपनिषत् का यह मन्त्र को ऋषि उद्धृत करते हैं-

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥[३६]

अर्थात् प्रकृति, जीव और परमात्मा इनका कभी जन्म नहीं होता और यही सृष्टिनिर्माण के कारण हैं। इनका कोई कारण नहीं है।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द सरस्वती के दार्शनिक चिन्तनों को दृष्टिगोचर करने पर पता चलता है कि वे वैदिक परम्परा तथा ऋषियों के मतानुकूल जो कि सार्वभौमिक सत्य है उसी को मानने एवं मनवाने हेतु अपने मन्तव्य रखते हैं। मुझे ऋषिवर की एक दार्शनिक चिन्तन सदैव प्रेरणास्पद लगता है वह है ऋग्वेद के 'मनुर्भव' अर्थात् मनुष्य बनना-बनाने

का चिन्तन है वह उन्होंने स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में दिया है- मनुष्य उसी को कहना कि- मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं- कि चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों- उन की रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्त्ती सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उस को कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी चले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे। इस में श्रीमान् महाराजा भर्तृहरि जी आदि ने श्लोक कहे हैं उन का लिखना उपयुक्त समझ कर लिखता हूँ-

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणम् अस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥[३७]

महर्षि दयानन्द सरस्वती की इस २००वीं जयन्ती पर भी हम आर्य लोग ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि ऋषि दयानन्द जैसे वैदिक विद्वान्, महायोगी, ईश्वरभक्त आर्ष परम्परा के संवाहक फिर से उत्पन्न हो जाए जिससे संसार में व्याप्त अवैदिक एवं अनार्ष परम्परा का ह्रास हो।

सन्दर्भ सूची -

१. श्रीमद्भगवद्गीता ४/७
२. मनु. ३०/३
३. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. ८, (प्रकाशक- विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द, २०२०)
४. यजु. २५/१३
५. ऋग्वेदादि० ईश्वरप्रार्थना, पृ. १२
६. वही, पृ. २२
७. ऋग्वेद १०.१९.१
८. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. ३८
९. पूर्वमीमांसा १.१.१२
१०. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. ४२
११. वैशेषिक १.३
१२. योगदर्शन १.१.२६
१३. वेदान्त १.१.३
१४. कठोपनिषद् २/१५
१५. योगदर्शन १.१.२७
१६. माण्डूक्योपनिषद् १
१७. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. ५७
१८. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. ११०
१९. यजुर्वेद २५/१८
२०. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. १११
२१. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. १४३
२२. ऋग्वेद ८/७/३/१
२३. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. १४४
२४. यजुर्वेद ३१.११
२५. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. १४५
२६. श्वेताश्वतरोपनिषद् ३/१९
२७. निरुक्त २/३
२८. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. १४५
२९. यजुर्वेद ३१.१८
३०. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. १६०
३१. यजुर्वेद ३१.२२
३२. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. १६३
३३. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. २०२
३४. ऋग्वेद १.१६४.२०
३५. सत्यार्थप्रकाश, पृ. १७२, (प्रकाशक- आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, संवत् २०७३)
३६. श्वेताश्वतरोपनिषद् ४.५
३७. सत्यार्थप्रकाश, पृ. ४७५

- **सह आचार्य संस्कृत**
श्री गोविन्द गुरु राजकीय महाविद्यालय
बांसवाड़ा (राजस्थान)

युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सदैव याद किये जायेंगे

❑ डॉ. कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री...✍

युग का अर्थ होता है एक निर्धारित संख्या के वर्षों की काल-अवधि। सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापर और कलियुग आदि भी युग कहे गये हैं। इतिहास में प्रागैतिहासिक काल, पाषाण काल आदि को भी युग कहा गया है। युग-प्रवर्तक शब्द युगल में आये हैं, उस समय क्या परिस्थितियां थीं और उनमें क्या परिवर्तन हुआ, उसे हम युग प्रवर्तन कहेंगे और प्रवर्तन करनेवाले को युग प्रवर्तक कहा जायेगा। महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म उन्नीसवींशदी के तीसरे दशक में सन् १८२४ में हुआ था। उस समय धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियां अत्यन्त विकट थीं, जिनका विस्तृत विवरण निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है-

१-धार्मिक परिस्थितियां-हमारे देश में निम्न कुप्रथाओं का प्रचलन होने से धार्मिक दुर्दशा थी-

(१) मूर्तिपूजा - विज्ञान के इस युग में भी करोड़ों लोग जड़ मूर्तियों को ही ईश्वर मान बैठे थे। मूर्तिपूजा कोई धार्मिक कर्म नहीं हैं। इन मूर्तियों के निर्माण से लेकर मूर्तियों का दर्शन-पूजन, आदि सब कुछ एक योजनाबद्ध व्यापार है। मूर्ति पूजा अज्ञानी लोगों को अन्धविश्वास में फँसाकर ठगने का सरलतम धन्धा है। मूर्तिपूजा हमारे देश की अवनति का एक प्रमुख कारण है, क्योंकि मूर्ति-पूजा एक अज्ञानतापूर्ण कर्म है, और अज्ञान में फँसा मनुष्य कभी भी सर्वांगीण उन्नति नहीं कर सकता।

(२) अवतारवाद- आज अनेक पाखण्डी लोग पुराणों के आधार पर ईश्वर के अनेक अवतारों की कपोल-कल्पित कथाएँ सुनाकर लोगों को मूर्ख बना रहे हैं तथा अज्ञान में फँसे मूर्ख लोग सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, निराकर ईश्वर की भक्ति को त्यागकर कल्पित अवतारों की मूर्तियों को पूजकर अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं।

(३) गुरुडम - वर्तमान भारतवर्ष में कई सौ लोग ऐसे हैं, जो स्वयं सद्गुरु बताते हैं। कुछ तो स्वयं को भगवान् और कुछ स्वयं को भगवान् का अवतार तक भी बताते हैं। ये वाक्पटु लोग देश की जनता को गुरुडम के जाल में फँसाकर ठग रहे हैं।

(५) देवदासीप्रथा- भारतवर्ष के महाराष्ट्र और कर्नाटक आदि प्रदेशों में महर्षि के जीवनकाल में और आज भी प्रतिवर्ष हजारों कन्याओं को देवदासी बनाया जा रहा है, जिनका कार्य पत्थर की मूर्तियों की स्वच्छता तथा वेश्यावृत्ति करना ही होता है।

(६) बलिप्रथा- हमारे देश में आज भी जड़ मूर्तियों, कल्पित देवी-देवताओं और ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए अनेक स्थानों पर लाखों निरीह पशु-पक्षियों की बलि दी जाती है। धर्म के नाम पर यह अधर्म नियमित रूप से चल रहा है, जिसे धर्म के ठेकेदार ही करवा रहे हैं।

(७) मत-मतान्तर- उस समय में अनेक मत-मतान्तर वर्तमान थे जिनमें पारस्परिक मतभेद, अज्ञान, व्यक्तिगत लाभ, भ्रम, मन्दबुद्धिता आदि होने से प्रत्येक समुदाय कुछ विशेष बातों को सिद्धान्त के रूप में लेकर मत-मतान्तर रूपी मृगमरीचिका फैलाने में अग्रसर थे। संसार के मुख्य सम्प्रदाय ईसाई, बौद्ध, हिन्दू, कनफ्यूसियनिज्म, मुस्लिम, जैन, यहूदी, सिक्ख, ताओइज्म और जोरास्ट्रियन हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्यार्थप्रकाश के एकादश सम्मुल्लास में ऐसे अनेक

सम्प्रदायों का उल्लेख किया गया है।

२-सामाजिक कुरीतियाँ- महर्षि के जीवनकाल में देश में अनेक कुरीतियाँ विद्यमान थीं जो आज भी कुछ मात्रा में विद्यमान हैं। जैसे- पर्दाप्रथा के कारण भारत की करोड़ों नारियाँ आज भी परदे में रहने को विवश हैं। बाल-विवाह प्रथा के कारण आज भी बाल-विवाह होते हैं। आज भी अनेक स्थानों पर विधवा-विवाह नहीं होता हैं। भारत के नगरों में लाखों नारियाँ वेश्यावृत्ति कर रही हैं। दहेजप्रथा विधिवत अपराध बना दिये जाने के बाद भी अपने पूर्ण यौवन पर है। झूठी सामाजिक प्रतिष्ठा पाने के लिए विवाहादि उत्सवों में भोजप्रथा तथा अन्य आडम्बरों में अपार धन नष्ट किया जा रहा है। जातिप्रथा निरन्तर सुदृढ़ होती जा रही है। राजनीतिक लाभ उठाने के लिए सम्पूर्ण समाज को जाति-पाँति और ऊँच-नीच के नाम पर पूर्णतः विभाजित कर दिया गया है, जिससे सामाजिक सद्भाव नष्ट हो चुका है।

(१)-अण्डा मांसाहार- विश्व को अहिंसा का उपदेश देनेवाले भारतवर्ष में अब मांसाहार का प्रचलन तीव्र गति से बढ़ रहा है। मांसाहार के लिए प्रतिदिन लाखों निर्दोष पशु-पक्षियों की हत्याएँ की जाती हैं।

(२)-मदिरापान- मदिरापान से जनता का अमूल्य धन, परिवार, स्वास्थ्य, सुख और शान्ति नष्ट हो रहे हैं, परन्तु देश का शासन सर्वनाशकारिणी इस मदिरा को बलपूर्वक घर-घर पहुँचाने में लगा हुआ है। मदिरापान से देश की युवा पीढ़ी को सर्वनाश के कगार पर पहुँचा दिया गया है और देशप्रेमी बैठे देख रहे हैं।

(३)-व्यसन- धूम्रपान, गुटखा, आदि का सेवन - तम्बाकू को खाना और धूम्रपान के रूप में पीना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक है।

३- राजनैतिक दुर्दशा- महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवनकाल में हमारा देश अंग्रेजों के अधीन गुलाम था। महर्षि के हृदय में मातृभूमि का सर्वोपरि स्थान था और देश प्रेम की भावना उनमें कूटकूट कर भरी हुई थी। महर्षि के अनुसार स्वदेश एवं स्वदेश प्रेम और स्वदेशाभिमान के बिना हम अपनी अस्मिता की रक्षा नहीं कर सकते हैं। राष्ट्रीयता का एक महत्वपूर्ण पहलू स्वशासन का सिद्धान्त माना जाता है। ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने एक कानून, (गवर्नमैंट आफ इन्डिया एक्ट, १८५८) पास करके भारत के शासन-तन्त्र को ईस्ट इन्डिया कम्पनी से लेकर सीधा अपने अधीन कर लिया था। १ नवम्बर १८५८ को तत्कालीन वायसराय और गवरनर जनरल लार्ड केनिंग ने दरबार में महारानी का एक घोषणापत्र पढ़ कर सुनाया जिसमें कहा गया था- हमारी प्रबल इच्छा है कि अब हम भारत में शान्तिपूर्ण उद्योगों को प्रोत्साहन दें, जनोपयोगी और उन्नति के कार्यो को आगे बढ़ायें और अपनी प्रजा की के हित की दृष्टि से कार्य करें। उनकी समृद्धि ही हमारी शक्ति होगी, उनकी संन्तुष्टि ही हमारी सुरक्षा होगी और उनकी कृतज्ञता ही हमारा पुरुष्कार होगा। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में कहा कि विदेशियों का राज्य चाहे वह माता-पिता के समान न्याय और दया से युक्त क्यों न हो, कभी हितकारी नहीं हो सकता है। सन १८७४ में लिखे गये ग्रन्थ आर्याभिविनय में महर्षि दयानन्द ने अपनी भावनायें ने इस प्रकार प्रकट की थीं-''अन्यदेशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों।'' उस समय तक स्वराज्य का विचार किसी भी राजनेता या विद्वान् के दिमाग में नहीं आया था। कांग्रेस के भीष्म पितामह दाभाई नौरोजी ने सर्वप्रथम १९०६ में ''स्वराज्य'' शब्द का उच्चारण किया था और होमरूल आन्दोलन के दिनों में इस शब्द का खुलकर प्रयोग होने लगा था। कांग्रेस के १९१६ में लखनऊ में हुए अधिवेशन में लोकमान्य तिलक ने 'स्वराज्य के जन्मसिद्ध अधिकार' की घोषणा की और १९२८ के लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने के

लक्ष्य की घोषणा की थी परन्तु महर्षि दयानन्द ने इससे कई वर्ष पूर्व ही स्वराज्य के विचार को न केवल प्रचारित किया अपितु अपने अनुयायियों में राष्ट्रप्रेम की भावनायें भर दीं जिसके फलस्वरूप देश के अनेक नौजवान स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े थे। सन १९१९ में भारत के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास का नया अध्याय आरम्भ हुआ। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों द्वारा प्रथम विश्वयुद्ध के अवसर पर लोकतंत्र, राष्ट्रीयता और स्व-भाग्य निर्णय का समर्थन करने वाले सिद्धान्तों की घोषणाएं की गई थी। उनके द्धारा भारतीय जनता को आश्वासन दिया गया था कि युद्ध के समाप्त होते ही वे भारत में उत्तरदायी शासन दिए जाने के सम्बन्ध में कोई महत्वपूर्ण निर्णय लेंगे परन्तु सन १९१९ में गवर्नमैंट आफ इन्डिया एक्ट द्वारा जिन शासन-सुधारों की घोषणा की गई उनसे जनता संतुष्ट नहीं हुई।

महर्षि दयानंद सरस्वती ने उपरोक्त धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक तीनों कारणों को समाप्त कर देश में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का कार्य किया। उनके द्वारा किये गये प्रमुख कार्यों का विश्लेषण हम निम्न प्रकार से कर रहे हैं-

१-वेद भाष्य का कार्य- उनकी यह एक बड़ी देन है कि भूले हुए वेदों से उन्होंने फिर से हमें परिचित कराया और वेदों के ज्ञान को समस्त विद्याओं का मूल बताया । उन्होंने सम्पूर्ण यजुर्वेद और ऋगेवेद के सातवें मणडल के इकसठवें सूक्त के दूसरे मन्त्र का भाष्य किया और सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका, आर्याभिविनय, संस्कारविधि आदि अनेक ग्रन्थ लिखे।

२-वेद की आवश्यकता- महर्षि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखते हैं कि हम जीव लोगों के लिए ईश्वर ने जो वेदों का प्रकाश किया है सो उसकी हम पर कृपा है। महर्षि वेदोत्पत्ति का प्रयोजन बताते हुए कहते हें कि परमेश्वर हम लोगों का माता-पिता के समान है।

३-तीन अनादि पदार्थ- ईश्वर जीव और जगत् ये तीन पदार्थ अनादि हैं। महर्षि ऋग्वेद और यजुर्वेद के मन्त्रों के प्रमाणों के साथ कहते हैं कि ब्रह्म और जीव चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश व्याप्य व्यापकभाव से संयुक्त परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं।

४-ईश्वर एक है और उसका निज नाम ओ३म् है- महर्षि सत्यार्थप्रकाश के सातवें सम्मुलास में लिखते हैं कि चारों वेदों में कहीं नहीं किन्तु लिखा जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों, किन्तु यह लिखा है कि ईश्वर एक है। वह, यह भी लिखते हैं कि दिव्यगुणों से युक्त होने के कारण देवता कहे जाते हैं। जिसमें सब देवता स्थित हैं, वह जानने और उपासना करने योग्य ईश्वर है। परमेश्वर देवों का देव होने से महादेव इसीलिए कहाता है कि वह सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्ता, न्यायाधीश और अधिष्ठाता है।

५-ईश्वर का निज व सर्वोत्तम नाम ओ३म् है- 'ओ३म'- ओंङ्कार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि इसमें अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओ३म्) समुदाय हुआ है, इस नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं।

६-ईश्वर पूजा का वैदिक स्वरूप- महर्षि के अनुसार ''जो ज्ञानादि गुणवाले का यथायोग्य सत्कार करना है उसकी पूजा कहते हैं।'' परमेश्वर की पूजा की क्या विधि हो सकती है? वेद कहता है कि परमात्मा आत्मिक, मानसिक, शारीरिक एवं सामाजिक आदि बलों का देने वाला है। इसी कारण से सकल देव एवं समस्त विश्व उसकी उपासना-पूजा- सेवा सत्कार, सम्मान करता है। पूजा का प्रकार क्या हो? उसकी आज्ञा के अनुसार चलना ही उसकी पूजा है क्योंकि इसमें पूजक का भी कल्याण है। ईश्वर की आज्ञाओं के अनुकूल चलने में ईश्वर की पूजा है। ईश्वर पूजा का वैदिक स्वरूप परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना ओर उपासना करना है।

(१) स्तुति- महर्षि के अनुसार ''जो ईश्वर वा

किसी दूसरे पदार्थ के गुण, ज्ञान, कथन, श्रवण और सत्य भाषण करना है वह स्तुति कहाती है।'' यथार्थ में जैसा ईश्वर है गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूपत: उसे वैसा ही जानना, सुनना-कहना और सुनना-सुनाना तथा सत्यभाषण करना ही स्तुति कहाती है।

(२) प्रार्थना- महर्षि के अनुसार अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिए परमेश्वर वा किसी सामर्थ्य वाले मनुष्य के सहाय लेने को प्रार्थना कहते हैं।

(३) उपासना- महर्षि के अनुसार- जिससे ईश्वर ही के आनन्द में अपने आत्मा को ना होता है उसको उपासना कहते हैं।

(७) मूर्ति-पूजा आदि उपासना के अवैदिक रूप- मन्दिरो में जाकर या घर पर देंवी-देवताओं की जड़ मूर्ति स्थापित करना उनके ऊपर पुष्प, फल, नैवेद्य आदि अर्पित करते हुए उनकी पूजा करना अवैदिक है। यह वेदानुकूल कदापि नहीं कहा जा सकता है। मूर्ति-पूजा, जागरण पीपल आदि वृक्षों की पूजा करना भी ईश्वर की वास्तविक उपासना से दूर अज्ञान के मार्ग पर भटकना है। अत: जड़ वस्तुओं की पूजा कभी भी नहीं करनी चाहिए।

८-वैदिक कर्म फल सिद्धान्त- जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है फल ईश्वराधीन है। अर्जित कर्मों का फलोपभोग के बिना संक्षय नहीं होता। यही कारण है कि जीवन्मुक्त पुरुष का शरीर तब तक बना रहता है, जब तक कि पुरातन कर्माशय विपाक का अन्त नहीं हो जाता। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। फल ईश्वराधीन है अर्थात् कर्ता को उसके कर्मों के अनुरूप ईश्वर फल देता है।

९-यज्ञ- वैदिक मान्यताओं में यज्ञ का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। समस्त वैदिक साहित्य के संकलन प्रारम्भ में मूल उद्देश्य कर्मकाण्ड ही रहा है। वैदिक आर्य यज्ञों से बहुत प्रेम करते थे। वे दैनिक, पाक्षिक, मासिक, चातुर्मासिक, वार्षक आदि यज्ञ किया करते थे।

१०-षोडश संस्कार- वेदानुसार जीवन पद्धति अपनाते हुए धर्मानुसार कर्म करने का उद्देश्य है- 'मानव का निर्माण।' मनुष्य योनि में ही हम शुभ संस्कारों को अर्जित कर सकते हैं। संस्कार का अर्थ किसी वस्तु के रूप को परिमार्जित करते हुए बदल देने, शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और से अभिप्राय बौद्धिक परिष्कार के लिए किये जाने वाले उन अनुष्ठानों से है जिनमें वह समाज का पूर्ण विकसित सदस्य हो सके।

११-वर्णाश्रम धर्म- प्राचीन भारतीय समाज का संगठन वर्ण व्यवस्था के अधार पर चार वर्णों -ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में हुआ था। भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था के आरम्भिक संकेत 'ऋग्वेद' में हैं। ऋग्वेद के एक मन्त्र में समाज की कल्पना पुरुष के रूप में की गई है। इसका मुख ब्राह्मण, भुजाएँ क्षत्रिय, उरू वैश्य और पैर शूद्र हैं। अर्थात् इन चार अंगों के समान ही चार वर्णों का समाज में स्थान और कर्तव्य हैं। ब्राह्मणों को अध्ययन और अध्यापन, क्षत्रियों को रक्षा आदि, वैश्यों को धनापार्जन आदि और शूद्रों को सेवा कार्य करना चाहिए। महाभारत ने ऋग्वैदिक व्यवस्था को स्वीकार करके इसी पद्धति से समाज का विभाजन चार भागों में किया था। (ऋग0 १०/९०/१२)

वर्ण-व्यवस्था का आधार जन्म हो या कर्म- वर्ण का आधार जन्म होना चाहिए या कर्म, यह विषय प्राचीन काल से ही विवादास्पद रहा है। वर्तमान समय में हिन्दुओं में जिस प्रकार से वर्ण व्यवस्था चल रही है वह निश्चित रूप से जन्म के आधार पर है। ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व और शूद्रत्व की गणना जन्म के आधार पर होती है। कोई व्यक्ति अध्यापक हो, सैनिक हो, व्यापारी हो या सेवक है, यदि उसने ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया है तो उसको ब्राह्मण ही समझा जाता है। रामायण,

महाभारत, पुराण, उपनिषद् आदि में स्थान-स्थान पर गुण-कर्म को वर्ण का आधार कहा गया है परन्तु कालान्तर में यह व्यवस्था विकृत हो गई और समय के परिवर्तन के साथ ही गुण-कर्म के स्थान पर जन्म ने प्रमुखता ग्रहण कर ली है।

१२-पितृयज्ञ-तर्पण और श्राद्ध- 'पा' रक्षणे धातु से 'पिता' शब्द सिद्ध हुआ है। 'यः पाति सर्वान् स पिता' जो सबका रक्षक जैसे पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उनकी उन्नति चाहता है। पितृयज्ञ में विद्वान्, ऋषि जो पढ़ने पढ़ाने हारे, पितर जो माता-पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परम योगियों की सेवा करनी चाहिए। पितृयज्ञ के दो भेद हैं, एक श्रद्धा और दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् 'श्रत्' सत्य का नाम है-'श्रत्सत्यं दधाति यया क्रिया सा श्रद्धा, श्रत्क्रिया यत् क्रियते तच्छ्रद्धम्' जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाये उसको श्रद्धा और जो श्रद्धा से कर्म किया जाये उसका नाम श्राद्ध है और 'तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितृन् तत्तर्पणम्' जिस-जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता-पिता आदि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायें उसका नाम तर्पण है, परन्तु यह जीवितों के लिए है, मृतकों के लिए नहीं।

महर्षि के उपरोक्त वैदिक सिद्धान्तों और उनके अनुसार आचरण करने से ईश्वर के सच्चे स्वरूप का ज्ञान हो जाने से मूर्ति-पूजा, जड़-पूजा तीर्थ-पूजा आदि सभी अन्धविश्वासों से मुक्ति मिल जाती है। साथ ही श्राद्ध, तर्पण आदि अनुचित पद्धतियों से भी छुटकारा मिल जाता है।

महर्षि दयानंद सरस्वती उन महान विभूतियों में थे, जिन्होंने राष्ट्रोत्थान के कार्य में महती भूमिका निभाई। उन्नीसवीं शताब्दी में धार्मिक पुनर्जागरण के क्षेत्र में स्वामी दयानन्द का कार्य स्तुत्य रहा। उन्होंने वैदिक धर्म की ज्योति को भारत के कोने कोने में प्रकाशित किया। महर्षि दयानंद ने जिस आंदोलन का सूत्रपात किया उसकी ओर देश की जनता उत्साह के साथ बढ़ी। वास्तव में स्वामी दयानंद ने उस कार्य को अपने हाथ में लिया जिसकी काफी समय से उपेक्षा होती चली आ रही थी। आर्यसमाज की स्थापना द्वारा स्वामी दयानन्द ने सोती हुई हिंदू जाति को जगाया, उनको आगे बढने की दिशा दिखाई और उसकी रुचि सुधार की ओर ले गए। स्वामी दयानंद सरस्वती वर्तमान भारत के एक प्रमुख विचारक और चिंतक थे। धर्म, नीति, दर्शन, सामाजिक संगठन और राज्य-व्यवस्था आदि पर उन्होंने जो विचार समाज के सम्मुख प्रस्तुत किए, वे सर्वथा नूतन ओर क्रांतिकारी थे। वे धार्मिक सुधारों द्वारा समाज और राष्ट्र का सुधार करना चाहते थे। आर्यसमाज को स्वामी जी ने एक ऐसा स्वरूप दिया कि उसने जन-आंदोलन का सक्रिय रूप धारण कर लिया। वे वैदिक धर्म को अभिनव स्वरूप देने में सफल हुए। उनके विचारों ने पूरे समाज को जगा दिया और समाज में धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से आमूल परिवर्तन हुए। देश की स्वतंत्रता प्राप्ति में भी महर्षि के अनुयायियों की अप्रतिम भूमिका रही और अन्तोगत्वा १५ अगस्त, १९४७ को देश स्वतंत्र हुआ। इन समग्र बिन्दुओं पर विचार करने से यह प्रमाणित होता है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती एक युग प्रवर्तक थे और इसी नाम से सदैव याद किये जायेंगे। उनके २००वीं जन्म जयन्ती वर्ष के पावन अवसर पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए हम शत शत नमन करते हैं।

- देहरादून (उ.ख.)

'राजा'

'राजा' उसी को कहते हैं जो शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपातरहित न्यायधर्म का सेवी, प्रजाओं में पितृवत् वर्त्ते और उन को पुत्रवत् मान के उन की उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करे।

- महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश

वैदिक वर्ण व्यवस्था का आधार और महर्षि दयानन्द

❑ डॉ. महावीर सिंह आर्य...✍

वर्णव्यवस्था का वास्तविक स्वरूप क्या है? इसको न समझ पाना भी आज सर्वत्र फैली हुई उच्च और नीच की भावना को बढ़ावा देता है। कुछ लोग वर्ण व्यवस्था के नाम से ही उत्तेजित हो जाते हैं, क्योंकि साधारणतया समाज में वर्ण शब्द जातिवाद का द्योतक माना जाने लगा है, परन्तु वास्तविकता ठीक इसके विपरीत ही है। वर्ण शब्द अपने आप में ही अपना अर्थ लिये हुए है और न ही यह वर्ण व्यवस्था किसी भी धर्म या मत विशेष के साथ बंधी हुई ही है। इसका निर्देश हिन्दू के लिए ही हो, ईसाई या मुसलमान आदि के लिए नहीं?.....ऐसी भी कोई बात नहीं है।

वर्ण: यह शब्द किसी 'जातिविशेष' का सूचक न होकर एक वर्ग विशेष का सूचक मात्र है। वह भी मानव को मानव समाज से अलग न करते हुए, उस उसके कार्यो का सूचक मात्र है। निरुक्त- **वर्णो वृणोते**[१] कहकर वर्ण का निर्वचन करता है। महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इसका अर्थ करते हैं - 'जो गुणकर्म को देखकर यथायोग्य वरण किये जाते हैं, वे वर्ण कहाते हैं।'[२] स्वामी महेश्वरानन्द गिरी[३] तथा सत्यमित्र दुबे की भी यही मान्यता है।[४]

वर्ण तथा जाति : वर्ण तथा जाति शब्द आज कल प्राय: समान अर्थ के द्योतक प्रतीत होते हैं किन्तु मूल रूप में इन शब्दों में अन्तर है, इस विषय में आज भी मत-वैभिन्य है।

राजाफतहसिंह वर्मा (चन्द्र) पुवादा... नरेश ने वर्ण तथा जाति को एक ही माना है, वे लिखते हैं - देखो, अल्पाच्चतरम् (अष्टा.२.२.३४) इस सूत्र के वार्तिक में वर्ण शब्द के अर्थ में ब्राह्मण क्षत्रियादि जातियों के उदाहरण महाभाष्यकार पतंजलि महर्षि ने दिये हैं और 'जातिरप्राणिनाम' (अष्टा.-२.४.६) इत्यादि सूत्र, वार्तिक और महाभाष्य द्वारा पाणिनि कात्यायन और पतंजलि महर्षियों ने 'जाति' शब्द के अर्थ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों को उदाहरण द्वारा बतलाया है। यदि वर्ण और जाति शब्दों से एक ही प्रयोजन न होता तो महर्षि लोग ऐसा क्यों लिखते।[५] कविरत्न अखिलानन्द शर्मा भी जाति शब्द से वर्णों का ग्रहण करते हैं।[६] इसके विपरीत अन्य विद्वान् वर्ण तथा जाति को पृथक् मानते हैं। तथा वर्ण का सम्बन्ध जीविका के साधन से तथा जाति का सम्बन्ध जन्म से मानते हैं। यथा- डॉ. मंगलदेव शास्त्री इस विषय में कहते हैं कि - यह ध्यान देने की बात है कि जहाँ वर्ण शब्द का सम्बन्ध इस प्रसंग में स्पष्टतया पेशा या व्यवसाय से है। तुलना करें - **'वर्णो वृणोते:'** (निरुक्त-२.३) यहाँ जाति शब्द का सम्बन्ध स्पष्टतया जन्म से है (... जननेन या जायते सा जाति-महाभाष्य-५.३.५५) दोनों शब्दों की मौलिक दृष्टियाँ भिन्न हैं। **...तप: श्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव स:** (महाभाष्य-५.४.५५)[७]

डॉ. पी.वी. काणे का कथन है कि 'वर्ण की धारणा वंश, संस्कृति, चरित्र (स्वभाव) एवं व्यवसाय पर मूलत: आधारित है। हममें युक्ति की नैतिक एवं बौद्धिक योग्यता का समावेश होता है और यह स्वभाविक वर्गों की व्यवस्था का द्योतक है। स्मृतियों में भी वर्णों का आदर्श है - कर्त्तव्यों पर, समाज या वर्ग के उच्च मापदण्ड पर बल देना, न कि जन्म से प्राप्त अधिकारों एवं विशेषाधिकारों पर बल देना। किन्तु इसके विपरीत जाति व्यवस्था जन्म एवं आनुवांशिकता पर बल देती है और बिना कर्त्तव्यों के आचरण पर बल दिये, केवल विशेषाधिकारों पर ही आधारित हैं। वैदिक साहित्य में जाति के आधुनिक अर्थ का प्रयोग नहीं हुआ है।[८]

वैदिक संहिताओं में जाति शब्द का प्रयोग नहीं मिलता किन्तु 'सजात्य' शब्द उपलब्ध होता है।[९] जिसका ब्राह्मणत्वादि अर्थ संदिग्ध है। परवर्ती साहित्य में कहीं-कहीं वर्ण के अर्थ में जाति शब्द का प्रयोग मिलता है।[१०] जो कदाचित् व्यवसाय के आधार पर जन्म से ही जाति मानने के उपरान्त प्रचलित हुआ हो। महर्षि दयानन्द जहाँ वर्णों को चुनाव के आधार पर मानते हैं, वहाँ जाति को जन्म से मरणपर्यन्त रहने वाली मनुष्यत्व की भाँति मानते हैं।[११]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि कुछ विद्वान् वर्ण तथा जाति को अभिन्न मानते हैं तथा कुछ इन्हें पृथक्-पृथक् स्वीकार करते हैं। अतः वर्ण तथा जाति शब्द यद्यपि समानार्थक प्रतीत होते हैं किन्तु मूल रूप में इन दोनों शब्दों में अन्तर है। 'जाति' शब्द जहाँ **'जनि प्रादुर्भावे'** धातु से निष्पन्न होने से जन्म अथवा योनि विशेष से सम्बन्ध रखता है वहाँ 'वर्ण' पद **'वृञ् वरणे'** धातु से निष्पन्न होने से चुनाव अर्थ को प्रकट करता है। जाति के निर्माण में वह परतन्त्र होता है तथा वर्ण के चुनाव में वह स्वतन्त्र है? यह भी स्मर्तव्य है कि जाति मनुष्य से अतिरिक्त पशु-पक्षी आदि में भी होती है किन्तु वर्ण केवल मानव जाति में ही सम्भव है। अतः वर्ण तथा जाति शब्द मूलतः पृथक् हैं तथा इनको प्राचीन साहित्य में पृथक् ही माना है किन्तु वर्तमान समय में वर्ण शब्द प्रायः चर्चा का विषय रह गया है और उसका स्थान पूर्णतया जाति ने ले लिया है। जनगणना के समय भी वर्ण का उल्लेख न करके जाति का ही उल्लेख उपलब्ध होता है।

महर्षि दयानन्द और वर्ण व्यवस्था का अधार : महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में जन्म से वर्ण व्यवस्था को न मानकर गुण-कर्म से ही वर्ण व्यवस्था को स्वकीर किया है। उदाहरणार्थ-

१. वर्णाश्रम गुणकर्मों की योग्यता से मानता हूँ।[१२]

२. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार भेद गुणकर्मों से किये गये हैं(वृणो.)। इन नाम वर्ण इसलिए है कि जिसके गुण कर्म हो, वैसा ही उनको अधिकार देना चाहिए।[१३]

३. (प्रश्न) विवाह अपने-अपने वर्ण में होना चाहिए या अन्य वर्ण में भी?

(उत्तर) अपने-अपने वर्ण में होना चाहिए परन्तु वर्ण व्यवस्था गुणकर्मों के आधार पर होनी चाहिए जन्ममात्र से नहीं। जो पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारी, जितेन्द्रिय, मिथ्याभाषणादि दोषरहित, विद्या और धर्मप्रचार में तत्पर रहे इत्यादि गुण जिसमें हैं। वह ब्राह्मण, विद्या, बल, शौर्य, न्यायकारित्वादि गुण जिसमें हो वह क्षत्रिय, क्षत्रिय और विद्वान् होके कृषि व्यापार पशुपालन, देशभाषाओं में चतुरादि गुण जिसमें हो वह वैश्य, वैश्य और जो विद्याहीन मूर्ख हो, वह शूद्र कहावें।[१४]

४. वर्ण-जो गुण कर्मों के योग से ग्रहण किया जाता है, वह वर्ण शब्दार्थ से लिया जाता है।[१५]

संदर्भ-सूचीः-

१. निरुक्त-२.३।

२. वर्णो वृणोतेरिति निरुक्तप्रामाण्याद् वरणीया वरीतुमर्हा गुणकर्माणि च दृष्टव्या यथायोग्यं विद्यन्ते ये ते वर्णाः। (ऋ.भा.भू.पृ.-२६७)

३. चातुर्वर्ण्यभारतसमीक्षा, पृ.-५०।

४. मनु की समाज व्यवस्था-किताब महल, इलाहाबाद, १९६४, पृ.-४४-४५।

५. राजा फतह सिंह वर्मा (चन्द्र) ...पुवोया नरेश -'वर्णव्यवस्था' ब्रह्मप्रेस, इटावा, १९११, पृ.-२-३।

६. कविरत्न अखिलानन्द शर्मा-वैदिक वर्णव्यवस्था, पृ-१।

७. सत्यमित्र दुबे-मनु की समाज व्यवस्था, पृ.-४३।

८. भारतीय संस्कृति का विकास-भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, १९६४, पृ.-२११।

९. डॉ. पी.वी. काणे, 'धर्मशास्त्र का इतिहास' भाग-२, पृ.-११९।

१०. ऋ-२.१.५, ३.५४.१६, ८.१८.१९-२०-२१, ८.२६.१०, ८.८३.७ तथा १०.६४.१३।

११. मनुस्मृति-२.१४८, ३.१५, ९.८, ६ आदि।

१२. स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश १६ सत्यार्थप्रकाश पृ. ६२३।

१३. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वर्णाश्रमविषय, पृ.-२६८।

१४. संस्कारविधि, विवाह प्रकरण, पृ.-१५१।

१५. आर्योद्देश्यरत्नमाला, ४४ संख्या।

-मेरठ (उ.प्र.)

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत समाजसुधार के विविध-सोपान

❑ डॉ. वर्षा भाटी...✍

स्वामी दयानन्द का पूरा जन्म समाज सुधार तथा जनकल्याण के लिए ही था, जब उनको अन्तिम बार विष दिया गया तब वे इन सामाजिक कार्यों से अवकाश प्राप्त न थे। दयानन्द का जन्म ही समाज सुधार के लिए हुआ था। उनकी शिक्षा, उनका व्यक्तित्व तथा जो उपलब्धियाँ हैं तथा जहाँ-जहाँ दयानन्द गये, शास्त्रार्थ किया, लोगों का अंधकार दूर किया ये सब समाज सुधार के अंग हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने समाज सुधार हेतु अपनी उत्तराधिकारिणी श्रीमती परोपकारिणी सभा को स्थापित किया। आर्यसमाज का अर्थ ही आर्य=श्रेष्ठ है अर्थात् श्रेष्ठ व्यक्तियों का समाज जो दयानन्द के बाद भी दयानन्द के वैदिक दर्शन को समाज हित के लिए जीवित बनाये रखेंगे।

सामाजिक हित को ध्यान में रखते हुए स्वामी दयानन्द ने समाजोत्थान के लिए आर्य समाज नामक संस्था की स्थापना की और उसका संविधान बनाया तथा उसे भारत के अनेक स्थलों पर स्थापित किया। जिसके दस नियम समाज सुधार के दस स्तम्भ हैं-

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य वर्तना चाहिए।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

दयानन्द के अनुसार १० नियमों का पालन यदि व्यक्ति करता है तो समाज का सुधार स्वयमेव ही हो जाता है। इन नियमों में धर्म, पन्थ कहीं भी आड़े नहीं आ रहा है । ये नियम विश्वकल्याण के अर्थ में हैं कोई विशेष समाज के लिए नहीं हैं अपितु मानवमात्र के लिए हैं। इनका पालन प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। ये सारी मानव जाति के लिए हैं। ये १० नियम सार्वभौम और सार्वकालिक हैं।

स्वामी दयानन्द के कतिपय कार्य ऐसे हैं जो

सर्वप्रथम रहे हैं। समाज सुधार के लिए प्रमुख अंग हैं, जिनके सही होने पर समाज का सुधार हो सकता है ऐसे संपूर्ण अंगों पर स्वामी जी ने बड़ा प्रयास किया है। इस सुधार में सबसे प्रथम शर्त यह है कि समाज का सुधार मनुष्य के सुधार से ही संभव है। मनुष्य का सुधार उत्तम शिक्षा एवं उत्तम आचरण के बिना नहीं हो सकता। उत्तम शिक्षा व आचरण प्राप्त करने के लिए दयानन्द ने वेदों की ओर लौटने का मार्ग प्रशस्त किया। यदि वेदों का अर्थ सत्य होगा तब ही शिक्षा का महत्त्व है। असत्य अर्थ से शिक्षा कुशिक्षा बन जाएगी। इसलिए समाज सुधार के निमित्त दयानन्द ने सर्वप्रथम ये कार्य किए-

वेदों का सही भाष्य- स्वामी दयानन्द ने जो वेदों के भाष्य देखे वे पूर्ण रूप से गलत किए गये थे। सबसे पहले स्वामी जी ने वेदों के भाष्य को यौगिक दृष्टि द्वारा सही-सही अर्थ समाज के सामने प्रस्तुत किया।

मानवता की उत्तमता- स्वामी दयानन्द ने पुरुषों, स्त्रियों एवं शूद्रों को शिक्षा एवं वेदों के पढ़ने के अधिकारों का सतर्क प्रमाण दिया। वह समाज में सबको उत्तम ज्ञान से युक्त करा सुदृढ़ समाज का निर्माण कराना चाहते थे। स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि- 'लड़कों और लड़कियों को बोलने, सुनने, चलने, बैठने, उठने, खाने, पीने, पढ़ने, विचारने तथा पदार्थों के जानने और जोड़ने आदि की शिक्षा भी करनी चाहिए। जो वेदों को अर्थ सहित यथावत् पढ़के शुभ गुणों का ग्रहण और उत्तम कर्मों को करता है, वही सबसे उत्तम होता है।'

स्वस्थ परिवार का निर्माण- समाज की सुदृढ़ व्यवस्था के साथ परिवार की स्वस्थ प्रणाली पर स्वामी दयानन्द ने बल दिया। परिवार समाज की इकाई है और वह परस्पर मेल युक्त हों।

भाषा सुधार - स्वामी दयानन्द ने हिन्दी भाषा के सुधार के लिए जो प्रयत्न किए वे सर्वविदित हैं। उन्होंने आर्य समाजी सदस्यों के लिए हिन्दी सीखना अनिवार्य कर दिया था। जितना हिन्दी भाषा का उपकार दयानन्द ने किया उतना आज तक कोई न कर सका।

यज्ञों पर बल- स्वामी दयानन्द वेदानुकूल आचरण की चर्चा करते हैं। यज्ञों की अनिवार्यता स्वामी जी ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए बताई है। इसका धार्मिक कारण से कोई लेना देना नहीं है। इसके पीछे स्वामी जी का तर्क है कि इतना प्रदूषण जो जल, वायु, पृथ्वी पर अधिक से अधिक फैल रहा है, यह मनुष्यों को भी रोगी बनाएगा, इसलिए शुद्ध पदार्थों को घी के साथ अग्नि में डालने से प्रदूषण नहीं होगा तथा वर्षा भी अच्छी होगी। वर्षा से ही सृष्टि की खुशहाली है, यह एक वैज्ञानिक पर्याय है।

स्वाधीनता एवं स्वदेशी प्रयोग- स्वामी जी ने विदेशी राज्य से अपना स्वतंत्र राज्य अच्छा माना है विदेशी राज्य माता-पिता के समान हितकारी ही क्यों न हो परन्तु स्वाधीनता सुखप्रद है, इसीलिए स्वामी जी ने राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए भरसक प्रयास किया तथा देश के नागरिकों को स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग की जानकारी दी। जिससे घरेलू उद्योगों को सहायता मिलेगी और राष्ट्र मजबूत होगा।

आर्थिक सुधार- दयानन्द ने आर्थिक सुधार के काफी प्रयास किए। इनका 'गोकरुणानिधि ग्रन्थ' पूरा आर्थिक सुधार को लेकर है। इसमें गाय की सुरक्षा और उसका पालन आर्थिक स्थिति मजबूत कर समाज को स्वावलंबी बनाता है। खेती की विद्या को जानना, अन्न की रक्षा, खाद, भूमि की परीक्षा, जोतना, बोना यह सब अर्थव्यवस्था को नियमित करने के साधन हैं। छोटे-छोटे लघु उद्योगों द्वारा समाज की स्थिति को ऊँचा उठाने के उपाय बताए हैं। किसान को राजाओं का राजा कहा है।

राजनीतिक सुधार- स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश

के षष्ठ समुल्लास में राजनीतिक सुधारों का वर्णन किया है। जिसमें उन्होंने राजधर्म, तीन सभा, दण्डधर्म, राजा के व्यसन, राज्य के अधिकार, प्रबन्ध सुरक्षा, संधि, व्यूह आदि राजनीतिक व्यवस्थाओं की चर्चा की है। दयानन्द ने लोकतंत्र प्रणालि की व्यवस्था बताई है। एक को स्वतंत्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए, किन्तु राजा को सभापति तदधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के अधीन और प्रजा राजसभा के अधीन रहे। उक्त सुधार का कितना सुन्दर प्रस्तुतीकरण दयानन्द ने किया है।

जाति भेद कर्मानुसार- दयानन्द ने मनुष्यों में केवल मनुष्य जाति मानी है अन्य नहीं। अपने-अपने गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर व्यक्ति की गणना होती है।

पाखण्ड का खण्डन- स्वामी दयानन्द ने जितना साहस तत्कालीन युग में दिखाया वह अद्वितीय था। जिस समय भारत की स्थिति अत्यन्त दयनीय तो थी लेकिन इन पाखण्डियों का जाल ऐसा बिछा हुआ था कि कोई इनके विरुद्ध खड़े होने की हिम्मत नहीं जुटा पाता था। दयानन्द ने पाखण्ड खण्डिनी पताका लहराकर इन पाखण्डियों के गृह में ही इनको पछाड़ा। सामाजिक कुरीतियों का खण्डन कर दयानन्द ने बड़ा उपकार इस राष्ट्र का किया।

अछूतोद्धार- दयानन्द ने अछूत समझे जाने वालों को शुद्धता से रहने का पाठ पढ़ाया। उनके लिए शिक्षा की बात की। उन्हें वेद पढ़ने का अधिकारी बताया तथा वे चाहे तो अपने गुणों के आधार पर आगे बढ़ सकते हैं।

स्त्री उत्थान- स्वामी दयानन्द ने राष्ट्र उत्थान के साथ स्त्रियों की दु:ख जन्य स्थिति की चिन्ता की। उन्हें शिक्षा की ओर उन्मुख किया, विधवा-विवाह का अर्थ समझाया, बाल-विवाह के लिए रोक लगाई। स्त्री को आगे लाने के लिए बार-बार गार्गी, मैत्रेयी के उदाहरण दिए। वेदों का मार्ग बताया। उसे पुरुष के समकक्ष सिद्ध किया। वेदों से यह प्रमाणित कर दिया कि स्त्री-पुरुष से अधिक सम्मानीय है। वह वे सब अधिकार रखती है जो एक पुरुष को प्राप्त हैं। वे भारत की स्वाधीनता के साथ स्त्री स्वाधीनता की भी माँग करते थे। दयानन्द स्त्री शिक्षा को समाज सुधार की पहली अवस्था मानते थे। स्वामी दयानन्द ने समाज सुधार के क्रम में कृषि, पशु नस्ल सुधार से लेकर स्वराज्य एवं शासनाध्यक्ष कैसा हो? तथा धर्म का स्वरूप क्या है तथा कैसा होना चाहिए? उक्त प्रत्येक विषय पर कार्य किया है। पाखण्ड के खण्डन के लिए उन्होंने सहस्रों व्यक्तियों के बीच अकेले निर्भीक होकर कई जगह शास्त्रार्थ किए। जिनमें उन्हें कई बार ईंट, पत्थर आदि का भी सामना करना पड़ा, किन्तु यह समाज सुधार का कार्य नहीं छोड़ा।

इतना ही नहीं देशोपकारक कार्य के साथ उन्होंने मुक्ति जैसे कठिन विषय पर भी लोगों का मार्गदर्शन किया है तथा योग और प्राणायाम का वर्णन सत्यार्थ प्रकाश में कर मनुष्य को स्वस्थ रहकर देश सेवा करने के गुण भी सिखाये हैं और कहा स्वस्थ मनुष्य ही मुक्ति की कामना कर सकता है। स्वामी दयानन्द के सामाजिक सुधार के सोपान इतने अधिक हैं कि उनकी यहाँ विस्तार से चर्चा दुष्कर है। उसका तर्क सम्मत कारण यह है कि दयानन्द को पूरा विश्व एक समाज सुधारक के रूप में ही जानता है। उनका पूरा जीवन ही सामाजिक सुधार के लिए बलिदान हो गया।

- **द्वारिका विहार, हरिद्वार**

शतहस्त समाहर सहस्त्रहस्त सं किर (अथर्व.-३/२४/५)

सैकड़ों हाथों से इकट्ठा करो और हजारों हाथों से दान करो।

महर्षिदयानन्देन प्रतिपादिता शिक्षा वर्तमानकालिकी शिक्षा च

❑ शिवदेव आर्यः...✍

शिक्षा मानवसमाजस्याभिन्नमङ्गमस्ति एतस्मात्कारणात् मानवनिर्माणस्यापि प्रमुखा घटिका विद्यते। मानवस्य जीवनयात्रायाः आरम्भः शिक्षणेन भवति। शिक्षाजगति प्रबलप्रयत्ने कृतेऽपि मानवस्य पूर्णरूपेण निर्माणविकासौ न सम्भवतः। अतोऽद्यतनीयासु परिस्थितिषु शिक्षा-सम्बन्धिगम्भीरमन्थनस्य आवश्यकता प्रतीयतेऽद्य।

काले काले मनीषिभिः शिक्षा परिभाषिता क्रियते। अत्र महर्षिणा दयानन्देन प्रतिपादितशिक्षायाः स्वरूपमुद्घाटयिष्यामः अनेन सह एव वर्त्तमानकालिक-शिक्षायाः स्वरूपमपि। ऋषिः दयानन्दानुसारं शिक्षायाः अर्थः, कन्यानां शिक्षा, विद्यार्थिनां शिक्षकानां च कर्त्तव्यानि, पठनपाठनविधिः, सहशिक्षाया हानिः, आर्ष-शिक्षा, बालकबालिकानां पाठशालानां पृथक्-पृथक् व्यवस्था, शिक्षायाः प्रारम्भिकमूलसिद्धान्ताः मातर्पितर्णिां कर्त्तव्यानि, वर्त्तमाने शिक्षायाः स्वरूपं चेत्यादिविषयाः लेखेऽस्मिन् प्रकाशिताः भविष्यन्ति।

शिक्षायाः विषये ऋषे दयानन्दस्य मान्यताऽस्ति 'यया विद्यायाः सभ्यतायाः, धर्मात्मतायाः, जितेन्द्रियतायाश्-चेत्यादिशुभगुणानां वृद्धिः भवेत् अविद्यादिदोषाणां च शमः जायते' सा शिक्षेत्युच्यते।[१] एतदेव तथ्यं ऋषिः दयानन्दो व्यवहारभानौ स्पष्टं कुर्वन् लिखति- 'यया मनुष्या विद्यादिशुभगुणान् प्राप्याविद्यादिदोषाश्च त्यक्त्वा सदानन्दिताः स्युः सोच्यते शिक्षा।'

महर्षेः मन्तव्यानुसारं शिक्षा परिष्कारसंस्काराधानयोः प्रथमं साधनं विद्यते। विचारेणानेन महर्षिणा दयानन्देन स्वप्रसिद्धग्रन्थे सत्यार्थ-प्रकाशस्य प्रमुखतया समुल्लासद्वयं शिक्षासम्बद्धं लिखितम्। ययोः द्वयोः समुल्लासयोः शिक्षायाः प्रारम्भिकमूलभूतसिद्धान्तानां वर्णनं कुर्वताऽध्ययनाध्यापनविधेरन्तर्गतशिक्षणालयेभ्यः पाठ्यक्रमस्यापि समायोजना कृता। विषयेऽस्मिन् प्रकाशः अग्रे प्राप्स्यते। शिक्षा मानवनिर्माणस्य प्रमुखं सोपानं विद्यते तथ्यमिदं दृष्टिगतं कुर्वता द्वितीयसमुल्लासस्यारम्भे शतपथब्राह्मणस्य प्रमाणं प्रस्तुवता महर्षिणा लिखितम्- **'मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद'**

समुल्लासेऽस्मिन् वर्णिताया: बालशिक्षायाः उत्तमसरणी गृहस्थानां कृते वरणीयोपादेया चास्ति। इयं मनुष्यनिर्माणस्याधारभूता शिक्षास्ति या मात्रा पित्रा च गृहकुले एव प्रदीयते। तदनन्तरं गुरुकुलेऽध्ययनस्य क्रमः प्रारभ्यते। यस्मिन्नसौ आचार्यस्यान्तेवासी भूत्वा शास्त्रीयज्ञानमधिगतं कुर्वन तदाचरणरूपेण आत्मसात् करोति। विद्याव्रतस्नातकोपाधिं चालङ्कृत्य समावर्तनेन गृहकुलं प्रत्यागच्छति।

शिक्षायाः तात्पर्यं केवलमक्षरज्ञानमेव नास्ति पूर्णशिक्षा सैवास्ति या भौतिकविकासेन सहाचारस्यापि विकासं कारयेत् **'सा शिक्षा या विमुक्तये'** यया सर्वाङ्गीणा समुन्नतिः संजायते सा भवति शिक्षा। ईदृश्याः शिक्षायाः प्राप्तौ सुयोग्यशिक्षकानां महती भूमिका भवति। विदुषः शिक्षकस्य स्वरूपं तस्य कर्त्तव्यानां च बोधः वेदे सविस्तरं प्राप्यते। ऋग्वेदीयप्रमाणेन स्वामिनो लिखन्ति **' स एवास्ति विद्वान् सर्वेषां मङ्गलकारी यः स्वयं धर्ममार्गं गत्वा अन्यान् धर्ममार्गं गन्तर्नि् कुर्यात्' (दयानन्दभाष्यः)।**

स्वामिदयानन्दानुसारं विद्वत्शिक्षकस्य कर्त्तव्यं राष्ट्रस्य भाविकर्णधारशिष्येभ्यः विद्यायाश्चरित्रस्य च शिक्षां दत्त्वा तान् सुयोग्यान् कुर्यात्। शिक्षकाः कीदृशाः भवेयुः?

विषयेऽस्मिन् स्वामिनो लिखन्ति ये नित्यनूतनविद्याग्रहणस्य इच्छुकाः, ऐश्वर्याभिलाषिणः, जितेन्द्रियाश्चेदृशाः अध्यापकाः एव येऽज्ञानिनामज्ञानं दूरीकृत्य तेभ्यः ज्ञानं ददति ते एव पूजनीयाः भवन्ति। अग्रेऽपि लिखन्ति यो मेधावी परोपकारी पूर्णपण्डितः तमेव सुयोग्यशिक्षकं ज्ञात्वा शिष्यैः प्रश्नोत्तरविधिना स्वस्यसर्वाः शङ्काः दूरीकर्त्तव्याः किन्तु योऽविद्वान् ईर्ष्यालुः कपटी स्वार्थी च भवेत् तस्मात् दूरे एव भवितव्यम्।

यथा शिक्षकानां छात्रान् प्रति[२] कर्त्तव्यं विद्यते यत् तेभ्यः प्रेम्णा शिक्षां दत्त्वा तान् सुसंस्कृतान् कुर्युः। तथैव छात्राणामपि शिक्षकान् प्रति कर्त्तव्यमिदमस्ति यन्मनसा सदैव छात्रैः ते शिक्षकाः सेवनीयाः।

विषयेऽस्मिन् महर्षिणा दयानन्देन येषु महत्त्वपूर्णतथ्येषु ध्यानमाकृष्टं तानि सन्त्येतानि–विद्यार्थिनां कृते उचितमिदं यत्ते विदुषां शिक्षकानां मनसा वाचा कर्मणा वा सत्कारं विधाय सुसंस्कृतान्नादिभिः नित्यं तेषां सेवां कुर्युः[३]। विद्यार्थिनः विद्यायाः सत्योपदेशस्य च प्रदातुः आचार्यस्य श्रेष्ठपुष्कलदक्षिणादिभिः सत्कारं कुर्युः[४]।

ब्रह्मचर्ये वीर्यनिग्रहं कृत्वा परिमिताहारविहारं कुर्वन्तः आचार्यस्य समीपे गत्वा सेवां च कृत्वा परिमिताहारविहारं कुर्वन् नीरोगी भूत्वा विद्याप्राप्तयेऽधिकाधिकं प्रयत्नशीलाः भवेयुः छात्राः[५]। ते एव विद्यार्थिनः श्रेष्ठाः भवन्ति ये सोत्साहं पठितपाठस्योत्तमपरीक्षां ददति। किन्त्वद्य पठनपाठने गुरुशिष्यपरम्परायाः उदात्तोऽयं क्रमो विलुप्तप्रायो दृश्यते। परिणामतः जीवने शिक्षायाः अवतरणस्यापि अवसानं दृष्टिगतं भवति। शिक्षायाः जीवनेन सह कश्चित् सम्बन्धः शेषो न विद्यते। नैतिकताया अभावे शिक्षिता अपि अशिक्षिता एव सन्ति। अद्य शिक्षायाः प्रचारः पूर्वापेक्षयाधिकं विद्यते पुनरपि मनुष्यः पशुत्वं प्रति पलायते तर्हि अस्य अयमेवार्थः यत् वर्तमानशिक्षायां क्वचित् तु त्रुटिरवश्या विद्यते। अद्य विद्यालयेषु केवलं छात्राणां बुद्धेः विकासस्य प्रयत्नो विधीयते तेषामङ्गत्रये आत्मनि शरीरे मनसि च किञ्चिदपि ध्यानं न दीयते। नैतिकतायाः धर्मस्य च पाठोऽद्य विद्यालयेषु न पाठ्यते। अस्यैव परिणामः यद्द्योच्चशिक्षासम्पन्नछात्रेषु अपि नैतिकतायाः धार्मिकतायाश्चाभावो दृश्यते परं महर्षिदयानन्दस्य मते शिक्षा ईदृशी विद्यते या व्यक्तौ सर्वाङ्गीणविकासेन सहैव तस्मिन् सर्वोत्तमगुणानामाधानं कारयेत्।

विद्यालयेषु महाविद्यालयेषु च त्वद्य चारित्रिकस्तरेऽपि छात्रः पतितो भवति। एतदर्थमेव स्वामिदयानन्देन सहशिक्षाया अपि विरोधः कृतः यतो हि विद्यालयेषु सहशिक्षया हानिरेव भवति। छात्राणां चरित्रपातने सहशिक्षायाः पर्याप्तं योगदानं विद्यते। महाविद्यालयानां विश्वविद्यालयानां च छात्राः छात्राश्च परस्परं चुम्बनालिङ्गनं कुर्वन्तः सर्वत्र द्रष्टुं शक्यन्ते। स्वामिनः सहशिक्षायाः पक्षे नासन्। विषयेऽस्मिन् ऋषिदयानन्दाः स्वग्रन्थे सत्यार्थप्रकाशे लिखन्ति–बालकबालिकानां पाठशालायाः पारस्परिकदूरी द्वि कोशपरिमिता स्यात्। तत्र च येऽपि अध्यापकाः याश्चाध्यापिकाः स्युः, भृत्याः अनुचराश्च स्युः तत्र कन्यानां पाठशालायां सर्वाः स्त्रियः, पुरुषाणां पाठशालायां च सर्वे पुरुषाः भवेयुः[६]। ऋग्वेदस्य एकस्य मन्त्रस्य भावार्थे स्वामिनो लिखन्ति–'हे विद्वांसो ये धर्मात्मानो विदुष्यः स्त्रियः स्युस्ताभिः सर्वाः कन्याः शिक्षयन्तु यतः कार्यनाशो न स्यात् सर्वथा विद्यायुक्ता भूत्वात्युत्तमानि कर्माणि कुर्युः (दयानन्द भाष्य २.१७.९)।

एकस्मिन्नेव काले एकस्यैव विषयस्य अध्ययने पूर्णसमयं दत्त्वा क्रमशो विषयाणामध्ययनविधिः प्रतिपादिता महर्षिणा दयानन्देन। शिक्षाप्राप्तेः क्रमोऽयं शिक्षां सम्यक् करोति। गुरुगर्भे स्थित्वा प्राप्ता शिक्षा ज्ञानकर्मपरिपाकेन फलवती भवति। ज्ञानकर्मणोरयं महर्षिदयानन्देन स्वग्रन्थेषु शिक्षायाः विभिन्नबिन्दुषु व्यापकं प्रकाशं कुर्वता ऋग्वेदयजुर्वेदयोः भाष्ययोरपि अनेकानां वेदमन्त्रणां शिक्षापरकम् अर्थं कुर्वता शिक्षाविषयकमहत्त्वपूर्णतथ्यानि प्रति ध्यानमाकृष्टं कृतम्। ऋषेः मन्तव्यानुसारं वेदे शिक्षाया उपादेयतानिवार्यता च विद्याप्राप्तेरुपायाः शिक्षकानां योग्यता, समाजे विदुषां सत्कारः शिक्षायां दण्डविधानम् इत्यादीनां

विषयाणां समीचीनं स्पष्टीकरणं दृष्टिगतं भवति। महर्षिकृतवेदभाष्यस्य शिक्षाविषयकतथ्यानि अतिमहत्त्वपूर्णानि सामयिकदृष्ट्या चापि अत्यन्तोपादेयानि सन्ति। शिक्षायाः सुफलं लब्धुमद्यतनीया निर्धारितशिक्षासम्बन्धिनो मापदण्डाः परिवर्तनीयाः सन्ति।

विद्यालयेषु लिखितं भवति यत् शिक्षार्थमागच्छन्तु सेवार्थं च गच्छन्तु किन्त्वद्य छात्रः सेवार्थं समाजे न गच्छति अपितु स्वार्थाय गच्छति। प्रश्नोऽयं विद्यते ईदृश्याः शिक्षायाः को लाभः येन छात्रस्य बौद्धिकं स्तरं तु वर्धते परं मानसिकचारित्रिकाध्यात्मिकदृष्ट्यासौ पतितो भवति। ईदृश्यां शोचनीयावस्थायामाशायाः रश्मिः अस्ति तु केवला सार्षशिक्षैवास्ति। महर्षिणा पठनपाठनविधौ ऋषिकृतग्रन्थानामध्ययनस्य निर्देशः कृतः। सन्दर्भेऽस्मिन् एते आर्षग्रन्थानां लाभमनार्षग्रन्थानां च हानिं दर्शयन्तः लिखन्ति-यत् आर्षग्रन्थानां पठनमीदृशमस्ति। यथा-एकवारं निमज्ज्य बहुमूल्यरत्नानां प्राप्तिरेव।

अद्यत्वे पाश्चात्यशिक्षापद्धतावाधारितविद्यालयेषु प्रचलितदूषितसहशिक्षापद्धतिः सर्वविषयाणां अल्पसमये पठनस्य विधानं च स्वामिना विहितपद्धत्यां नास्ति। अद्यतनीयशिक्षाप्रणाल्यां दण्डविधानमपि समाप्तं दृश्यते, प्रायः अद्य गृहस्थिनो विद्यालये स्वपुत्रपुत्रीणां ताडनादिकस्य विरोधं कुर्वन्ति, शिक्षकोऽपि बिभेति क्वचित् विद्यालयात् तस्य निष्कासनं न स्यात् परं सन्दर्भेऽस्मिन् स्वामिना दयानन्देन उद्धृतं यत्-

'सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः।।[७]

अर्थात् ये मातरः पितरश्च अन्ये गुरवः स्वसन्तानानां शिष्याणां च ताडनं कुर्वन्ति ते स्वपुत्रान् शिष्यान् च स्वहस्तैः अमृतपानं कारयन्ति परं ये तेषां लालनादिकं कुर्वन्ति ते स्वहस्तैः तेभ्यः विषं दत्त्वा तान् नष्टान् भ्रष्टान् च कुर्वन्ति। एवं महर्षिदयानन्दस्य शिक्षाविषये विचारधाराऽत्यन्तसूक्ष्मा मनोवैज्ञानिकी चास्ति। यथायोग्यसन्ततेः निर्माणस्य योजनापि जन्मनः प्राक् गर्भाधानकाले एव कर्त्तव्या। बालकानां हृदये सर्वाधिकप्रभावो मातुः शिक्षाया एव भवति। अतः स्वामिनः पुनः द्वितीयसमुल्लासे कथयन्ति-'बालकेभ्यो मातोत्तमशिक्षां दद्यात्।'

अद्यतनयुगस्य शिक्षायाः समुचितविकल्प आर्षशिक्षा विद्यते यत्र महर्षिप्रणीतग्रन्थानामध्ययनं भवति आधुनिकज्ञानसम्पन्नव्यक्तौ सर्वशुभगुणानामाधानं भवति।

स्वामिदयानन्दस्य शिक्षादर्शनस्य वर्णनमस्मिन् लघुशोधपत्रे न पूर्णतया कर्त्तुं शक्यते। पुनरपि एतद्विवेचनेन इदं तु सिद्धमेव यत् महर्षिदयानन्दः एकस्याः ईदृश्याः शिक्षाप्रणाल्याः पक्षपाती आसीत् यदन्तर्गतशिक्षितसमाजः पूर्णरूपेण सभ्यः, सशक्तः, सुसम्पन्नः आनन्दयुक्तश्च भवेत्। अद्यावश्यकतास्ति या शिक्षा अस्मान् अध्यात्मं चरित्रनिर्माणं देशहितचिन्तनं च शिक्षयेत्। परमाधुनिकशिक्षायामेतेषां गुणानां गवेषणा व्यर्था एवास्ति। अतः शिक्षाया उचितदिशाया चयनमावश्यकमस्ति।

सन्दर्भसूची-

१. सत्यार्थ-प्रकाशः स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः संख्या-२२-२३।

२. परेहि विग्रमस्तृतमिन्दं पृच्छ विश्चितम्। यस्ते सखिभ्य आ वरम्। ऋग्वेदः-१.४.४।

३. ऋग्वेदः-१.६१.१६।

४. नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयादिन्द्र दक्षिणा मघोनी। ऋग्वेदः-२.११.२१।

५. ऋग्वेदः-४.२३.१।

६. सत्यार्थ-प्रकाशः, तृतीयसमुल्लासः।

७. सत्यार्थ-प्रकाशः, द्वितीयसमुल्लासः।

- शोधच्छात्रः
संस्कृतविभागः,
गुरुकुलकाङ्गड़ी-समविश्वविद्यालयः,
हरिद्वारम्

भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन में महर्षि दयानन्द का योगदान

❑ डॉ. राकेश कुमार आर्य...✍

जब-जब महर्षि दयानंद का नाम आता है तो हमें एक ऐसे महान व्यक्तित्व का बोध होता है जो भारतवर्ष में समग्र क्रांति का अग्रदूत था। जिसने सोते हुए भारत को जगाया और वेदों की ओर लौटने का संदेश देकर भारत की चेतना को बलवती करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जिसके आने से भारत सचेत, सजग और जागरूक होकर आगे बढ़ा और गुलामी के जुए को परे फेंककर मुक्ति अर्थात मोक्ष का उपासक भारत एक दिन मुक्ति अर्थात् स्वतंत्रता को प्राप्त कर आनंदोत्सव मनाने लगा।

दयानन्द का प्रारंभिक जीवन-

स्वामी दयानंद जी महाराज का प्रारंभिक नाम मूल शंकर अंबा शंकर तिवारी था। इनका जन्म १२ फरवरी १८२४ को टंकारा गुजरात में हुआ था। ब्राह्मण परिवार में जन्मे महर्षि दयानंद सरस्वती जी महाराज के पिता एक समृद्ध परिवार के व्यक्ति थे जिनके पास धन-धान्य और सांसारिक सुख ऐश्वर्य की किसी प्रकार की कमी नहीं थी। इनकी जन्मभूमि मोरबी राज्य (गुजरात) में स्थित थी। इनके पिता का नाम अंबा शंकर तिवारी था।

हम सभी जानते हैं कि जब महात्मा बुद्ध ने एक वृद्व व्यक्ति को पहली बार देखा था तो उन्हें वैराग्य हुआ और वह इस सोच में पड़ गए कि एक दिन वह स्वयं भी इसी प्रकार की वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाएंगे। इसी प्रकार जब उन्होंने किसी मृत व्यक्ति के शव को ले जाते हुए कुछ लोगों को देखा तो उनके बारे में जानकार उन्हें और भी अधिक विरक्ति का बोध हुआ कि संसार से एक दिन इसी प्रकार जाना है तो जाने से पहले कुछ ना कुछ बड़ा काम करना चाहिए। ऐसी घटनाओं से जो सीखते हैं, वही महान बनते हैं । महर्षि दयानंद जी के जीवन में भी ऐसी कई घटनाएं हुई थीं। जिन्होंने उनके जीवन में निर्णायक मोड़ ला दिया था। जी हां, हमारा संकेत उसी घटना की ओर है जब महाशिवरात्रि के दिन एक चूहा शिव की प्रतिमा पर उछल-कूद कर रहा था और उस पर चढ़े प्रसाद को खा भी रहा था, इसके साथ-साथ उसी प्रतिमा पर मल-मूत्र भी कर रहा था। स्वामी दयानंद जी ने जब यह दृश्य देखा तो उनके मन में कई प्रकार के प्रश्न उठे। बस, इन्हीं प्रश्नों ने बालक मूलशंकर को महर्षि दयानंद बनने के लिए उठ खड़ा होने का महत्वपूर्ण संदेश दे दिया। इसी प्रकार उनके एक चाचा और बहन की मृत्यु ने भी उनमें विरक्ति के भाव पैदा किए थे।

बन गए वीतराग योगी-

महर्षि दयानन्द जी ने चूहे वाले दृश्य को देखने के पश्चात् २१ वर्ष की अवस्था में संन्यासी जीवन का चुनाव किया। इसके पश्चात वह सच्चे शिव की खोज में निकल पड़े। घर - बार, परिवार, कुटुंब - कबीला,परिजन और प्रियजनों से पीठ फेरकर वह मूलशंकर शंकर के मूल को खोजने के लिए चल पड़े। संसार के साधारण जन जिस जीवन को जीने के पश्चात ढ़लती हुई उम्र में जाकर नीरस समझ कर त्यागने की बार-बार चेष्ठा करते हैं, पर त्याग नहीं पाते, उस जीवन को स्वामी दयानंद जी ने बिना भोगे ही नीरस मान लिया और अनेक प्रकार के व्यंजन जीवन रूपी थाली में होने के उपरांत भी उनसे मुंह फेरकर सत्य मार्ग के पथिक बनकर घर से निकल पड़े। एक वीतराग योगी बनकर वह सत्य की खोज के लिए चल पड़े। पर पिता ने घर छोड़ गए मूलशंकर को फिर खोज निकाला और घर में लाकर कड़े पहरे में डाल दिया।

पिता ने प्रयास किया कि पुत्र को विवाह के बंधन में बांध दिया जाए ,पर जो पुत्र भीतर से सारे बंधनों को शिथिल कर चुका था और उन्हें पूर्णतया नष्ट करने की

प्रतिज्ञा ले चुका था, उस पर विवाह जैसे बंधन में पड़ने के प्रलोभन का अब क्या प्रभाव पड़ने वाला था? विवाह संबंधी प्रस्ताव को उन्होंने बड़ी सहजता से अस्वीकार कर दिया। जिसे लेकर पिता-पुत्र में कई बार विवाद भी हुआ, पर उन्होंने जिस रास्ते पर चलने का संकल्प ले लिया था उसके समक्ष पिता को झुकना पड़ा। स्वामी जी महाराज अंतरात्मा की आवाज पर चलते थे। अत: पिता के प्रस्ताव के समक्ष भी वह अडिग बनकर डटे रहे। यही कारण था कि आगे चलकर ब्रिटिश साम्राज्य जैसी विशाल चट्टान से लड़ने का साहस कर सके।

लग गए राष्ट्रवासियों की मुक्ति की साधना में-

स्वामी दयानन्द जी महाराज महान व्यक्तित्व के धनी थे। वे उस समय अपनी मुक्ति के साथ-साथ राष्ट्रवासियों की मुक्ति की साधना में भी लगे हुए थे। उन्हें अपने देशवासियों की गुलामी की स्थिति को देखकर बड़ी पीड़ा होती है। उनकी आत्मा उन्हे कचोटती थी, और कहती थी कि दयानंद! अपने लिए तो सब जीते हैं ,संसार के लिए जो जीता है वही 'मुकद्दर का सिकंदर' होता है। स्वामी जी महाराज अंतरात्मा की आवाज को सुनकर जहां अपनी मुक्ति साधना में लगे रहते थे, वहीं वे राष्ट्र के मोक्ष अर्थात स्वाधीनता प्राप्ति की साधना में भी लगे रहते थे। उन्होंने इस बात को गहराई से समझ लिया था कि भारतवर्ष में वेद की बात करना और मनवाना तभी संभव है जब विदेशी शासक से मेरा देश मुक्त हो।

यही कारण था कि जब १८४६ में उन्होंने घर-बार छोड़ा तो २१ वर्ष की चढ़ती हुई जवानी के दौर में उन्होंने अंग्रेजों को चुनौती देना आरंभ किया। जहां भी वह नवयुवक पहुंचता था वहीं लोगों को ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्ति के लिए जागरूक करता था। स्वामी दयानंद जी की लहलहाती जवानी जिस प्रकार देश के काम आ रही थी उससे प्रेरणा लेकर आगे चलकर इसी अवस्था के और इससे भी छोटी अवस्था के कितने ही क्रांतिकारी युवा भारत की स्वाधीनता के लिए मैदान में कूद पड़े थे। इस प्रकार के क्रांतिकारी आंदोलन के रक्तबीज को संपूर्ण भारत वर्ष में बिखेरने वाले सबसे पहले व्यक्ति स्वामी दयानंद जी महाराज ही थे। भारत की उर्वरा भूमि ने स्वामी दयानंद जी के इस रक्तबीज को बड़ी शीघ्रता से पकड़ा और मां भारती की कोख से इसके पश्चात् इतने क्रांतिकारी उत्पन्न हुए कि अंग्रेजों को उन्हें गिनना तक कठिन हो गया । अंग्रेज हमारे क्रांतिकारी आंदोलन को जितना ही अधिक दबाने का प्रयास करते थे वह उतना ही अधिक भड़कता था। हमारा मानना है कि भारत की पवित्र और वीरभूमि पहले दिन से ही विदेशी आक्रमणकारियों और शासकों को भारत से खदेड़ने के लिए सचेष्ट और सक्रिय रही, पर स्वामी जी महाराज जैसे कुशल हलधर ने जब यहां आकर क्रांति का हल चलाया तो उसके बाद तो इस वीरभूमि ने अनेक वीर रत्न उत्पन्न किए। स्वामी जी से प्रभावित होकर और उनसे प्रेरणा लेकर तात्या टोपे, रानी लक्ष्मीबाई, धन सिंह कोतवाल, नाना साहब पेशवा, अजीमुल्ला खां, बालासाहेब आदि ने मां भारती की स्वाधीनता के लिए कठोर परिश्रम किया और अपने बलिदान दिए।

१८५७ की क्रांति के जनक-

१८५५ ईस्वी में स्वामी दयानन्द जी महाराज ने माउंट आबू से लेकर हरिद्वार तक की यात्रा की। इस दौरान वह जितने भी लोगों से मिले उन सबको क्रांति के लिए तैयार रहने का आवाहन करते चले गए। अपनी योजनाओं को सिरे चढ़ाने के लिए स्वामी जी महाराज ने रोटी तथा कमल की योजना बनाई और सभी को देश की आजादी के लिए जोड़ना प्रारंभ किया। कुशल रणनीतिकार की भांति कार्य करते हुए स्वामी जी महाराज ने इस कार्य के लिए सबसे पहले साधु-संतों को जोड़ा। इसके पीछे कारण यह था कि साधु-संतों के साथ अनेक अनुयायी और उनके शिष्य होते हैं। इसके साथ-साथ मंदिरों की सुरक्षा के लिए उनके पास एक सादे कपड़ों में रहने वाली सेना भी होती थी। स्वामी जी महाराज जी की मान्यता थी कि यदि साधु संत अपने शिष्यों, अनुयायियों, सैनिकों को संकेत कर देंगे तो निश्चय ही उसके शुभ परिणाम होंगे।

३ फरवरी १८३५ को ब्रिटेन की पार्लियामेंट ने लॉर्ड मैकाले को भारत में शिक्षा के क्षेत्र में विशेष कार्य करके भारत की गुरुकुल शिक्षा प्राणी को नष्ट करने का

अधिकार और प्रमाण पत्र देकर अधिकृत किया था। स्वामी दयानंद जी महाराज ने जब लॉर्ड मैकाले की इस भारत विरोधी मानसिकता को समझा तो उन्होंने २१ वर्ष की अवस्था में ही लोगों को लॉर्ड मैकाले की शिक्षा नीति का बहिष्कार करने की प्रेरणा देना आरंभ किया। इसके पश्चात उन्होंने लोगों को गुरुकुल में जाकर वैदिक शिक्षा संस्कार लेने के लिए आंदोलित करना आरंभ किया। गुरुकुल शिक्षा पर अधिक जोर देकर स्वामी दयानंद जी महाराज ने लॉर्ड मैकाले की शिक्षा नीति का विरोध इसलिए किया कि नई शिक्षा नीति से हमारी युवा पीढ़ी का बिगड़ना निश्चित था। जबकि भारत की गुरुकुल शिक्षा प्रणाली उन्हें देशभक्त बनाती।

लॉर्ड मैकाले की नीति का विरोध-

लॉर्ड मैकाले की शिक्षा नीति का स्वामी दयानंद जी महाराज और उनके पश्चात उनके उत्तराधिकारी आर्य समाज और आर्य समाज के क्रांतिकारी नेताओं ने जिस प्रकार विरोध किया उसी का परिणाम था कि १९३१ की जनगणना के समय ३० करोड़ की भारत की जनसंख्या में से मात्र ३ लाख लोग ही ऐसे निकले थे जिनको अंग्रेजी शिक्षा संस्कार मिले थे या कहिए कि जो अंग्रेजी कान्वेंट स्कूलों से पढ़कर बाहर आए थे। अंग्रेजों ने इन ३ लाख लोगों को इस प्रकार प्रस्तुत किया था कि जैसे ये ही ज्ञानी पुरुष हैं और शेष भारत अज्ञानी और जंगली जानवरों का देश है। देश का प्रचलित इतिहास भी हमें यही बताता है कि अंग्रेजों से पहले हमारे देश में जंगली और अज्ञानी लोग रहते थे।

जिस देश में कणाद जैसे ऋषि ने कभी परमाणु की खोज की थी, ऋषि भारद्वाज ने विमानों को बनाने की तकनीकी की खोज की थी और अगस्त्य ऋषि ने विद्युत के तारों का आविष्कार किया था, उसका सारा ज्ञान विज्ञान इतिहास के इस भ्रम चक्र में दबकर रह गया।लोगों ने स्वामी जी की बात को स्वीकार किया और उन्होंने अपनी परंपरागत गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को छोड़ा नहीं। इस प्रकार स्वामी दयानंद जी महाराज ने लॉर्ड मैकाले का जनाजा उसके जीते जी ही निकाल दिया था।

१९३७ में जाकर कांग्रेस ने अपनी वर्धा स्कीम के द्वारा लॉर्ड मैकाले को फिर से जीवित कर लिया था। जब कांग्रेस ने लॉर्ड मैकाले की शिक्षा से भी भंयकर शिक्षा नीति स्वाधीन भारत के लिए तय की थी। काश! कांग्रेस की उस शिक्षा नीति को लागू होने से रोकने के लिए भी हमें उस समय कोई दयानन्द मिल गया होता?

स्वामी दयानन्द जी की क्रांतिकारी विचारधारा-

१८५७ की क्रांति के लिए स्वामी दयानन्द जी महाराज के गुरु रहे स्वामी विरजानन्द जी महाराज और उनके गुरु पूर्णानन्द और पूर्णानन्द जी के भी गुरु आत्मानंद जी उस समय विशेष कार्य कर रहे थे। स्वामी विरजानंद जी महाराज ने उस समय मथुरा में एक विशेष कार्यक्रम में अपने ओजस्वी वक्तव्य के माध्यम से देश के लिए काम करने हेतु प्रेरित किया था। उस समय हमारी खाप पंचायतों के पास ७५००० लोगों की एक विशाल सेना हुआ करती थी। खाप पंचायतों के लोगों ने स्वामी ब्रजानन्द जी को ७५००० की उस समय की आजाद हिंद फौज का नेतृत्व सौंप दिया। स्वामी जी महाराज ने अपने जोशीले राष्ट्रवादी भाषण से लोगों को हिला कर रख दिया था। इसी परंपरा को लेकर स्वामी दयानन्द जी महाराज ने आगे चलकर देश की आजादी के लिए लोगों को खड़ा होने की प्रेरणा दी थी। इस घटना से और तथ्य से हमें यह शिक्षा लेनी चाहिए कि स्वामी दयानन्द जी महाराज जिस अलख को जगाने का कार्य कर रहे थे उसमें वह अकेले नहीं थे। आग तो थी, बस उसे तेज करने की आवश्यकता थी। जिसके लिए स्वामी दयानन्द जी जैसे ओजस्वी नायक की आवश्यकता थी।

१८५७ की क्रांति अंग्रेजों द्वारा की गई प्रति क्रांति के पश्चात जब क्रांति की लौ कुछ मद्धम पड़ी तो भी स्वामी जी महाराज लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति के प्रति लोगों को जागरूक करते रहे। इतना ही नहीं, जब अंग्रेजों ने १८५७ की क्रांति को प्रति क्रांति के माध्यम से तात्कालिक आधार पर असफल करने में सफलता प्राप्त कर ली। उन्होंने भारतवर्ष में अपने न्यायालय भी स्थापित कर दिए तो भी स्वामी जी महाराज ने लोगों को उनके

न्यायालयों का बहिष्कार करने की प्रेरणा दी। स्वामी जी महाराज का कहना था कि अंग्रेज न्यायशील नहीं हैं, क्योंकि वह अन्याय करते हुए भारत के लोगों के अधिकारों का दमन कर रहे हैं । ऐसा कहकर स्वामी जी महाराज ने अंग्रेजों के न्यायशील होने की हवा निकाल दी। स्वामी जी महाराज ने लोगों को बताया कि इन अत्याचारी और अन्याय प्रिय लोगों के न्यायालयों से हमें न्याय नहीं मिल सकता। इनके दमनकारी कानून अत्याचार तो कर सकते हैं पर किसी भी न्याय मांगने वाले को न्याय नहीं दे सकते। स्वामी दयानन्द जी महाराज की क्रांतिकारी परम्परा और भावना को स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों को राष्ट्रभक्ति का पाठ पढ़ाकर जारी रखा।

आजादी को लेकर स्वामी जी की घोषणा-

स्वामी जी की इस प्रकार की प्रेरणा का ही परिणाम था कि इसके पश्चात लोगों ने अंग्रेजों के न्यायालयों का भी बहिष्कार कर दिया था। स्वामी जी महाराज ने १८५७ की क्रांति के पश्चात ही लोगों को यह कह दिया था कि अभी आजादी को प्राप्त करने में १०० वर्ष का भी समय लग सकता है। स्वामी जी महाराज की यह भविष्यवाणी सही साबित हुई, क्योंकि क्रांति के लगभग ९० वर्ष पश्चात् जाकर देश को आजादी मिली।

स्वामी दयानन्द जी महाराज के गुरु विरजानन्द जी ने उन्हें जहाँ वैदिक शिक्षा दी, वहीं उन्हें राष्ट्र जागरण के लिए भी एक योद्धा के रूप में तैयार किया। उनके गुरु जी ने उनके भीतर की प्रतिभा को पहचान लिया था और वह समझ गए थे कि जिस उद्देश्य को लेकर वे जीवन भर कार्य करते रहे उसे भारत की स्वाधीनता के रूप में केवल दयानंद ही प्राप्त कर सकता है। यही कारण था कि स्वामी जी महाराज जब अपने गुरु विरजानंद जी से दीक्षा लेकर विदा हो रहे थे तो गुरु जी ने अपने शिष्य द्वारा गुरु दक्षिणा में दी जा रही लौंग को लेने से यह कहकर इंकार कर दिया कि दयानंद तुझसे मैं और कुछ लेना चाहता हूं और वह 'और कुछ' यही है कि लोगों को अज्ञान और पाखण्ड के अन्धकार से बाहर निकालो। जिससे उनके भीतर वेदभक्ति और देशभक्ति के साथ-साथ ईश भक्ति का भी संचार हो।

गुरु की आज्ञा को किया शिरोधार्य-

स्वामी जी महाराज ने अपने गुरु जी की आज्ञा को शिरोधार्य कर सारे राष्ट्र का भ्रमण किया और वैदिक शास्त्रों के ज्ञान का प्रचार प्रसार किया। इस काल में ऋषि दयानंद को अनेक प्रकार के कष्टों, अपमानजनक टिप्पणियों और अपमानजनक व्यवहार का सामना करना पड़ा। पर वह तनिक भी विचलित नहीं हुए। क्योंकि उनका आदर्श यही था :-

निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

अर्थात् नीति में निपुण मनुष्य निंदा करें या प्रशंसा करें, लक्ष्मी आए या चली जाए, आज ही मृत्यु हो जाए या युग युगों के बाद हो, परन्तु धैर्यवान् मनुष्य कभी भी न्याय के मार्ग से अपना कदम पीछे नहीं हटाते।

कहने का भाव है कि संसारी लोग चाहे गाली दें या स्तुति करें। धन आए या जाए, वे आज मरें या १०० वर्ष जिएं, लेकिन धैर्यवान् मनुष्य न्याय के मार्ग से कभी नहीं हटते।

ऋषि का अमृत मंथन-

अपने आप को विकल्पविहीन संकल्प के प्रति समर्पित कर स्वामी दयानन्द जी महाराज निरंतर आगे बढ़ते रहे। स्वामी जी महाराज ने अपने संकल्प की पूर्ति के लिए अनेक सम्प्रदायों व मतों के ग्रन्थों को पढ़ा। उनका सत्य सार निकाला और जितना जितना जिसमें कूड़ा कबाड़ भरा हुआ था उस सबको साफ करने का महत्वपूर्ण और भागीरथ प्रयास किया। उनके इसी अमृत मंथन का परिणाम उनका अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश बना। उनके इस अमृत मंथन के कार्य से उस समय के ईसाई समाज के साथ-साथ मुस्लिम और सनातन अर्थात पौराणिक मान्यताओं में विश्वास रखने वाले लोग बड़ी संख्या में उनके विरोधी हो गए।

स्वामी दयानन्द जी महाराज ने सामाजिक आधार पर अपने विरोधियों से लोहा लिया और सांप्रदायिक आधार पर भी लिया। इसके साथ-साथ उन्होंने राजनीतिक स्तर पर जाकर उस समय की सबसे बड़ी शक्ति ब्रिटिश साम्राज्य को ललकार कर उसे भी अपना विरोधी बनाया। इसके उपरान्त भी वे निर्भीकता के साथ अपना कार्य करते रहे। स्वामी जी महाराज ने अपने अमृत मन्थन के पश्चात यह सिद्ध किया कि इस संसार के सभी ग्रन्थ खोखले हैं और वे सभी वेदों के आगे कभी नहीं टिक सकते। इस प्रकार एक वेदोद्धारक ऋषि के रूप में उन्होंने संसार को वेदों का मार्ग बताया।

१८५५ में आबू पर्वत से जगह-जगह प्रवचन करते हुए वे हरिद्वार कुम्भ में पहुंचे थे। हरिद्वार में ही एक पहाड़ी के एकान्त में उन्होंने पांच ऐसे व्यक्तियों से वार्ता की थी जो १८५७ की क्रांति के कर्णधार बने। ये पांच व्यक्ति थे नाना साहब, अजीमुल्लाखान, बाला साहब, तात्यां टोपे व बाबू कुंवर सिंह। क्रांति को जन-जन तक पहुंचाने के लिए 'रोटी व कमल' की इतिहास प्रसिद्घ योजना यहीं बैठकर तैयार की गयी थी। क्रांति के समय स्वामी जी लगातार सभी क्रांतिकारियों के संपर्क में रहे। स्वामीजी के मार्गदर्शन में पूरे देश में साधु संतों ने राष्ट्रवाद का संदेश दिया। वे क्रांति की असफलता से कभी निराश नही हुए। उन्होंने १८५७ की क्रांति के पश्चात् कहा था कि अब हमें स्वतंत्रता के लिए सौ वर्ष का संघर्ष करना पड़ सकता है, और १९४७ में जब देश आजाद हुआ तो उस समय महर्षि दयानन्द की भविष्यवाणी को ९० वर्ष पूर्ण हो चुके थे। इस प्रकार देश की आजादी की मशाल को १९४७ में सौंपने वाले अदृश्य हाथ स्वामी दयानंद के ही थे।

आज हमारा देश पुनः कई चुनौतियों से जूझ रहा है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, (हिंदुस्तान) आर्यभाषा, (हिंदी) आर्यसंस्कृति (हिंदू, हिंदुत्व) सभी को अभूतपूर्व संकट है। जिनके लिए आज पुनः महर्षि दयानन्द जैसे दिव्य पुरूष की हमें आवश्यकता है। उनके जन्म के द्विशताब्दी समारोह के अवसर पर हमें उनके जीवन से प्रेरणा लेकर राष्ट्र के सम्मुख उपस्थित समस्याओं का समाधान करने की दिशा में ठोस कार्य करने की आवश्यकता है।

१८५७ की क्रांति के पश्चात् देश में जितना भी क्रांतिकारी आंदोलन चला उस सबके क्रांतिकारी नेता स्वामी दयानंद जी से ही प्रभावित थे। यहां तक कि नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने भी महाशय कृष्ण से लाहौर आर्य समाज में कहा था कि आर्य समाज तो उनकी मां है। आर्य समाज में जो भी व्यक्ति भाग ले रहा है उसका किसी न किसी रूप में आर्य समाज से संबंध अवश्य है, भले ही वह किसी भी मत पंथ से संबंध रखता हो परंतु दयानंद जी के स्वदेशी के आवाहन का उस पर प्रभाव है ही। क्योंकि स्वामी जी ने ही सबसे पहले कहा था कि स्वदेशी राज्य ही सर्वोपरि उत्तम होता है। (भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आर्य समाज का विशेष (८०%) योगदान, पृष्ठ-१९५)

नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने वीर सावरकर, श्यामजी कृष्ण वर्मा जैसे विदेश में सक्रिय आर्य नेताओं के सहयोग से ही आजाद हिंद फौज का निर्माण किया था। आचार्य सत्यप्रिय जी ने तो उन्हें राजाराम जैसा बताया था कि जैसे लाखों वर्ष पहले यह कार्य राजा राम ने बाहर ही बाहर अपनी वानरी सेना बनाकर लंकापति रावण का वध किया था और लंका पर विजय प्राप्त की थी वैसे ही भारत मां की आजादी के लिए बाहर के देशों में जाकर आजाद हिंद फौज बनाई। जिससे अंग्रेजों से लड़ने में बड़ी भारी सहायता और सफलता प्राप्त हुई।

वास्तव में यह सब स्वामी दयानंद जी महाराज जी के अमृत मंथन और उनकी पुण्य प्रेरणा का ही प्रताप था।आज जबकि सारा देश अमृत महोत्सव मना रहा है, तब स्वामी दयानंद जी महाराज के अमृत मंथन की ओर भी सरकार लोगों का ध्यान दिलाए।

-लेखक सुप्रसिद्ध इतिहासकार एवं भारत को समझो अभियान समिति के राष्ट्रीय प्रणेता हैं।

तेजस्वी राष्ट्रवाद के समर्थक और समाज सुधारक थे - स्वामी दयानन्द

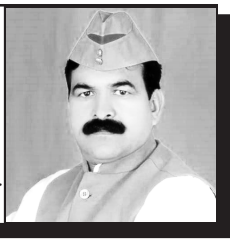

❑ श्री लखन लाल आर्य...✍

समाज सुधारक के रूप में ऋषि दयानन्द-

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने समय में प्रचलित बाल विवाह जैसी अनेक कुरीतियों का डटकर विरोध किया। उन्होंने लोगों को शास्त्रों के माध्यम से बाल विवाह जैसी कुप्रथा के विरुद्ध जागृत करने का कार्य किया। उन्होंने लोगों को बताया कि २५ वर्ष की अवस्था से पूर्व ब्रह्मचर्य का नाश करना जीवन और जगत के व्यवहार को बाधित करना होता है। बाल विवाह होने से मनुष्य दुर्बल होता है और समय पूर्व ही उसकी मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार स्वामी जी महाराज ने उस समय समाज में प्रचलित सती प्रथा का भी विरोध किया। उन्होंने सती प्रथा को नारी जाति पर पुरुष समाज का भयंकर अत्याचार बताया और यह कहकर उसका विरोध किया कि-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

-मनुस्मृति ३/५६

अर्थात् जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते हैं और जहाँ स्त्रियों की पूजा नहीं होती, उनका सम्मान नहीं होता वहाँ किए गए समस्त अच्छे कर्म निष्फल हो जाते हैं।

स्वामी दयानन्द जी महाराज ने लोगों को समझाया कि सती प्रथा जैसी अमानवीय प्रथा को समाप्त किया जाए और नारी के साथ सम्मान और प्रेम का व्यवहार किया जाए। इसी प्रकार स्वामी जी महाराज ने विधवा विवाह पर भी अपने स्पष्ट विचार रखे और लोगों को विधवा विवाह करने के लिए प्रोत्साहित किया। उस समय विधवाओं को बहुत ही उपेक्षा और तिरस्कार के भाव से देखा जाता था। उनकी स्थिति बड़ी दयनीय होती थी।

किसी भी शुभ कार्य में उनका उपस्थित होना अपशकुन माना जाता था। स्वामी जी महाराज ने नारी जाति पर हो रहे इस प्रकार के अत्याचारों का डटकर विरोध किया और नारी को उसका समुचित स्थान दिलाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

स्वामी दयानन्द जी महाराज सम्पूर्ण मानव जाति के लिए एक देव-एक देश, एक भाषा-एक वेश, के प्रचारक थे। सम्प्रदाय के आधार पर फैले मत मतांतरों को वह मनुष्य की सामाजिक जागृति और आध्यात्मिक उन्नति में बाधक मानते थे। इसके लिए उन्होंने वेद को एक धर्म ग्रन्थ के रूप में और वैदिक संस्कृति को संपूर्ण मानव समाज की रीति नीति के व्यवहार के रूप में मनाने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने संपूर्ण मानव जाति का एक देव अर्थात् परमपिता परमेश्वर जिसका नाम ओ३म् है, को स्वीकार करने पर बल दिया।

तेजस्वी राष्ट्रवाद के समर्थक दयानन्द जी महाराज-

स्वामी जी महाराज शस्त्र और शास्त्र के उपासक थे। वे दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार करने के हिमायती थे। अपने राष्ट्रीय हितों के प्रति समर्पित होकर जीवन जीने के लिए लोगों को प्रेरित करते थे। वे वैदिक धर्म ध्वजा के नीचे संपूर्ण मानवता को लाकर **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्** और **वसुधैव कुटुम्बकम्** का संदेश लेकर चलते थे। उन्होंने भारत की व्यवस्था के वैज्ञानिक पक्ष को लोगों के सामने प्रस्तुत किया और लोगों को बताया कि कोई भी व्यक्ति जन्म से किसी जाति में पैदा नहीं होता। जाति व्यवस्था के वह विरोधी थे, पर वर्ण व्यवस्था के

पोषक थे।

उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त अस्पृश्यता के विरुद्ध आंदोलन किया और हरिजन समाज पर हो रहे अत्याचारों को मानवता के विरुद्ध अपराध बताया। स्वामी जी महाराज ने लोगों में जागृति पैदा कर अपने सभी भाइयों को गले लगाकर चलने का आह्वान किया। स्वामी दयानंद जी महाराज की इस वैज्ञानिक सच्चाई का डॉ अंबेडकर जैसे लोगों ने भी सम्मान किया। स्वामी जी ने मनुस्मृति के भीतर एक वर्ग द्वारा डाले गए उन श्लोकों को भी अवैज्ञानिक, वेद विरुद्ध और अतार्किक बताया जो किसी समाज विशेष या नारी जाति पर अत्याचार करने के लिए डाल दिए गए थे।

स्वामी जी ने सदैव नारी शक्ति का समर्थन किया। उन्होंने नारी को वेद पढ़ने का अधिकार दिया और उन्हें फिर से गार्गी, मैत्रेयी, घोषा जैसी विदुषी बनने का मार्गदर्शन किया। नारी जाति को बराबरी का अधिकार देने वाले प्रथम महापुरुष स्वामी आनंद जी महाराज ही थे।

किया ईश्वर के बारे में व्याप्त भ्रांतियों का खण्डन-

ईश्वर के नाम पर महर्षि दयानंद जी के काल में या उनसे पूर्व या उनके बाद जो भी अत्याचार होते रहे हैं या विभिन्न सम्प्रदायों के लोग अपनी शासन सत्ता स्थापित करने के लिए या दूसरे मत, पंथ या सम्प्रदाय के लोगों का विनाश करके उनके माल को लूटने के सपने संजोते रहे हैं, उन्होंने यह धारणा भी विकसित की है कि वह ऐसा सब कुछ ईश्वर, खुदा अल्लाह या गॉड के नाम पर कर रहे हैं। इसलिए वह निहायत दयावान मेहरबान ईश्वर उनके पापों को क्षमा कर देगा। उन सबकी इस प्रकार की वाहियात बातों का खंडन स्वामी दयानंद जी महाराज ने डटकर किया था। इतिहास की इस मूर्खतापूर्ण संप्रदायिक अवधारणा ने भी संसार में अनेक प्रकार के पापाचरण को बढ़ावा दिया। लोगों ने एक दूसरे के मत, पंथ अथवा संप्रदाय के लोगों पर अत्याचारों का कहर बरसा दिया और जाकर अपने अपने धर्म स्थलों में अपने ईश्वर खुदा या गॉड से यह दुआ मांगी कि उन्होंने यह सब कुछ तेरे नाम पर किया है, इसलिए यदि हमने कोई गुनाह किया है तो वह माफ हो।

इस प्रकार सृष्टि के सिरजनहार के नाम पर ही उसके सृजन को विध्वंस में बदलने की इन घटनाओं को भी लोगों ने बहुत हल्के में लिया। कुल मिलाकर संसार के लिए संसार के लोगों का ही ईश्वर, खुदा या कहर कहर बरपाने वाला बन गया।

फलस्वरूप लोगों को ईश्वर, खुदा या गॉड से नफरत हो गई। जिससे नास्तिकवाद को तेजी से प्रसारित होने का अवसर मिला। लोगों ने यहां तक कहना आरंभ कर दिया कि-

खुदा के बंदों को देखकर ही खुदा से
मुनकिर हुई है दुनिया,
ऐसे बंदे हैं जिस खुदा के वह कोई अच्छा
खुदा नहीं है॥

स्वामी दयानन्द जी महाराज जैसे फौलादी व्यक्तित्व ने इस प्रकार के सारे पापाचारण का भी विरोध किया और जिन लोगों ने इस प्रकार के विचारों को फैलाने का काम किया था उन्हें मजबूती के साथ खड़े होकर चुनौती देते हुए उन्हें शास्त्रार्थ के लिए ललकारा।

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द जी महाराज-

वर्ष १८७५ में स्वामी दयानंद जी महाराज ने वैदिक सृष्टि संवत के शुभ अवसर पर मुंबई में आर्य समाज की स्थापना की। लाहौर में आर्य समाज के नियमों की घोषणा की गई। आर्य समाज ने वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार को अपना लक्ष्य बनाया। इसके साथ-साथ देश में देश-काल-परिस्थिति के अनुसार

छाई हुई अहिंसावाद की कायरता को मिटाने का भी कार्य करना आरंभ किया। वीर हकीकत राय जैसे अनेक क्रांतिकारी धर्मवीरों को खोज खोजकर आर्य समाज ने निकालना आरंभ किया और उनका सही इतिहास बताकर लोगों में वीरता के भावों का संचार किया।

संध्या की संध्या न होने पाए, इसके लिए आवश्यक है कि वीरों के तेज का सूर्य सदा चमकता रहे। इस बात को दृष्टिगत रखकर आर्य समाज के अनेक दीवाने देश-धर्म पर बलिदान देने के लिए दल के दल सजाकर निकल पड़े। यही कारण था कि स्वामी दयानंद जी महाराज के विचारों का प्रभाव भारत के क्रांतिकारी कारी आंदोलन पर विशेष रूप से पड़ा। श्यामजी कृष्ण वर्मा, रासबिहारी बोस, नेताजी सुभाष चंद्र बोस, सावरकर जी, लाला हरदयाल और भाई परमानंद जैसे अनेक क्रांतिकारी स्वामी दयानंद जी की विचारधारा से प्रेरित होकर और सत्यार्थ प्रकाश में आए स्वराज्य शब्द से प्रेरणा लेकर मां भारती को स्वाधीन कराने के लिए रण क्षेत्र में उतर पड़े। गुरुकुल कांगड़ी को उस समय अंग्रेज क्रांतिकारियों की फैक्ट्री कहने लगे थे। क्योंकि इस शिक्षा केंद्र से अनेक क्रांतिकारी परमाणु बम के रूप में बाहर निकले और देश में क्रांति की हलचल को तेज करने में उन्होंने अपने जीवन खपा दिए। स्वामी जी महाराज की तर्क तोप के आगे ईसाइयों के पादरियों और मुसलमानों के मौलवियों की बोलती बंद हो जाती थी। उन्होंने अनेक पौराणिक पंडितों को भी पराजित किया, जो लोगों की धार्मिक भावनाओं का लाभ उठाकर किसी न किसी प्रकार से उन्हें भ्रमित करते थे या पाखण्ड में फंसाते थे।

वैदिक प्रचार के उद्देश्य से स्वामी जी देश में चारों ओर घूम घूम कर व्याख्यान देते थे। केशव चंद्र सेन जी के कहने पर इन्होंने सत्यार्थ प्रकाश को हिन्दी में लिखा। इस प्रकार हिन्दी आंदोलन को मजबूती देने में भी स्वामी जी का विशेष योगदान रहा। अपनी मूल भाषा गुजराती होने के उपरान्त भी इन्होंने संस्कृत और हिंदी के प्रचार-प्रसार पर विशेष बल दिया। देश में भाषाई वितण्डावाद को समाप्त करने के उद्देश्य से प्रेरित होकर स्वामी जी ने ऐसा किया था। आगे चलकर स्वामी जी की इस प्रकार की राष्ट्रवादी सोच और पहल के बड़े अच्छे फल देखने को मिले। लोगों ने सहर्ष हिंदी को अपनाना आरंभ किया। केशव चंद्र जी के कहने पर ही स्वामी जी महाराज ने अपने व्याख्यानों को भी हिंदी में देना आरंभ किया। १८६२ ई. तक स्वामी जी महाराज अपनी गुजराती भाषा में ही लोगों से संवाद करते थे। पर इसके पश्चात् उन्होंने हिंदी में बोलना, लिखना और व्याख्यान देना आरंभ किया। उनके पश्चात् आर्य समाज ने भी हिंदी आंदोलन को मजबूती देने का काम निरंतर किया। आर्य समाज ने हिंदी को भारत की राष्ट्रीय अस्मिता से जोड़कर देखने के लिए लोगों को प्रेरित किया।

इस प्रकार स्वामी जी महाराज ने अनेक प्रकार के पाखण्ड और अंधविश्वासों का विरोध किया और समाज को सुधारने के लिए हर संभव प्रयास किया। उन्होंने हरिद्वार में पाखंड खंडिनी स्थापित कर उन लोगों को खुलेआम चुनौती दी जो किसी भी प्रकार से वैदिक सिद्धांतों के विपरीत आचरण करते हुए लोगों को भ्रमित करते थे। काशी शास्त्रार्थ कर वहां पर भी स्वामी जी महाराज ने पाखंडियों को करारी शिकस्त दी थी। स्वामी जी महाराज ने राजनीति में मनुस्मृति को आधार बनाकर राजधर्म का पाठ राजनीतिक लोगों को पढ़ाया। सत्यार्थ प्रकाश में भी उन्होंने मनुस्मृति के राजनीति संबंधी अनेक श्लोकों को स्थान देकर देश के लोगों को यह संदेश दिया कि देश की राजनीति को मनुस्मृति के संविधान के अनुसार ही चलाया जाना चाहिए। यदि उनके अनुसार भारत का संविधान बनता तो निश्चित

रूप से मनुस्मृति को इसका आधार बनाया जाता।

स्वामी जी का लेखन कार्य-

स्वामी जी द्वारा सत्यार्थ प्रकाश १८७४, पाखण्ड खंडन १८६६, वेद भाष्य भूमिका १८७६, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका १८७७, अद्वैत मत का खंडन १८७३, पंचमहायज्ञ विधि १८७५, वल्लभाचार्य मत का खण्डन १८७५, स्वामी जी महाराज के विशेष ग्रंथ हैं। यजुर्वेद भाष्य, चतुर्वेद विषय सूची, संस्कार विधि, आर्याभिविनय, गोकरुणानिधि, आर्योद्देश्यरत्नमाला, भ्रांति निवारण, अष्टाध्यायीभाष्य, वेदांग प्रकाश, संस्कृत वाक्य प्रबोध और व्यवहारभानु जैसी पुस्तकें लिखकर स्वामी जी महाराज ने आर्य संस्कृति का प्रचार प्रसार किया।

स्वामी जी के बारे में विद्वानों के मत-

स्वामी दयानंद सरस्वती के योगदान और उनके विषय में विद्वानों के अनेक मत थे। डॉ. भगवान दास ने कहा था कि स्वामी दयानन्द जी महाराज हिंदू पुनर्जागरण के मुख्य निर्माता थे।

श्रीमती एनी बेसेंट का कहना था कि स्वामी दयानंद पहले व्यक्ति थे जिन्होंने आर्यवर्त्त अर्थात भारत भारतीयों के लिए-की घोषणा की।

सरदार पटेल के अनुसार भारत की स्वतन्त्रता की नींव वास्तव में स्वामी दयानंद जी महाराज ने डाली थी। पट्टाभि सीतारमैया का विचार था कि गांधीजी राष्ट्रपिता हैं तो स्वामी जी राष्ट्रपितामह हैं। फ्रेंच लेखक रोमां रोलां के अनुसार स्वामी दयानंद राष्ट्रीय भावना और जनजागृति को क्रियात्मक रूप देने में प्रयत्नशील थे। स्वामी दयानंद जी महाराज के विषय में वैदिक राष्ट्र का यह मंतव्य उचित ही प्रतीत होता है कि अस्मिताबोध और आत्मबोध की चेतना को आत्मसात करने वाले उदारचेता महर्षि दयानन्द सरस्वती तो हमारी आर्य सनातन वैदिक संस्कृति के जाजवल्यमान ज्योति पुंज हैं। वे भारतीय गुरु परम्परा में शिलाधर्मी गुरु नहीं थे बल्कि आकाश धर्मी गुरु थे। जिनकी आर्य सनातन साधना तथा अमृत संदीप्त आलोक की अनंत आभा मानसरोवर में खिले कमल जैसी शुभ्र शोभन है। इन्होंने अपने अप्रतिम गत्यात्मक व्यक्तित्व से भारत की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक एकता अखंडता के अभिनव अभियान का अध्याय खोला था। इनका सुकोमल शांत मधुर व्यक्तित्व राष्ट्र की बलिवेदी पर अर्पित दिव्य सुगंधित सुमन था। इन्होंने भयभीत मानवता को संवारने के लिए पीड़ाओं का विषपान शंकर की भांति किया है तथा हताशप्राय, विषण्ण, विमूर्छित मानव के लिए अमृत कलश छोड़ दिया है। उन्हें जीवन में कभी सुखोपभोग नहीं प्राप्त हुआ, फिर भी इन्होंने जो अभिजात संस्कार एवं वैदिक साधना का सरसिज खिलाया, वह अपने शाश्वत एवं सारस्वत सौरभ से दिग दिगंत को परिपूरित करता है।

स्वामी दयानन्द जी महाराज जिस प्रकार देश के लोगों के भीतर ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध क्रांति के भावों का बीजारोपण कर रहे थे, उसके चलते ब्रिटिश सारकर उनके विरुद्ध हो गई थी। स्वामी जी जो कुछ भी बोलते थे उसे देश के लोग सुनते ही नहीं थे अपितु उसके अनुसार आचरण भी करते थे। जिसके कारण देश में सर्वत्र युवा एक ऐसी मचलन का शिकार हो गए थे जो अंग्रेजों को १८५७ की क्रांति के फिर से होने की आहट देती थी, और उन्हें चौन की नींद नहीं सोने देती थी। अंग्रेज देश के लोगों को जितना ही दबाना चाहते थे लोग उतने ही अधिक उनके विरुद्ध होते जाते थे। यही कारण था कि अंग्रेजों ने स्वामी जी महाराज पर निगरानी रखनी आरंभ कर दी थी।अंग्रेज हकूमत स्वामी जी महाराज के पीछे पड़ गई थी और उनकी हत्या के षडयंत्र में लग गई थी।

स्वामी जी का अन्तिम समय-

स्वामी जी महाराज ने अपने समय में जिस प्रकार सत्याचरण पर बल देते हुए और राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए काम करते हुए अनेक लोगों को अपना शत्रु बनाया था वह सब उनके प्राण लेने की

योजनाओं में लगे रहते थे। अंग्रेज सरकार उन्हें अपना सबसे बड़ा शत्रु मानती थी, क्योंकि स्वामी जी ने देश के लोगों को स्वाधीनता के लिए खड़े होने की प्रेरणा दी थी। मुसलमान और ईसाई धर्म गुरु भी उन्हें इसलिए अपना शत्रु मानते थे क्योंकि उनके रहते हिंदुओं के धर्मांतरण का कार्य पूरी तरह रुक गया था। जिससे मुस्लिम और ईसाई धर्म गुरुओं की दाल नहीं गल रही थी। इसके अतिरिक्त अनेक पौराणिक पंडे भी उनके विरोधी हो गए थे। स्वामी दयानंद जी महाराज की देश भक्ति के चलते ही चित्तौड़ अंग्रेजों के पास जाते-जाते बच गई थी। उनके कारण ही चित्तौड़ के महाराणा प्रताप के वंशज तत्कालीन शासक अंग्रेजों के दिल्ली दरबार (१९११) में उपस्थित होने से अपने आप को रोकने में सफल हुए थे।

१८८३ ईस्वी में स्वामी जी जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह के यहां पर टिके हुए थे। महाराज जसवंत सिंह ने उनका भरपूर स्वागत सत्कार किया था। एक दिन जब राजा यशवंत एक नर्तकी नन्हीं जान के साथ व्यस्त थे, तब स्वामी जी ने इस दृश्य को देखकर राजा जसवंत सिंह को कड़ी फटकार लगाई। उन्होंने राजा को अकेले में यह भी समझाया कि एक तरफ तो वह धार्मिक होने का प्रयास कर रहे हैं और दूसरी ओर इस प्रकार की घटिया मनोवृति में फंसे हुए हैं। ऐसी सोच और कृत्यों के रहते ज्ञान प्राप्ति असंभव है। महाराजा जसवंत सिंह ने महर्षि जी के इस प्रकार के फटकार भरे शब्दों को सुनकर अपने आप में पूर्ण परिवर्तन कर लिया और उन्होंने उस नर्तकी से सारे संबंध समाप्त कर लिए। इसके पश्चात वह गणिका स्वामी जी महाराज से शत्रुता मानने लगी। फलस्वरूप उसने महर्षि दयानंद जी के रसोईया के साथ मिलकर उन्हें समाप्त करने का फैसला किया। स्वामी जी के रसोईया ने स्वामी जी के दूध में संखिया मिलाकर उन्हें पिला दिया। इसके पश्चात स्वामी जी का स्वास्थ्य निरंतर बिगड़ता चला गया। बहुत उपचार करने के उपरांत भी उनके रोग पर नियंत्रण नहीं किया जा सका।

अनेक शत्रुओं ने स्वामी जी महाराज के संसार छोड़कर चले जाने के लिए अनेक प्रकार के षड्यंत्र किए। उन्हीं के परिणाम स्वरूप १८८३ ईस्वी की ३० अक्टूबर को स्वामी जी ने अंतिम सांस ली।

-लेखक भारत को समझो अभियान समिति के राष्ट्रीय संयोजक एवं उगता भारत समाचार पत्र के सह संपादक हैं।

आर्ष-ज्योति के सहृदय पाठकों से...

सहृदय पाठकों! आर्ष-ज्योति पत्रिका का वर्ष २००८ से नियमित प्रकाशन हो रहा है। सभी पाठकों के पास मास की १० दिनांक तक आर्ष-ज्योति प्रेषित की जाती है, किन्तु डॉक की अव्यवस्थाओं के कारण कुछ पाठकों को पत्रिका नहीं मिल पा रही है, इसके लिए हमें अत्यन्त खेद है। अत: आप सहृदय पाठकों से निवेदन है कि आपकी प्रिय पत्रिका आर्ष-ज्योति: मास के १५ दिनांक तक अप्राप्ति की दशा में तुरन्तु सूचित करें तथा सही पते हेतु पत्र, ई-मेल या दूरभाष पर पंजीकरण संख्या (पं.सं.) सहित पूर्ण विवरण देवें, जिससे आपको पत्रिका प्रेषित करने में असुविधा न हो।

दूरभाष-८८१०००५०९६, ९४१११०६१०४, ईमेल - arsh.jyoti@yahoo.in

समाजसुधारकः महर्षिदयानन्दः

❑ डॉ. हेमलता रानी...✍

संसारे यदा धर्मस्य ग्लानिर्भवति जनाश्च धर्मस्य मूलतत्त्वानि विस्मृत्य केवलं बाह्याडम्बरमेव धर्मत्वेन स्वीकृत्यं तथैवाचरितुमारभन्ते तदा कस्यचिन्महापुरुषस्य जन्म भवति यो बाह्याडम्बराणां निराकरणं कृत्वा मानव-समाजं पुनः सत्पथमानयति। एकोनविंश-शताब्दद्या अन्तिमे भागे हिन्दूसमाजस्याप्येतादृश्येवावस्थासीत्। तस्मिन् अनेकशः आडम्बराणि समाविष्टानि आसन्। तान्येव च हिन्दूसमाजेन -धर्मत्वेनाङ्गीकृतान्यासन्। अन्यतश्च देशे शक्रिश्चियन' धर्मस्य महान् प्रचारः क्रियते स्म तस्य धर्मस्यानुयायिभिः प्रचारकैः। एतादृशे एव काले काठियावाडप्रान्ते विप्रस्यैकस्य गृहे स्वामिनो दयानन्दस्य जन्माभूत्।

स्वामी दयानन्दस्य जन्मनामासीत् 'मूलशंकर' इति। स बाल्यादेव विरक्तस्वभाव आसीत्। पश्चात् स्वभगिन्याः पितृव्यस्य चासामयिकं मरणं दृष्ट्वा सोऽत्यर्थं विरक्तो जातो गृहं चात्यजत्। गृहं त्यक्त्वा स संन्यासं गृहीतवान्। ततः संन्यासिवेशेन कंचित्कालमित-स्ततः पर्यटन् स मथुरानगरीं प्राप्नोत् स्वामिनश्च विरजानन्दस्य शिष्योऽभवत्-स्वामी विरजानन्दस्तं समस्तमपि वैदिकं वाङ्मय-मध्यापितवान्। शिक्षाप्राप्त्यनन्तरं स्वामिनो विरजानन्दस्य प्रेरणाया स्वामो दयानन्दो हिन्दूसमाजादज्ञानतिमिरान्धत्वं दूरीकर्तुं ज्ञानं च प्रकाशयितुं प्रतिज्ञातवान्।

तदनन्तरं स्वामी दयानन्दो भारते विभिन्नतीर्थेषु पवित्रस्थानेषु च परिभ्रम्य सर्वत्र वैदिकधर्मस्य प्रचारं कृतवान् वेदानाञ्च प्रामाण्यं प्रतिपादितवान्। एवमसौ बाह्याडम्बराणि, अन्धविश्वासान्, अज्ञानम्, अविद्याम्, पाखण्डानि, दुराचारान् विविधाश्च कुप्रथाः समुन्मूल्य ज्ञानं प्रसारितवान् हिन्दूसंस्कृतेर्वैदिकधर्मस्य च यथार्थं स्वरूपं प्रदर्शितवान्। शीघ्रमेव तस्यानुयायिनां संख्या वर्धितुमारभत लोकेषु च वेदान् प्रति श्रद्धा पुनः समुत्पन्नाऽभवत्। एतन्निमित्तमसौ सर्वप्रथमं बम्बईनगरे आर्यसमाजं स्थापितवान्। तदनन्तरं च तेनान्येष्वप्यनेकेषु नगरेषु आर्यसमाजस्य स्थापना कृता। अद्य तु प्रायः समस्ते भारते विभिन्नेषु नगरेषु आर्यसमाजमन्दिराणि अन्याश्च आर्यसमाजेन संस्थापिताः शिक्षासंस्थाः दश्यन्ते। विदेशेष्वपि आर्यसामाजिकै वैदिकधर्मस्य प्रचारः प्रसारश्च क्रियते। एवं स्वामिना दयानन्देन हिन्दूसमाजस्य भारतवर्षस्य च महानुपकारः कृतः। हिन्दूसमाजस्तस्य सदैव ऋणी भविष्यति।

स्वामिना दयानन्देन वैदिकधर्मस्य प्रचारायानेके ग्रन्था अपि लिखिताः। यजुर्वेदभाष्यम् सत्यार्थप्रकाशः, आर्याभिविनयः, संस्कारविधिश्चेत्यादयोऽनेके ग्रन्थास्तस्य नाम्ना प्रसिद्धाः सन्ति। एवमासीदसौ महान् लेखकोऽपि।

संसारेऽस्मिन्ननेकमहापुरुषा जन्म गुहन्ति म्रियन्ते च किन्तु केचन विरला एवेदृशा भवन्ति ये स्वकीयैः महत्त्वपूर्णयोगदानैरमृत्यकृत्यैश्च सदैव यशः शरीरेण जीवन्ति। न नश्यन्ति तेषां यशोध्वजाः कदापि। निखिलमेव तेषां जीवनं सर्वोद्धाराय जनकल्याणाय च भवति।

यदा जना धर्मतत्त्वं विस्मृत्य बाह्यादम्बरमेव स्वीकर्तुमारभन्ते तदा समाजे कस्यचित् समाजसुधारकस्यावश्यकतानुभूयते। ईदृशीषु परिस्थितिषु अज्ञानान्धकारं, समाजे प्रसरिताः कुरीतिश्च विनाशयितुं महर्षिदयानन्दः स्वजन्मना प्राणिनां पथप्रदर्शको बभूव। अस्माकं भारतभूमौ महर्षिदयानन्दमहाभागोऽस्ति अमरोऽस्ति।

दिव्यात्मा दयानन्द आदर्षो देवर्षिः अतो न हि स्वजन्मस्थानस्य कुलस्य स्वपित्रोश्च नामादिकमलिखत्

कुत्रापि किन्तु श्रध्दालवो भक्तजनाः सुतरामन्विष्य तस्य देवर्षेः पूर्ववृत्तजातं सम्प्राप्नुवन्। स्वनामधन्यस्य दयानन्दस्य देवर्षेः जन्म गुजरातप्रान्तान्तर्गतटङ्कारनाम्नि ग्रामे १८८१ तमे वैक्रमाब्देऽभवत्। अस्य पिता श्रीकर्षणजी परमशिवभक्तोऽतीवविद्वान्श्चासीत्। महर्षेजन्मनाम मूलशङ्कर आसीत् स च पित्रोः प्रथमा सन्ततिः।

महापुरुषस्यास्य जन्म भारतवर्षे तदानीं जातं यदा देशे सर्वत्र पाखन्डमावृत्तम्, कुप्रथानां प्रचलनमासीत्, वैदिकप्रचारः समाप्तप्राय आसीत्, सर्वत्रैवचान्धविश्वासः प्रसारित आसीत्।

महाशिवराज्यवसरे बालोऽयं पितुराज्ञया उपवासमाचरत्। रात्रौ सः पित्रा सह शिवमन्दिरं गत्वा शिवमपूजयत्। निशीथे सर्व सुप्ताः किन्तु मूलशन्करो नैवास्वपत्। तदैव मूषक एकः शिवप्रतिमोपर्यागत्य नैवेद्यभक्षयत्। तदैवास्य ज्ञाननेत्रे उन्मूलिते, अचिन्तयच्च स यत् यः बाल्यदेवास्य मनसि पाखण्डादिविनाशाय प्रवृत्तिः सञ्जाता। दुर्दैववशादस्य भगिनी अल्पावस्थायामेव विसूचिकया मृता, वर्षत्रयानान्तरञ्चास्य पितृव्योऽपि दिवङ्गतः। गृहे सर्वेषु बान्धवेषु विलपत्सु सत्स्वपि संसारस्य दुःखमयीस्थर्ति विचारयन् बालोऽहं चिन्तातुरो बभूव। संसारस्यानित्यताविषयेऽस्य विचारः दृढीभूतः। अस्य हृदि सहसैव वैराग्यं संजातम्। फलत एकस्मिन् दिवसे मूलशन्करो गृहमत्यजत्।

गृहं परित्यज्य सोऽनेकतीर्थष्वभ्रमत्, अनेकयोगिभ्यः अयोगभ्यः संन्यासिभ्यः शिक्षामलभत। ततश्च स्वामीपूर्णानन्दसरस्वतीसकाशादयं नर्मदातीरे संन्यासदीक्षां गृहीत्वा श्दयानन्दसरस्वतीश नाम्ना विख्यातो जातः। अनन्तरं मथुरानगरभागत्य सः प्रज्ञाचक्षुः संस्थासिनो विरजानन्दस्य शिष्यः सञ्जातः। वर्षत्रयानन्तरं विद्यासमाप्तौ गुरुविरजानन्दः सह शुभाशीभिः स्वामिनमवदत्-वत्स! भारतवर्षे अज्ञानान्यावाभावग्रस्ता दीनहीनजना अनेकविधक्लेशान् सहन्ते तानुद्धर! प्रचलितमतमतान्तरैः प्रसृतः कुरीतिजालं छिन्धि। आर्यजाते विकृतदशां सुचारुतां नय। आर्यसनततीनामुपकारं कुरु। आर्षशैलीं प्रचलितां विधाय प्रशिक्षणे वेदानां वैदिकग्रन्थानाञ्च पठनपाठने लोकरुचिं जागृतां कुरु। गङ्गायमुनयोनिरन्तरगतिशीलप्रवाह इव लोकहितकामना-मुद्दिश्य सक्रियजीवनं जीव। प्रियपुत्र ! इदमेव कार्यवस्तु गुरुदक्षिणायां मे प्रयच्छ। नाहं सांसारिकपदार्थ कञ्चिदभिवाञ्छामि।

गुरोरादेशं स्वीकृत्य सर्वप्राणिषु बन्धुभूतो महदियानन्दस्तदा कर्मक्षेत्रे समागतः, देशस्य समाजस्य सर्वेषाञ्चोन्नतये सततं प्रायतत। विविधान् कायक्लेशाननुभूयापि स न कदापि स्वकर्त्तव्यविमुखो जातः। हरिद्वारकनखलस्य समीपे भागीरथीतीरे सामाजिकपाखण्डखण्डिनीपताका तेन स्थापिता। हरिद्वारतः हिमालयं गत्वा वर्षत्रयमुग्रं तपश्चक्रे अलौकिकीं शक्तिमवाप चासौ महापुरुषः। स्वगुरोरादेशानुसारमनेन समस्तमेव जीवनं वेदशिक्षायै, हिन्दुसमाजस्य सुधाराय, कुरीति-अन्धविश्वासविनाशाय व समर्पितम्। एतन्निमित्तं स १८७५ ईस्वीयवर्ष एप्रिलमासस्य द्वादशतारिकायां मुम्बापुर्या सर्वप्रथमम् आर्यमाजं संस्थापितवान्। एतदनन्तरञ्चान्येष्वपि महत्सु नगरेषु आर्यसमाजस्य स्थापना अभवत्। अद्यत्वे न केवलं भारतवर्षस्यैव विभिन्ननगरेषु ग्रामेषु चार्यसमाजसंस्था दृश्यन्ते, अपितु इंग्लैण्ड-अमेरिकादेशेषु चापि आर्यसमाजस्थानां स्थापनमभवद् यत्र सामाजिका अहर्निशं वैदिकधर्मप्रचारे तत्पराः सन्ति।

स्वामीदयानन्दो वैदिकधर्मं सर्वश्रेष्ठममन्यत। महापुरुषोऽयं स्त्रीशिक्षायाः संप्रचारको , वर्णाश्रमव्यवस्थायाः पोषको बालवृद्धविवाह विरोधी, विधवाविवाहस्य समर्थकश्चासीत्। आधुनिके युगे भारतवर्षे ये समाजसुधारकाः धर्मप्रचारकाश्चाभवन् स्वामिदयानन्द-सरस्वती तेषु मूर्धन्योऽभवत्।

- **असिस्टेण्टप्रोफेसर,**
संस्कृत-विभागः,
मैत्रेयी-महाविद्यालयः,
दिल्ली-विश्वविद्यालयः

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन दर्शन की उपादेयता

❑ सुभाष चन्द्र शर्मा...✍

महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती का प्रसिद्ध ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' हमें हमारी स्वस्थ परम्पराओं से परिचित कराने वाला, अंधविश्वासों से मुक्त कराने वाला, ज्ञान चक्षु खोलने वाला, हमारी सोई हुई चेतना को जगाने वाला और केवल हमारे धर्म की ही नहीं, अपितु विश्व के सभी प्रमुख धर्मों की जानकारी देने वाला, मानव धर्म का स्वरूप प्रस्तुत करने वाला वास्तविक अर्थों में एक अद्वितीय ग्रंथ है।[१] इस ग्रंथ की रचना अब से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व (1875 ई. में) हुई थी। इसने तत्कालीन समाज में वैचारिक क्रांति उत्पन्न कर दी, जिससे वेद और वैदिक साहित्य के महत्व को पहचानने, अपने गौरवशाली अतीत को जानने, संस्कारवान्-आचारवान् बनने, धार्मिक अंधविश्वासों से मुक्त होने, सामाजिक कुरीतियों को दूर करने, विभिन्न संप्रदायों (जिन्हें सामान्य व्यक्ति धर्म कहता है) के प्रति जिज्ञासु बनकर उन्हें ठीक से जानने, उनकी अच्छी बातों को स्वीकार करने एवं अज्ञान व अंधविश्वास पर आधारित बातों को त्यागने, विदेशियों की उपयोगी खोजों को सीखने, स्वभाषा-स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने और पराधीनता से मुक्त होने की प्रेरणा मिली।[२] इनमें से केवल एक ही काम विदेशी शासन से मुक्ति पूरा हो सका है, शेष काम अभी भी अधूरे हैं, क्योंकि उनकी जड़ें बहुत गहरी हैं। अतः उनके लिए अभी भी गंभीर प्रयास करने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से यह ग्रंथ आज भी उपयोगी है, क्योंकि इस कालजयी ग्रंथ में हमारी मानसिकता को अनुकूल दिशा में प्रेरित करने की अपार संभावनाएं विद्यमान हैं।[३]

स्वामी दयानंद सरस्वती के सामाजिक विचार-

१. जाति वर्ण संबन्धित विचार।
२. स्त्री संबन्धित विचार।
३. धार्मिक आडम्बर का खण्डन।

स्वामी दयानंद सरस्वती के दार्शनिक विचार-

१. वैदिक ज्ञान।
२. कर्म सिद्धान्त।
३. पुनर्जन्म सिद्धान्त।
४. ईश्वर जीव संबंध।

स्वामी दयानंद सरस्वती के सामाजिक विचार-:-

दयानंद सरस्वती वैदिक युग को ही आदर्श युग मानते थे, अतः उन्होंने जन्म आधारित जाति व्यवस्था का विरोध किया, तथा कर्म के आधार पर एवं वेदों के अनुकूल वर्ण निर्धारण का समर्थन किया, वे 'दलितों के उद्धार' के पक्षधर थे, उनका मानना था कि जाति व्यवस्था से योग्यता का हनन होता है तथा समाज में भेदभाव व शोषण को बढ़ावा मिलता है।[४]

जाति के कारण ही समाज में आपसी संबन्ध प्रभावित हुए, अतः जाति के स्थान पर कर्म आधिरित वर्ण व्यवस्था की स्थापना की जानी चाहिए।

दयानंद सरस्वती स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे, तात्कालिक समय में स्त्री विरोधी परम्पराओं के विरोधी थे उनका मानना था कि स्त्रियों को वैदिक युग के समान सम्मान एवं अधिकार प्राप्त होने चाहिए तथा स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध चल रही कुप्रथा है जैसे -बाल विवाह, सती प्रथा आदि को समाप्त किया जाना चाहिए तथा विधवा विवाह की प्रथा को अपनाया जाना चाहिए।

दयानंद सरस्वती ने इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म व हिंदू धर्म आदि का आलोचनात्मक अध्ययन किया और इन धर्मों में व्याप्त आडम्बरों का खुलकर विरोध भी किया।[५]

अपने महान ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' में स्वामी जी ने सभी धर्मों में व्याप्त बुराइयों का खण्डन किया। वह मूर्ति पूजा व बहुदेववाद का विरोध करते थे, उनका मानना था कि उन धार्मिक आडम्बरो का निर्माण पुरोहित ने अपने स्वार्थ के लिए किया है और इन आडम्बरों के कारण धर्म का पतन हुआ है। अत: इन आडम्बर को समाप्त किया जाना चाहिए।
वैदिक रीति रिवाज से धर्म का पालन किया जाना चाहिए।

स्वामी दयानंद सरस्वती के दार्शनिक विचार-

दयानन्द सरस्वती के दर्शन का गहरा प्रभाव था, वह केवल वेदों को प्रमाणिक मानते थे और वैदिक सत्ता की स्थापना पर जोर देते थे, क्योंकि पौराणिक धर्म की 'पौंगा-पंथी' में कोई सार नहीं है, महर्षि के ग्रन्थों में बुद्धिवाद का दर्शन मिलता है, क्योंकि वह उसी बात को स्वीकार करने पर बल देता है जो बुद्धि के अनुकूल हो।[६] दयानंद सरस्वती ईश्वर को इस संसार का निमित्त कारण मानते हैं, वे ईश्वर को एक सक्रिय रचनाकार और कर्ता के रूप में मानते हैं। दयानंद सरस्वती इस संसार को पूर्ण अस्तित्व वाला स्वीकार करते हैं। तथा वे जीव के अस्तित्व को भी स्वीकारते हैं। स्वामी जी का कहना है कि इस संसार में जीव कर्म करने वाले पूर्णत: स्वतंत्र प्राणी हैं लेकिन छोटे-छोटे निकाय में विभक्त हैं।[७]

महर्षि दयानन्द त्रैतवाद के प्रतिपादक थे। महर्षि ईश्वर, जीव एवं प्रकृति को भिन्न-भिन्न स्वीकारते हैं। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र हैं। किन्तु उसको फल प्रदान करने वाला परमात्मा है।

दयानंद सरस्वती ने सभी धर्मों का आलोचनात्मक अध्ययन करने के बाद वेदों की सत्ता को सर्वोपरि माना और वेदों की ओर लौटो का नारा दिया।

सन्दर्भ :-

1. सत्यार्थ प्रकाश(Satyarth Prakash 1875 and 1884)
2. संस्कृतवाक्यप्रबोध: (Sanskrit Vakyaprabodhini 1879)
3. गोकरुणानिधि (GokarunaNidhi 1880)
4. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका (RigvedAadiBhasya-Bhumika 1878)
5. व्यवहारभानु (VyavaharBhanu 1879)
6. चतुर्वेद विषय सूची(Chaturved Vishay Suchi 1971)
7. ऋग्वेद भाष्य, यजुर्वेद भाष्य, अष्टाध्यायी भाष्य (Rigved Bhashyam 1877 to 1899] Yajurved Bhashyam 1878 to 1889 and Asthadhyayi Bhashya 1878 to 1879)

- शोधच्छात्र,
संस्कृत विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर (राज.)

'महर्षि दयानन्द स्वाधीनता संग्राम के सर्वप्रथम योद्धा, हिन्दू जाति के रक्षक थे। उनके द्वारा स्थापित आर्य-समाज ने राष्ट्र की महान् सेवा की है और कर रहा है। आजादी की लड़ाई में आर्य-समाजियों का बड़ा हाथ रहा। महर्षि जी का लिखा अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' हिन्दू जाति की रगों में उष्ण रक्त का संचार करने वाला ग्रन्थ है। सत्यार्थप्रकाश की विद्यमानता में कोई विधर्मी अपने मजहब की शेखी नहीं मार सकता।'-**स्वतन्त्र्यवीर सावरकर**(अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द,पृ.-८४)

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित (मुद्रित) ग्रन्थों का विवरण

क्र.सं.	ग्रन्थ नाम	मुद्रक/प्रकाशक	प्रकाशन संवत्
१.	संध्या	ज्वालाप्रकाश प्रेस, आगरा	१९२० वि. 1863 ई.
२.	भागवतखण्डन अपर नाम पाखण्डखण्डन	ज्वालाप्रकाश प्रेस, आगरा	१९२३ वि. 1866 ई.
३.	अद्वैतमतखण्डन	लाइट प्रेस, बनारस	१९२७ वि. १८७० ई.
४.	सत्यार्थप्रकाश (प्रथम संस्करण)	स्टार प्रेस, बनारस	१९३१ वि. १८७५ ई.
५.	सत्यार्थप्रकाश (द्वितीय संस्करण)	वैदिक यंत्रालय, प्रयाग	१९४१ वि. १८८४ ई.
६.	सन्ध्योपासनादि पंचमहायज्ञविधिः	आर्य प्रेस, बम्बई	१९३१ वि. १७९६ शकाब्द
७.	पंचमहायज्ञविधिः (संशोधित)	लाजरस प्रेस, बम्बई	१९३४ वि. १८७७ ई.
८.	वेदान्तिध्वान्तनिवारण	ओरियन्टल प्रेस, बम्बई	१९३२ वि. १८७६ ई.
९.	वेदविरुद्धमतखण्डन	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	१९३१ वि. १८७५ ई.
१०.	शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण	बम्बई	१९३१ वि. १८७५ ई.
११.	आर्याभिविनयः	आर्यमण्डल प्रेस, बम्बई	१९३२ वि. १८७६ ई.
१२.	संस्कारविधिः	एशियाटिक प्रेस, बम्बई	१९३३ वि. १८७७ ई.
१३.	संस्कारविधिः(द्वितीय संस्करण)	वैदिक यंत्रालय, प्रयाग	१९४१ वि. १८८४ ई.
१४.	वेदभाष्यम् (नमूने का अंक)	लाजरस प्रेस, बनारस	१९३३ वि. १८७६ ई.
१५.	ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	लाजरस प्रेस, बनारस	वैशाख १९३४ वि. १९३५ वि. (१-१४ खण्ड)
		निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	१९३५ वि. १८७८ ई. (१५, १६ खण्ड)
१६.	ऋग्वेद भाष्य (७.६२.२ तक)	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	१९३५ वि. १८७७ ई. से
		वैदिक यन्त्रालय, काशी, प्रयाग, अजमेर	१९५६ वि. १८९९ ई. पर्यन्त
१७.	यजुर्वेद भाष्य (८.६२.२ तक)	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	१९३५ वि. १८७८ ई. से
		वैदिक यन्त्रालय, काशी, प्रयाग	१९४६ वि. १८८९ ई. पर्यन्त
१८.	आर्योद्देश्यरत्नमाला	चश्मएनूर प्रेस, अमृतसर	१९३४ वि. १८७७ ई.
१९.	भ्रान्तिनिवारण	आर्यभूषण प्रेस, शाहजहाँपुर	१९३७ वि. १८८० ई.
२०.	अष्टाध्यायी भाष्य (२ भाग)	वैदिक यंत्रालय, अजमेर	लेखनकाल १९३५-३६ वि. प्रकाशनकालः प्रथमभाग १९८४ वि. १९२७ ई. द्वितीयभाग १९९७वि.१९४० ई.

२१.	संस्कृतवाक्यप्रबोधः	वैदिक यंत्रालय, काशी	१९३६ वि. १८७९ ई.
२२.	व्यवहारभानुः	वैदिक यंत्रालय, काशी	१९३६ वि. १८७९ ई.
२३.	गोतम अहत्या की कथा	वैदिक यंत्रालय, काशी	१९३७ वि. १८७९ ई. (अनुपलब्ध)
२४.	भ्रमोच्छेदन	वैदिक यंत्रालय, काशी	१९३७ वि. १८८० ई.
२५.	गोकरूणानिधि	वैदिक यंत्रालय, काशी	१९३७ वि. 1880 ई.
२६.	वेदाङ्गप्रकाश (१४ भाग)	वैदिक यंत्रालय, काशी, प्रयाग	१९३६ वि. 1879 ई. से १९४० वि. 1883 ई. पर्यन्त
२७.	काशीशास्त्रार्थ	वैदिक यंत्रालय, काशी	१९३७ वि. 1880 ई.
२८.	हुगलीशास्त्रार्थ (प्रतिमापूजन विचार)	लाइट प्रेस, बनारस	१९३० वि. 1873 ई.
२९.	सत्यधर्म विचार (मेला चांदापुर)	वैदिक यंत्रालय, काशी	१९३७ वि. 1880 ई.
३०.	जालन्धर शास्त्रार्थ	पंजाबी प्रेस, लाहौर	१९३४ वि. 1877 ई.
३१.	सत्यासत्यविवेक(बरेलीशास्त्रार्थ)	आर्यभूषण प्रेस, शाहजहाँपुर	१९३६ वि. 1879 ई. (उर्दू)
३२.	चतुर्वेदविषयसूची	वैदिक यंत्रालय, अजमेर	२०२८ वि. 1971 ई.

- नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती, डॉ. भवानीलाल भारतीय

विभिन्न महापुरुषों के वचनों में 'महर्षि दयानन्द सरस्वती'

'संसार के महापुरुषों को पहाड़ की चोटियां माना जाये तो दयानन्द सबसे ऊंची चोटी है।'

- महान क्रान्तिकारी योगीराज श्री अरविन्द देशभक्त

'परस्पर के अंधकार में से सूक्ष्म और मर्म भेदी दृष्टि से उसी (ऋषि दयानन्द) ने सत्य को खोज निकाला था।'

- महर्षि अरविन्द

'मेरा सादर प्रणाम हो उस महान् गुरु दयानन्द को, जिसकी दृष्टि ने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा और जिसके मन में भारतीय जीवन के सब अंगों को प्रदीप्त कर दिया। जिस गुरु का उद्देश्य भारत वर्ष को अविद्या, आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्त्व के अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता की जागृति में लाना था, उसे मेरा बारम्बार प्रणाम हो। जिसने देश को पतित अवस्था में भी मानव समाज को सेवा के सीधे व सच्चे मार्ग का दिग्दर्शन कराया।'

- नोबल पुरस्कार प्राप्त रविन्द्रनाथ ठाकुर

'मैं जैसे-जैसे प्रगति करता हूँ, वैसे-वैसे मुझे महर्षि का बताया मार्ग दिखाई देता है। ब्रिटिश राज्य स्थापित होने के पश्चात् जनता के साथ सीधा सम्पर्क रखने का मार्ग महर्षि दयानन्द ने खोज निकाला।'

- महात्मा गांधी

'स्वामी दयानन्द के जीवन में सत्य की खोज दीख पड़ती है, इसलिए केवल आर्यसमाजियों के लिए ही नहीं, वरन् सारी दुनिया के वे पूज्य हैं।' **-श्रीमती कस्तूरी बाई गांधी**

'महर्षि दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषों में से थे, जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया।' **-सुभाष चन्द्र बोस**

'स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं। संसार में मैंने सिर्फ उन्हें अपना गुरु माना है। आर्यसमाज मेरी माता है। मेरा हृदय और मस्तिष्क दोनों को उन्होंने गढ़ा है। मेरे गुरु एक महान् स्वतन्त्र मनुष्य थे, इसका मुझे अभिमान है।' **- लाला लातपतराय**

'सरदार भगत सिंह आर्य समाज की देन है। आर्यसमाज में मेरे दादा सरदार अर्जुनसिंह जी शामिल थे, फिर मेरे पिता सरदार किशनसिंह और चाचा सरदार अजीत सिंह जी को महात्मा हंसराज जी तथा लाला लाजपतराय के साथ समाज का कार्य करने का शुभ अवसर प्राप्त रहा है। हम चारों नहीं, बल्कि पांचों भाई यानी सरदार भगतसिंह जी डी.ए.वी. स्कूल में पढ़ते रहे हैं-और हमारे विचारों और मानसिक उन्नति भी बड़ी हद तक आर्य-समाज की देन है। इसलिए और बहुत से दूसरे उपकारों के लिए हम आर्य समाज के ऋणी हैं।' **- अमर शहीद सरदार भगत सिंह के छोटे भाई रणवीर सिंह**

'देव मन्दिर में पूजा-पाठ करते देख श्री मुंशी इन्द्रजीत ने मुझे संध्या करने का उपदेश दिया। श्री मुंशी जी ने उसी अर्से में आर्य समाज संबंधी बहुत सी जानकारी दी। उसके पश्चात् मैंने 'सत्यार्थ प्रकाश' पढ़ा, और उससे मेरे जीवन का लक्ष्य बदल गया। 'सत्यार्थ प्रकाश' ने मेरे जीवन के इतिहास का एक नया पृष्ठ खोल दिया।' **-रामप्रसाद बिस्मिल**

'भारत के संविधान में सामाजिक क्षेत्र के लिए अनेक व्यवस्थाएँ महर्षि दयानन्द से प्रेरणा लेकर ही की गई हैं। स्वामी जी ने 'स्वराज्य' का जो सबसे पहले सन्देश हमें दिया था, उसकी आज हमें रक्षा करनी है।' **- भारत के राष्ट्रपति श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन्**

'आज देश में जो भी कार्य चल रहे हैं, उनका मार्ग स्वामी जी वर्षों पूर्व बता गये थे।' **- लोह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल**

'महर्षि दयानन्द महान् राष्ट्र नायक नेता और क्रान्तिकारी महापुरुष थे। उन्होंने ऐसे समय में देश का नेतृत्व किया, जिस समय बुराइयों की ओर संकेत करना भी कठिन काम था। उन्होंने हिन्दी राष्ट्र भाषा होने का घोषनाद किया और छुआछूत तथा जात-पात के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा। स्वराज्य और स्वदेशी की उन्होंने ऐसी लहर चलाई, जिससे इंडियन नेशनल कांग्रेस के निर्माण की पृष्ठ भूमि तैयार हो गई।' **- स्वतंत्र भारत के द्वितीय प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री**

श्रीमद् दयानन्द वेदार्ष महाविद्यालय-न्यास द्वारा संचालित शाखा संस्थाएं

१. **श्रीमद् दयानन्द वेद विद्यालय, 119, गौतमनगर, नई दिल्ली-110049**
आचार्य एवं प्रबन्धक - स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती
दूरभाष - 9868855155
ई.मेल - smdnyas99@gmail.com

२. **गुरुकुल यमुनातट मंझावली, जिला - फरीदाबाद (हरयाणा)- 121101**
आचार्य एवं प्रबन्धक - आचार्य जयकुमार
दूरभाष - 9718579333
ई.मेल - gurukulmanjhawali@gmail.com, acharyajaikumarfbd@gmail.com

३. **श्रीमद् दयानन्द आर्ष ज्योतिर्मठ गुरुकुल, पौन्धा, देहरादून (उत्तराखण्ड)- 248007**
आचार्य एवं प्रबन्धक - आचार्य डॉ. धनंजय आर्य, आचार्य चन्द्रभूषण शास्त्री
दूरभाष - 9411106104, 9411310530
ई.मेल - gpondha@gmail.com, arsh.jyoti@yahoo.in

४. **महर्षि दयानन्द गुरुकुल योगाश्रम नरसिंहनाथ पाईकमाल, जिला - बरगड़ (उडीसा) - 768039**
आचार्य एवं प्रबन्धक - आचार्य अनन्त
दूरभाष - 8018853536
ई.मेल - yogashramgurukul03@gmail.com

५. **महर्षि दयानन्द कन्या गुरुकुल, देवनगर (घूचापाली), जिला - बरगड़ (उडीसा)- 768039**
आचार्य एवं प्रबन्धक - आचार्या शारदा
दूरभाष - 9937649313
ई.मेल - gurukulkanya@gmail.com

६. **श्रीकृष्ण आर्ष गुरुकुल, देवालय गोमत, वाया खैर, जिला - अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश)-202135**
आचार्य एवं प्रबन्धक - आचार्य रामपाल शास्त्री, ब्र. सुनील शास्त्री
दूरभाष - 9810283782, 9557219329
ई.मेल - smdnyas99@gmail.com

७. **पं. लेखराम आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय, पं. लेखराम मार्ग, वेल्लीनेषि, जिला-पालक्काट् (केरल)-679504**
आचार्य एवं प्रबन्धक - ब्र. अयन आर्य
दूरभाष - 9868049934
ई.मेल - panditlekhramarshgkl2014@gmail.com

८. **श्रीमद् दयानन्द वेद विद्यालय, दयानन्द भवन,मलकपेट, भाग्य नगर, हैदराबाद (तेलंगाना)-36**
आचार्य - स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती - 9868855155, आचार्य डॉ. धनञ्जय- 9411106104
दूरभाष - 040-46007392
ई.मेल - vedvidyalayh@gmail.com

९. **महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल योगाश्रम, पतरकोनी, जिला-बिलासपुर (छत्तीसगढ़)**
आचार्य - स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती
दूरभाष - 9868855155
ई.मेल - gurukulpatarkoni@gmail.com

आप हमारा सहयोग कर सकते हैं :-

श्रीमद् दयानन्द वेदार्ष महाविद्यालय न्यास एवं तत्संबन्धित शाखा-संस्थायें एवं अन्य प्रकल्प आप सभी के सहयोग से संचालित हो रहे हैं।

वेदविद्या, संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार, गोरक्षार्थ, न्यास द्वारा संचालित प्रकल्प तथा ब्रह्मचारियों के निर्माण में तन-मन-धन से सहयोग कर पुण्य के भागी बनें। **आप द्वारा दिया गया पवित्र दान आयकर अधिनियम धारा 80 जी के अन्तर्गत कर मुक्त है।** आप अपना सहयोग न्यास के निम्न खाता संख्या अथवा QR Code के माध्यम से प्रेषित कर सकते हैं। यदि आप हमारी किसी शाखा-संस्था विशेष के लिए अथवा अन्य प्रकल्प के निमित्त धन प्रेषित कर रहे हैं तो सम्बन्धित शाखा/प्रकल्प का नामोल्लेख करते हुए सूचित अवश्य करें।

Name- Shrimad Dayanand vedarsh Mahavidyalaya Nyas
Account No- 107001000050489
IFSC code No- IOBA0001070
Bank Name - Indian Overseas Bank
Branch Name- Yusuf Sarai, New Delhi

gpondha@IOB

नोट : आप अपनी सहयोग राशि प्रेषित करने के पश्चात् 9868855155 अथवा 9411106104 नम्बर पर अवश्य सूचित करें, जिससे आपको रसीद प्रेषित करने में सुविधा हो सके।

निवेदक

चौ. मामचन्द तंवर	**कै. रुद्रसेन**	**स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती**
प्रधान	मन्त्री	प्रधानाचार्य/कोषाध्यक्ष

एवं वेदार्ष महाविद्यालय न्यास के समस्त पदाधिकारी व सदस्यगण